कविवर पं० बुधमहाचन्द्रजी विरचित—

श्रीत्रिलोकसार पूजा भाषा

(कविपरिचय, पूजनविधि, छन्दसंग्रह सहित)

संग्रहकर्ता और प्रकाशकः—

मूलचन्द किसनदास कापड़िया,

दिगम्बर जैन पुस्तकालय, गांधीचौक—सूरत।

प्रथमवार] वीर सं० २४८३ श्रावण [प्रति १०००

'जैनविजय' प्रिन्टिंग प्रेस, गांधीचौक—सूरतमें मूलचन्द किसनदास कापड़ियाने मुद्रित किया।

मूल्य—छह रुपये।

SHRI ... JHALRAPATAN CITY
झालरापाटन सिटी

प्रकाशकीय निवेदन

ऐसे तो सिद्धचक्र विधान, तेरहद्वीप विधान, ढाईद्वीप विधान, सहस्रनाम विधान, समोसरण विधान आदि विधान भाषामें छप चुके थे तो भी "श्री त्रिलोकसार (तीनलोक) पूजा" छपी नहीं थी अतः उसके लिये हमारे पास मांग आती ही रहती थी। और यह विधान संस्कृतमें और भाषामें हस्त लिखित शास्त्र-भण्डारोंमें मिलता है उनमेंसे भाषाका विधान छपाना हमने उचित समझा था और उसकी खोज करा रहे थे कि इतनेमें सूरतमें हरीपुरामें ही भाई मंछुभाई उर्फ नगीनदास प्रभूदास शाह (बीसाहूमड़)के चैत्यालयमें कविवर श्री बुध महाचन्द्रजी रचित यह त्रिलोकसार पूजा भाषा देखनेमें आई जो उनको महुवा (सूरत)के श्री विघ्नहर पार्श्वनाथ अतिशयक्षेत्रसे मिली थी अतः इस त्रिलोकसार पूजा भाषाको प्रकट करना हमने उचित समझा और आज यह विधान प्रकट हो रहा है (यद्यपि इस बीचमें वीर पुस्तक भण्डार जयपुरसे कविवर पं० टेकचन्दजीकृत तीनलोक पूजा (भाषा) भी छप चुकी है।)

भाषा पूजासे समझनेमें सहूलियत होती है अतः इस त्रिलोकसार पूजा (भाषा) प्रकट हो जानेसे अब इस विधानका भी सिद्धचक्र विधान आदिकी तरह बहुत प्रचार हो जायगा ऐसा हमारा अनुमान है।

इस विधानमें हमने कवि परिचय, पूजन विधि तथा छन्द संग्रह भी संग्रह करके दे दिया है और तीन लोकका चित्र भी दे दिया है

अत: इस विधानको प्रारम्भ करनेके पहले पूजन विधि पढ़कर ही इस विधानका प्रारम्भ व विसर्जन करें।

अन्तमें इस विधानकी हस्त लिखित प्रति देनेवाले भाई मंछूभाई नगीनदासका आभार मानकर यह निवेदन पूर्ण करते हैं।

इस विधान छपानेमें जो त्रुटि रह गई हो तो वह विद्वजन बतायेंगे तो दूसरी आवृत्तिमें उसका सुधार किया जायगा।

सूरत, वीर सं०
२४८३. श्रावण
सुदी ६ ता. १-८-५७

निवेदक—
मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
—प्रकाशक।

श्री० कविवर पं० बुध महाचन्द्रजीका परिचय

त्रिलोकसार पूजा भाषाके रचयिता कविवर पं० बुध महाचन्द्रजीका परिचय भी प्रकट करना हमने उचित समझा और उसके लिये प्रयत्न किया तो इस पूजाकी अन्तिम प्रशस्तिसे तथा वयोवृद्ध विद्वान् मित्र पं० नाथूरामजी प्रेमी (बम्बई) से तथा श्री पं० कस्तूरचन्दजी कासलीवाल एम० ए० शास्त्री जयपुरसे जो परिचय प्राप्त हुआ है वह इस प्रकार है—

अन्तिम प्रशस्तिके पढ़नेसे मालूम होता है कि कवि श्री पं० बुध महाचन्द्रजीका जन्म सीकर (जयपुर) में खण्डेलवाल ज्ञातिमें हुआ था तब वहां राजा शेखावत् राज्य करते थे। यहां श्री १०८ आचार्यश्री भानूकीर्तिजी होगये थे उनके शिष्य भागचन्द्र हुये, जिनके शिष्य दीपचन्द्र हुये, इनके शिष्य चीम्मनलाल हुये फिर उनके शिष्य उत्तमचन्द हुये (जो अल्पायुमें चल बसे थे) उनके ही शिष्य हमारे बुध महाचन्द्रजी हुये।

कवि बुध महाचन्द्रजी सीकरसे श्री शिखरजीकी यात्रार्थ निकले थे वहां यात्रा करके बादमें भ्रमण करते हुये गिरनारकी यात्रा की। बादमें शहर प्रतापगढ़ (मालवा) पधारे जहां कि बीसा व दशाहूमड़ भाइयोंकी हजारोंकी आबादी थी व दि० जैन ९ मंदिर थे। यहां एक मंदिरमें कविश्री ठहरे थे और यहीं चातुर्मास किया था तब यहीं इस त्रिलोकसार पूजा (भाषा) की रचना की थी जो विक्रम सं० १९१५ कार्तिक बदी ८ शुक्रवारको आपने पूर्ण की थी।

कविश्रीका जन्म कब हुआ व स्वर्गवास कब हुआ यह कहीं भी जाननेमें नहीं आ सका है।

कविश्रीने और कौनर रचना की होगी यह प्रश्न पाठकोंको अवश्य उपस्थित होगा तो इस विषयमें जाना जाता है कि भाषा सामायक पाठ जो हम नित्य पढ़ते हैं व लाखोंकी संख्यामें जो छप चुका है व जिसकी प्रथम लाईन "काल अनन्त भ्रम्यों जगमें सहिये दुख भारी" है व अन्तिम लाईन "बुध महाचन्द्र विलाय जाय तातैं किजों अत्र" है इससे स्पष्ट होता है कि यह समायिक पाठ भी कविश्रीका बनाया हुआ है। श्री प्रेमीजी लिखते हैं कि कविश्रीका बनाया हुआ एक महापुराण नामक संस्कृत और प्राकृत भाषामें बहुत बड़ा है जो स्व० गुरुजी पं० पन्नालालजी बाकलीवालजीने उसे कहीं देखा था और उसके विषयमें बहुतसी बातें बतलाई थीं अत: यह निश्चित है कि कविश्रीने महापुराण भी बनाया था।

जयपुरमें तो कविश्री बुधमहाचन्द्रजी कृत कोई ग्रन्थ नहीं मिलता लेकिन कुछ समय पूर्व श्री० पं० कस्तूरचन्दजी अलवरके शास्त्रभंडारको देखने गये थे तो वहांके पंचायती मंदिरके शास्त्रभंडारमें आपको त्रिलोकसार विधानकी प्रति अवश्य मिली थी जो सं० १९२५ में फिर लिखी हुई थी जिसका रचना काल सं० १९१५ ही है। कवि बुधमहाचन्द्रजी पांडेने एक जैन भजनावलि बनाई थी जो ३० वर्ष पूर्व सीकरसे बाबू छोटेलालजीने प्रकाशित की थी जिसमें आपके ५२ भजनोंका संग्रह है उसमें प्रारंभमें लिखा है कि—

"सीकरमें संस्कृत प्राकृत व भाषाके अच्छे विद्वान एवं क्षुल्लक, त्यागी हो चुके हैं और उनके बनाये संस्कृत प्राकृत भाषाके जैनेन्द्र-सारादि पांच सात महान ग्रन्थ सीकर शास्त्रभंडारमें विराजमान हैं। इनके अलावा संस्कृत भाषामें षट् पदी नामक एक गायन ग्रन्थ बड़ा ही ललित रचा हुआ है। पं० महाचन्द्रजीका रचा हुआ सामायिक

पाठ तो बहुत प्रचलित है। पांडेजी रचित और भी ग्रन्थ होंगे जो सीकर शास्त्रभंडारमें होने चाहिये आदि।"

हमने इस विषयमें सीकर पत्र लिखा था कि कविश्रीके कुटुम्बमें क्या कोई हैं तथा आपके रचित कौन शास्त्र और हैं लेकिन वहांसे कोई उत्तर प्राप्त नहीं हो सका है।

श्री० पं० जुगलकिशोरजी मुख्तारकी ओरसे पं० परमानंदजी शास्त्री देहलीसे लिखते हैं कि कवि महाचन्द्रजी नामके विद्वान हो गये हैं उनमेंसे त्रिलोकसार विधान और सामायक पाठके रचयिता महाचन्द्रजी, दोनों एक ही व्यक्ति हैं या भिन्न २ यह कहना कठिन है आदि।

कुछ भी हो तौभी कविवर बुध महाचन्द्रजी जिनके नाम सामायिक पाठमें तथा त्रिलोकसार विधानमें स्पष्ट लिखा है वह सीकर नि० बुध महाचन्द्रजी ही होने चाहिये।

कविश्रीने इस त्रिलोकसार विधानमें ५-७ पूजाएँ तो संस्कृत-प्राकृतमें भी दी हैं अतः आप संस्कृत प्राकृतके भी महाविद्वान् थे इसमें शंका नहीं है तथा इस विधानमें करीब ७५-८० प्रकारके तो छन्द हैं अतः कविश्री छन्द शास्त्रके भी महाविद्वान् थे इसमें भी शक नहीं है।

कविश्रीका विशेष परिचय आगे मिलेगा तो आगामी दूसरी आवृत्तिमें वह प्रकट किया जायगा।

—प्रकाशक।

श्री त्रिलोकसार विधानकी पूजन विधि

कोई भी विधान प्रारम्भ करनेके पहले उसकी विधि जानना आवश्यक होता है अत: इस विधानकी पूजन विधि जाननेके लिये हमने भ० श्री यशकीर्तिजी (प्रतापगढ़) और उनके विद्वान् शिष्य श्री पं० रामचन्द्रजी और श्री० पं० नाथूलालजी शास्त्री साहित्यरत्न संहित:सूरि प्रतिष्ठा–दिवाकर इन्दौरको पत्र लिखे थे तो आप दोनोंकी ओरसे जो विधि लिखकर आई है वह इस प्रकार है—

सुन्दर सुशोभित मंडपकी रचना करके उसमें समवसरण मांडकर उस पर श्री जिनेन्द्र भगवानकी प्रतिमा विराजमान करें, फिर उसके आगे ऊँचे तख्त पर ११ फुटका या स्थानकी अवगाहनानुसार वेदी बनावें उसमें रंगीन चावलोंका श्री त्रिलोकका मांडना मांडे (यदि चावलका न हो सके तो त्रिलोकसारका हस्तलिखित रंगीन मांडना जो कपड़े पर ९×९ फुट लम्बा चौड़ा ५०) में मिलता है वह मंगाकर उसे ही स्थापित करें। अथवा चांवलोंसे छोटा भी बना सकते है।

फिर शुभ दिनमें १००, ४०, ३२, २४, १६, ८ या ४ इन्द्रोंकी स्थापना करनी चाहिये जो केशरिया धोती दुपट्टे तथा मुकुटसे सुशोभित हों। व जो पूजनके प्रारम्भसे अन्त तक ब्रह्मचर्यपूर्वक रहे और यथाशक्ति व्रत उपवास एकाशनादि करें।

वेदीके आगेके भागमें लकड़ीका मानस्तम्भ स्थापित कर उस पर केशरिया जैनध्वजा स्थापित करनी चाहिये।

बादमें जल, दूध, दर्भ, डाभ आदिके द्वारा मण्डपकी भूमि शुद्ध करनी चाहिये व मण्डपकी चारों दिशाओंमें चार ध्वजायें बांधनी चाहिये। फिर जलकुम्भ यात्रा-विधिपूर्वक जलाशयसे कलश

भरकर लाना चाहिये। यह कलश सोना चांदी धातु या मिट्टीका भी हो सकता है जिसपर श्रीफल, शुद्ध लाल या केशरिया कपड़ा फूलमाला हो व सूतरी नाडासे लिपटा हुआ हो व कलशमें कुछ भी द्रव्य शक्त्यनुसार डाला गया हो। यह कलश सुहागिनी स्त्रियों द्वारा मंगलगान पूर्वक व गाजेबाजेसे लाना चाहिये व वेदीपर स्थापित करना चाहिये। बादमें सकलीकरण पूर्वक इन्द्रोंकी शुद्धि करनी चाहिये।

फिर जिनेन्द्र भगवानका अभिषेक करके नित्य नियम पूजन पढ़नी चाहिये। बादमें वेदीपर चारों दिशाओंमें व चारों विदिशा-ओंमें इस प्रकार आठ कलश अष्टद्रव्य सहित स्थापित करें व वेदीके मध्यमें कर्णिकाकी स्थापना करें, तथा दश फल या दश बादाम रखकर दश दिग्पालकी स्थापना दशों दिशाओंमें करनी चाहिये। चारों कोनोंमें दीप धूप घट भी स्थापित करने चाहिये। फिर जाप्यका संकल्प कर जाप्य प्रारम्भ करने चाहिये, जो पूजन समाप्ति तक चालू रहने चाहिये। यह जाप्य ढाई लाख या सवालाख या सुविध नुसार जितने हो सके करने चाहिये—

जाप्य इस प्रकार हो—

ओं ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा श्री त्रिलोक सम्बन्धि कृत्रिमा-कृत्रिम जिन चैत्य चैत्यालयेभ्यो नमः।

फिर अष्टद्रव्यपूर्वक पूजन प्रारंभ करना चाहिये और जहां तक पूजन पूर्ण न हो प्रथम अभिषेक व नित्य पूजन करना ही चाहिये। (अभिषेक जहां तक हो संस्कृत करना चाहिये) यदि अपना पूरा समय और विधानकी पूजनके पूरे दिन संयम व धर्मध्यानमे व्यतीत करते हुए विधिपूर्वक पूजन की जाय तो उसका अपूर्व फल होता है। विधानकी पूजा विधान मंडानेवालोंको स्वयं करना चाहिये और शांति

जाप्य व स्थापना आदिमें श्रद्धापूर्वक भाग लेना चाहिये, तथा जितने दिन विधान चले उतने दिन शुद्ध व मर्यादित भोजन पानके साथ पूर्ण ब्रह्मचर्य व मंद कषाय रखना चाहिये।

यह त्रिलोकसार पूजा विधान सबसे बड़ा पूजा विधान है और यह १ माह या २० दिनमें पूरा होता है। यदि जल्दी २ करें तो ९ दिनमें भी यह हो सकता है।

पूजनके दिनोंमें नित्य रात्रिको शास्त्र प्रवचन, नृत्य, भजन, गान गरने, धार्मिक प्रहसन व जागरण करना व कराना चाहिए तथा इसके लिये पूजा विधिके ज्ञाता विद्वानोंको अवश्य बुलाना चाहिये।

भगवान् श्री कुन्दकुन्दचार्य रचित 'रयणसार' में लिखा है कि—

दाणं पूजा मुक्खं सावय धम्मे ण सावया तेण विणा।
झाणज्झयणं मुक्खे जइ धम्मे ण तं विणा सोवि॥

अर्थ—श्रावक धर्ममें दान व पूजा मुख्य हैं। उनके बिना श्रावक नहीं होता। मुनि धर्ममें ध्यान और स्वाध्याय मुख्य है।

इस ग्रन्थमें आगे बताया है कि शुद्ध मन वचनसे पूजा करनेवाला त्रिलोक पूजित अर्थात् अर्हतपदको प्राप्त होता है। अतः गृहस्थोंको प्रति दिन जिनाभिषेक व पूजन कर अपना जीवन सफल बनाना चाहिये।

(नाथूलाल शास्त्री)

× × ×

श्री त्रिलोकसार पूजन पूर्ण होनेके बाद शांति पाठ करके दूसरे दिन जाप्यकी दशांश आहुतियोंका हवन (होम) करना चाहिये और यथाशक्ति दान करना चाहिये। फिर विधिपूर्वक १०८ कलश सुविधानुसार भरकर लाने चाहिये और जिनेन्द्राभिषेक करके श्री जिनेन्द्र रथयात्रा या पालखीका जुलूस निकालना चाहिये और श्रीजीको यथास्थान विराजमान कर दें। इस विधिमें प्रभावनाके लिये

जितनी भी शक्ति हो शोभा कार्य करने चाहिये, प्रभावना बांटनी चाहिये और हो सके तो एक दिन प्रीतिभोज भी करना चाहिये ।

सारांश कि यह त्रिलोकसार महापूजा विधानको जहांतक हो विधि विधानपूर्वक तथा यथाशक्ति जैन धर्मकी प्रभावनापूर्वक करना चाहिये ताकि सबपर उसका प्रभाव पड़े व यह जाना जाय कि श्री तीनलोकमें कहां कहां ८,५६,९७,४८१ चैत्यालय हैं और उनकी पूजाएं किस तरह संक्षेपमें की जाती हैं ।

अन्तमें हम श्री पं० नाथूलालजी शास्त्री तथा पं० रामचन्द्रजीका उपकार मानते हैं कि आप द्वयने हमको यह विधि परिश्रमपूर्वक लिख भेजी है, जिससे पूजकोंका बड़ा उपकार होगा ।

—मूलचन्द किसनदास कापड़िया,

—प्रकाशक ।

श्री त्रिलोकसार पूजा भाषा-छन्द संग्रह

इस पूजा संग्रहमें छन्दशास्त्रके ज्ञाता कविवर पं० बुध महाचन्द्र-जीने करीब ७५-८० प्रकारके छन्दोंमें यह पूजा रची है जिन छन्दोंके नाम इस प्रकार हैं—

पाइता, घत्ता, मत्तगयंद, जोगीरासो, मोतीदाम, रूप चौपाई, दोहा, शंकर, नन्दीश्वर पूजा चाल, लोल तरंग, अडिल्ल, लक्ष्मीधरा, पद्धड़ी, त्रोटक, छप्पय, लावनी, चौपाई, टप्पा, द्रुत विलंबित, सोरठा, त्रिभंगी, सवैया, शिखरिणी, गीता, होरी, स्रग्धरा, पंचमेरू पूजन चाल, कामिनी मोहन, रथोद्धता, शार्दुल विक्रीड़ित, निदेश, ठुमरी, करूणाष्टक चाल, राजघाटके बमना, कवित्त, मालिनी, सुन्दरी, नाराच, भुजंग-प्रयात, इंद्र वज्रा, मंदावलिप्त कपोल, बेसरी, दोधक, आर्या, निरखी छवी नाथकी मैं, हरिणी, विछोहाकी नौकिया, जादव कैसे चले, शालिनी, आयो रे गवार मैं, रेखता, बखाकी ठुमरी, नाराच, बंशस्थ, स्रग्विणी, कड़वा, बसन्त, निरखाकी ठुमरी, रंगीला नेमजी, घनाक्षरी, प्रमिनाक्षरा, चंडीनय मालिनी, अमृत ध्वनि, तामरस नयमालिनी, धनुषबन्द, चामर, रूचिरा, पुष्पिताग्रा, उपजाति, मत्तमयूर, विद्यु-न्मालिनी, चंपकमाला, मणिबन्ध जलधरमाला आदि।

इसीसे जाना जाता है कि कविश्रीने अनेकानेक छन्दोंमें यह रचना की है।

—प्रकाशक।

श्री त्रिलोकसार पूजा-विषयसूची

नं० नाम पूजा	अर्घ	पृष्ठ
१–समुच्चय पूजा	×	४
२–भवनवासी चैत्यालय पूजा	१०+२१	१०
३–व्यंतरदेव जिनगृह पूजा	९	२८
४–ज्योतिषदेव जिनगृह पूजा	६	३८
५–कल्पवासी देव जिनगृह पूजा	४७	४८
६–कल्पातीत जिनभवन पूजा	२३	६९
७–मध्यलोक ४५८ चैत्यालयकी समुच्चय पूजा		८२
८–जम्बूद्वीपस्थ चारों वननमें १६ चैत्यालय पूजा	१७	८६
९–सुदर्शनमेरु ४ गजदन्तस्थ चार जिनमंदिर पूजा	६	९६
१०–जम्बूवृक्ष चैत्यालय पूजा	२	१०३
११–जम्बूद्वीप शाल्मली वृक्ष जिनगृह पूजा	२	१०७
१२–जम्बूद्वीप पूर्वविदेह स्थित आठ वक्षारगिरि पूजा	१०	११०
१३–जम्बूद्वीप सुदर्शन मेरु पूर्वविदेह १६ विजया०	१८	११७
१४–जम्बूद्वीप सुदर्शनमेरु पश्चिमविदेह आठ वक्षार०	१०	१२५
१५–पश्चिमविदेह विजयार्द्ध जिनगृह पूजा	१८	१३२
१६–भरतक्षेत्र विजयार्द्ध जिनगृह पूजा	२	१३८
१७–जम्बूद्वीप षट्कुलाचलस्थित जिनगृह पूजा	८	१४२
१८–जम्बूद्वीपऐरावतक्षेत्र विजयार्द्ध जिनगृह पूजा	२	१४८
१९–धातकी खंड विजयमेरु सम्बन्धी पूजा	१८	१५२
२०–विजयमेरु गजदंत जिनगृह पूजा	६	१६०
२१–विजयमेरु जम्बूवृक्ष चैत्यालय पूजा	२	१६५
२२–शाल्मली वृक्षस्थ जिनगृह पूजा	२	१६८

नं०	नाम पूजा	अर्घ	पृष्ठ
२३	विजयमेरु पूर्वविदेह आठ वक्षारगिरि पूजा	१०	१७२
२४	विजयमेरु पूर्वविदेह विजयार्द्ध षोडश जिनगृह पूजा	१८	१७७
२५	विजयमेरु पश्चिमविदेह वक्षारगिरि पूजा	१०	१८४
२६	विजयमेरु पश्चिमविजयार्द्ध जिनगृह पूजा	१८	१८९
२७	विजयमेरु षट्कुलाचल पूजा	८	१९७
२८	विजयमेरु भरतक्षेत्र विजयार्द्ध जिनगृह पूजा	२	२०३
२९	विजयमेरु ऐरावतक्षेत्र विजयार्द्ध जिनगृह पूजा	२	२०७
३०	धातकीखण्ड पश्चिम भाग अचल. १६ जिन. पूजा	१८	२१०
३१	अचलमेरु ४ गजदंत जिनगृह पूजा	६	२१८
३२	अचलमेरु ईशानकोण जम्बूवृक्ष जिनगृह पूजा	२	२२४
३३	अ०मेरु शाल्मलीवृक्ष जिनगृह पूजा	२	२२७
३४	अ०मेरु पूर्वविदेह वक्षार जिनगृह पूजा	१०	२३१
३५	अ०मेरु पूर्वविदेह विजयार्द्ध जिनगृह पूजा	१८	२३७
३६	अ०मेरु पश्चिमविदेह वक्षार जिन० पूजा	१०	२४५
३७	अ०मेरु पश्चिमविदेह विजयार्द्ध जिन० पूजा	१८	२५०
३८	अ०मेरु षट्कुलाचल जिन० पूजा	८	२५८
३९	अ०मेरु विजयार्द्ध जिन० पूजा	९	२६४
४०	अचलमेरु ऐरावत विजयार्द्ध जिनगृह पूजा	१	२६८
४१	पुष्करार्द्ध द्वीपपूर्वभाग मन्दरमेरु १६ जिन०पूजा	१८	२७२
४२	मन्दरमेरु चतुर्गजदन्त जिनगृह पूजा	६	२७९
४३	मन्दरमेरु ईशान कोण जिनगृह पूजा	१	२८४
४४	मन्दरमेरु शाल्मली वृक्ष जिनगृह पूजा	१	२८८
४५	मन्दरमेरु वक्षार जिनगृह पूजा	१०	२९१

नं०	नाम पूजा	अर्घ	पृष्ठ
४६	मन्दरमेरु पूर्व विदेह विजयार्द्ध जिनगृह पूजा	१८	२९८
४७	मन्दरमेरु पश्चिम विदेह वक्षारस्थ जिनगृह पूजा	१०	३०५
४८	मन्दरमेरु पश्चिम विदेह विजयार्द्ध जिन० पूजा	१८	३११
४९	मन्दरमेरु षट्कुलाचलस्थ जिन० पूजा	८	३१९
५०	मन्दरमेरु भरतक्षेत्र विजयार्द्ध जिन० पूजा	२	३२५
५१	मन्दरमेरु उत्तरदिशि ऐरावतक्षेत्र विजयार्द्ध जिन०	२	३३०
५२	पुष्करार्द्ध पश्चिमभाग विद्युन्माली मेरुके ४ वनोंकी १६ जिनगृह पूजा	१८	३३५
५३	विद्युन्माली ४ कौनेके ४ गजदंतस्थितजिनगृहपूजा	६	३४४
५४	विद्युन्माली मेरुईशानकोण स्थित जंबूवृक्षस्थ ,,	२	३५०
५५	विद्युन्माली मेरुशाल्मली वृक्ष जिनगृह पूजा	२	३५५
५६	विद्युन्माली मेरुपूर्वविदेहस्थितवक्षार जिनगृह पूजा	१०	३६०
५७	विद्युन्माली पूर्वविदेह १६ विजयार्द्ध जिन०पूजा	१८	३६६
५८	विद्युन्माली मेरुपश्चिमविदेह वक्षार जिन० पूजा	१०	३७५
५९	विद्युन्माली मेरु पश्चिम विजयार्द्ध जिन० पूजा	१८	३८०
६०	विद्युन्माली मेरु षट्कुलाचलस्थ जिन० पूजा	८	३८८
६१	विद्युन्माली मेरु द०भ० विजयार्द्ध जिन० पूजा	२	३९४
६२	विद्युन्माली मेरु उ०ऐ० विजयार्द्ध जिन० पूजा	२	३९८
६३	धातकीखण्ड इक्ष्वाकार चतुर्जिनगृह पूजा	६	४०३
६४	मानुषोत्तर पर्वत चतुर्जिनगृह पूजा	६	४११
६५	नन्दीश्वरद्वीप त्रयोदश जिन० पूजा	१५	४१७
६६	नन्दीश्वरद्वीप दक्षिणदिशि त्रयोदश जिन०पूजा	१५	४२७
६७	नन्दीश्वर पश्चिम दिशि त्रयोदश जिन० पूजा	१५	४३५

नं.	नाम पूजा	अर्घ	पृष्ठ
६८	नन्दीश्वर उत्तर दिशि त्रयोदश जिन० पूजा	१५	४४३
६९	कुण्डलगिरि स्थित चतुर्जिनगृह पूजा	६	४५०
७०	रुचिकगिरि स्थित चतुर्जिनगृह पूजा	६	४५६
७१	तीनलोक अकृत्रिम जिन० पूजा	६	४६२
७२	मध्यलोक स्थित अकृत्रिम जिन० पूजा	४	४६७
७३	वर्तमान चौबीस तीर्थंकर पूजा	१४	४७२
७४	समुच्चय पूर्णार्घं	१	४७८

कुल ७४ पूजाएँ   कुल अर्घ ७००

इस प्रकार इस पूजामें कुल ७४ पूजाएं हैं और अष्टक व बड़ी२ जयमालाएं सहित ७०० अर्घ हैं। —प्रकाशक।

SHRI AILAK PANNALAL SARASVATI BHAWAN * JHALRAPATAN CITY
श्री ऐलक पन्नालाल दि. जैन सरस्वती भवन झालरापाटन सिटी।

महाकवि पंडित बुद्ध महाचन्द्रजी रचित-

श्री त्रिलोकसार पूजा भाषा।

दोहा।

वंदू पांचौ परमगुरु, नमि जिनवाणी माय।
तीनलोक जिनभवनको, पूज रचौं सुखदाय ॥ १ ॥
ग्रन्थ महान विलोकिकैं, नाम जु त्रिलोकसार।
प्राकृत हैं तातैं रच्यो, संस्कृत भाषा धार ॥ २ ॥
तीनलोकमें जिन भवन, अकृत्रिम कीनैं नांहि।
तिनको वन्दूं भाव धरि, तिनपद धरि मनमांहि ॥३॥

त्रोटक छन्द।

सुरभावनमैं जिन भौन नमौं,
जह कोडि जु सात गृहं प्रणमौं।
फुनि लक्ष बहत्तरि ऊपरि हैं,
नमतैं भव बांधवसे हरी हैं ॥ ४ ॥

सुर व्यन्तर मांहि असंख्य जु हैं,
　　जिनगेह नमौं भवभंज जु हैं।
सुर ज्योतिषि मांहि असंख्य सही,
　　जिनधाम नमौं सिर धारि मही॥ ५॥
सुर कल्पवासी मधि गेह नमौं,
　　लह लक्ष चतुर्शीति ये विनमौं।
फुनि सहसजु हैं सुभ सत्तयणौं,
　　अधबीस नमौं जिनधाम गणौं॥ ६॥
फुनि मध्यम लोक जिनेन्द्र ग्रहं,
　　सत च्यारि अठावन हैं विविहं।
तिनकौं प्रणमौं हिरदै धरिकै,
　　मन वाक्य शरीर शुभं करिकैं॥ ७॥
सब आठहि कोडिज लक्ष सहित हैं,
　　　　छपन सत्तयणौंव कही।
सुहजार चतुर्शत एक असी,
　　त्रय लोक मही यह संख्य लसी॥ ८॥
फुनी व्यन्तर ज्योतिषि संख्य नहीं,
　　भरे ए सब दीप समुद्र मही।
इनकौं नित पूजत देवगणं,
　　जिनगेह इसी विधिमें जु भणं॥ ९॥

हमरी कछु जाचन शक्ति नहीं,
हम भावना पूजन अत्र सही।
जिनदेव सदा हम विघ्न हरौ,
चित चिंतित काज सबैं हि सरौ ॥१०॥
भव संकट दूरि करौं अबही,
यह कर्म अरी सुहरो सब ही।
विधिना विधि नाश विधान कहो,
भवसागर डूबत बांह गहो ॥११॥
हमरे नहीं और सहायक हैं,
जिनदेव हमें सुखदायक हैं।
हम वन्दत मन वच काय तुम्हैं,
यह कर्म अरीन मिटाय हमैं ॥१२॥
यह अरज हमारी मानि मानि,
तुम महाचन्द्र दुख भानि मानि।
हम जाचत हैं निति सेव तुमैं,
यह दान करो जिनराज हमैं ॥१३॥

इति पठित्वा जिनमंडलोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत।

अथ समुच्चय पूजा।

छप्पय।

भवनवासी निज गेह, तथा व्यन्तर ज्योतिषि।
अर कल्पवासी जिनधाम, मध्य जगमांहि मनोहर॥
तिनमैं बिंब महान एकमैं, आठ अधिक सत।
पंच सतक धनु तुंग देह, राजत मनोज्ञ अति॥
ते आदि अंत करि रहित जिन, नहीं कीने करिए नहा।
सब आय विराजो थान इस, हम पूजन सिरधरि मही॥१॥

ॐ ह्रीं अर्हं श्री परम ब्रह्म त्रिलोक स्थित जिन चैत्यालय स्थित जिन समूह अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननं अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्र मम सन्निहितो भव वषट् सन्निधिथापनं।

अथ अष्टक।

चाल—लावणी।

हरो भव बाधा जिन मेरी,
तीनलोक जिनधाम मध्य जिन पूजा करौं तेरी।टेक॥
सुरसरिताके नीर लेयकैं, कनक कुंभ भैरी।
धार तीन धारौं तुम चरणौं, जन्म मरण घेरी॥
हरो भव बाधा जिन मेरी,
तीनलोक जिनधाम मध्य जिन पूजा करौं तेरी॥१॥

ॐ ह्रीं अर्हं श्री परम ब्रह्मणे त्रिलोक स्थित जिनधाम

जिन समूहाय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

केसरि गंध मनोहर लेकैं, अगर तगर लेरी घिसकैं।
पूज रचौं तुम चरणन आगे, भव तप हरि देरि ॥
हरो भव बाधा जिन मेरी,
तीनलोक जिनधाम मध्य जिन पूजा करौं तेरो ॥ २॥

ॐ ह्रीं अर्हं श्री परम ब्रह्मणे त्रिलोक स्थित जिनधाम जिन समूहाय चंदनं ॥ २ ॥

शालि अखंडित उज्जल जलतैं, धोय सुगंधेरी।
पुंज करौं तुम चरणन आगैं, अक्षय पद देरी ॥
हरो भव बाधा जिन मेरी,
तीनलोक जिनधाम मध्य जिन पूजा करौं तेरी ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं त्रिलोक स्थित जिनसमूहाय अक्षतं ॥ ३ ॥

कमल केतकी और केवडो, कुन्द गुलाबेरी।
इनके पुष्पन तुम पद पूजौं, काम हरो मेरी ॥
हरो भव बाधा जिन मेरी,
तीनलोक जिनधाम मध्य जिन पूजा करौं तेरी ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं त्रिलोक स्थित जिनसमूहाय पुष्पं ॥ ४ ॥

नाना रस ले पक्क अन्न करि, मोदक घाजेरी।
नैवजतैं पूजौं तुम चरणन, हरो क्षुधा मेरी ॥
हरो भव बाधा जिन मेरी,
तीनलोक जिनधाम मध्य जिन पूजा करौं तेरी ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं त्रिलोक स्थित जिनसमुदाय नैवेद्यं ॥ ५ ॥

घृत कर्पूर आदि करि दीपक, जोति करौं तेरी।
तिमिर मोहनाशक लखि पूजौं, चरणकमल हेरी।
हरो भव बाधा जिन मेरी,
तीनलोक जिनधाम मध्य जिन पूजा करौं तेरी। ६ ॥

ॐ ह्रीं त्रिलोकस्थित जिनसमुदाय दीपं ॥ ६ ॥

लेश्रीखण्ड आदि शुभ गन्धित, द्रव्य सुगन्धेरी।
खेऊं मैं तुम चरणकमलपैं, कर्मधनं जैरी ॥
हरो भव बाधा जिन मेरी,
तीनलोक जिनधाम मध्य जिन पूजा करौं तेरी ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं त्रिलोकस्थित जिनसमुदाय धूपं ॥ ७ ॥

मातुलिंग दाडाम पूगी, नारंग आदि देरी।
ले फल चरणकमल पूंजौं फल, मोक्षमई देरी ॥
हरो भव बाधा जिन मेरी,
तीनलोक जिनधाम मध्य जिन पूजा करौं तेरी ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं त्रिलोकस्थित जिनसमुदाय फलं। ८ ।

जल चन्दन अक्षत प्रसून चरु, दीप धूप हेरी।
ले फल अर्घ करौं चरणन पैं, पद अनर्घ हेरी ॥
हरो भव बाधा जिन मेरी,
तीनलोक जिनधाम मध्य जिन पूजा करौं तेरी ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं त्रिलोक स्थित जिनसमुदाय अर्घं ॥ ९ ॥

घत्ता छन्द।

जिन धाम अकृत्रिम तीनलोक गम,
सुर पूजत है रैनि दिनैं।
ले द्रव्य मनोहर आठ विधि करकर,
पूजैं भव भव दुःख हरनैं ॥ १ ॥

पद्धड़ी छन्द।

जय तीन लोक मधि जिन समूह,
तुमकौं नित पूजैं सुर समूह।
सुर भवनवासी व्यन्तर नमन्त,
ज्योतिषि फुनि कल्पक वासि सन्त ॥ १ ॥
सुर सरी रूप रचिकैं अनन्त,
तुम चरणन सन्मुख ह्वै नचन्त।
वीणादिक वाद्य लिये रमन्त,
स्वर सात द्रुजात मनोज्ञ तंत्र ॥ २ ॥
ससससससससससससर्जस्वरं,
रिरिरिरिरिरिरिरिरिरिरिषभधरं।
गंगंगंगंगंगंगंगंग धारकरं,
ममममममममध्यम होत परं ॥ ३ ॥
पपपपपपपपपंचम करंत,
धधधधधधधैवत स्वर रटंत।
निनिनिनिनिनिनिनिनिनिसाद होत,
जयजयजयजय जगमैं उद्योत ॥ ४ ॥

हर हर हर हर हर भव भयान,
कुरु कुरु कुरु कुरु जग सुख निधान।
देहिदेहिदेहि तुम पद महान,
हम गावत नाचत तान तान ॥ ५ ॥
मुखसे हम बोलत वाणि वर,
हमरे जिन देव सदा अमरं ।
हम पूजत तुम पद बार बार,
बिनती हमरी उर धारि धारि ॥ ६ ॥
हम सुरपदमैं नहि सुख सरूप,
कहुं नित ऊंचमय दुःख रूप।
कहु मानस दुःख अनन्त भरे,
कुमलान माल करि दुःख धरे ॥ ७ ॥
हम तातैं मागत नाथ तुमैं,
तुमरो पद द्यो जिनराज हमैं ।
करिये जु कृपा हमपै अब हो,
जिनराज महासुख द्यो सब हो ॥ ८ ॥
करिये भव भंजन देव सबै,
हमरी बिनती उर धारि अबै ।
हमरे रखवारा और नही,
जिनराज बिना सुख है न कहीं ॥ ९ ॥
ऐसे सुर भार समाज धरैं,
तुमकौं पूजैं करमष्ट हरैं।
तुमरे गुण-गण गणधर भनन्त,

नथे पार न पावत परम सन्त ॥ १० ॥
हम अल्पबुद्धि धरि बोध हीन,
कहा करें कर्म करी दुखी दीन।
तुम भक्ति जु प्रेरे परम देव,
निज कर्म काटनैं करैं सेव ॥ ११ ॥
जिन बालक बोलत बुद्धि हीन,
तिम हम निज कहत सु भक्ति लीन।
हमरी यह अरज हिये धरिये,
भव भय भंजन मम मति करिये ॥ १२ ॥
इन कर्मन सम नहीं अरी और,
तुम मम नहीं बन्धु और ठोर।
तातैं विनवों मैं बार बार,
बुध महाचन्द्र दुख टार टार ॥ १३ ॥

घत्ता छन्द।

यह तीन लोकमैं भवन अकृत्रिम,
आदि अन्त करि रहत सदा।
मैं पूजूं निशि दिन भवभव दुख हन,
मन वच तन सुभ करिर मुदा ॥ १४॥ अर्घं

चौपाई।

तीन लोक चैत्यालय एह, जो नर पूजे धरिकैं नेह।
सो पावे नर सुर सुखसार, फिरि निर्वाण लहैं अनगार॥

इत्याशीर्वादः।

इति श्री तीन लोक चैत्यालय समुच्चय पूजा समाप्ता।

भवनवासी चैत्यालय पूजा।

अडिल्ल छन्द।

भवनवासी जिन धाम अकृत्रिम राजही।
सात कोड़ि अर बहत्तर लाख समाज ही॥
तिनमैं बिंब बिराजत अठ सत एकमैं।
ते जिनराज बुलावौ अवसर देखि मैं॥१॥

ॐ ह्रीं भवनवासी भवनस्थित जिनसमूह अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननं। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः॥ अत्र मम०॥

अथाष्टक।

चाल नन्दीश्वर पूजाकी।

कञ्चन झारी भरी नीर, उत्तम करि लीनी।
जिनपद तर धारा तीन, जन्म हरन दीनी॥
सुर भवनवासी जिनगेह, जिन विनती सुनियौं।
हम जनम मरण दुख देय, सो तुम सब हनियौं॥

ॐ ह्रीं भवनवासी जिनसमूहाय जलम्॥ १॥

कुंकुम चन्दन नवनीत, घसि करि कर लीनौं।
तुम चरण चढ़ाऊँ मीत, भव तप हरी दीनौं॥
सुर भवनवासी जिनगेह, जिन विनती सुनियौं।
भव तप मोकौं दुख देन, सो तुम सब हनियौं॥

ॐ ह्रीं भवनवासी जिनसमूहाय चन्दनम्॥ २॥

शुभ सालि अखण्डित लेय, प्रासुक जल धोवौं।
प्रभु अग्र पुंज करि देय, अक्षय पद जोवौं॥
सुर भवनवासी जिनगेह, जिन विनती सुनियौं।
अक्षय पद मोकौं देह, क्षयपद सब हनियौं॥

ॐ ह्रीं भवनवासी जिनसमूहाय अक्षतम्॥ ३॥

मन्दार मल्लिका आदि, पुष्प सु लेय कर।
जिन चरणन पूजूं व्याधि, काम थकी सुहर॥
सुर भवनवासी जिनगेह, जिन विनती सुनियौं।
हम काम महादुख देह, सो तुम सब हनियौं॥

ॐ ह्रीं भवनवासी जिनसमूहाय पुष्पम्॥ ४॥

खाजा फेणी सद लेय, मोदक मोद धरैं।
तुम चरण चढ़ाऊँ गेय, रोग क्षुधादि हरैं॥
सुर भवनवासी जिनगेह, जिन विनती सुनियौं।
हम रोग क्षुधा दुख देह, सो तुम सब हनियौं॥

ॐ ह्रीं भवनवासी जिनसमूहाय नैवेद्यम्॥ ५॥

दीपक दीपक उजियार, तुम पद वारत हौं।
मम मोह तिमर मद जार, तुम लखि धारत हौं॥
सुर भवनवासी जिन गेह, जिन विनती सुनियौं।
हम मोहतिमिर दुख देह, सो तुम सब हनियौं॥

ॐ ह्रीं भवनवासी जिनसमूहाय दीपम्॥ ६॥

कृस्ना गुरू गन्ध सुगन्ध, अगर तगर त जे।
करि चूरि अग्निमें फन्द, अष्ट कर्म भाजे॥

सुर भवनवासी जिनगेह, जिन विनती सुनियौं।
हम अष्ट कर्म दुख देह, सो तुम सब हनियौं॥
ह्रीं ह्रीं भवनवासी जिनसमूहाय धूपं॥ ७॥

शुभ दाख सुपारी लेय, खारिक आम घनें।
फल चरण चढ़ाऊँ एह, मनुफल मोक्ष बनें॥
सुर भवनवासी जिनगेह, जिन विनती सुनियौं।
हम मोक्ष महा फल देहि, अब फल सब हनियौं॥
ॐ ह्रीं भवनवासी जिनसमूहाय फलम्॥ ८॥

जल फल वसु द्रव्य मिलाय, अर्घ बनाय लियो।
गाऊं नाचूं तुम पाय, पद अनर्घ करियो॥
सुर भवनवासी जिनगेह, जिन विनती सुनियौं।
हम करि अनर्घ पद तेह, अर्घ रूप हनियौं॥
ॐ ह्रीं भवनवासी जिनसमूहाय अर्घं॥ ९॥

अथ प्रत्येक अर्घ।

चाल टप्पामें।

जिन पूजोरे भाई, सदा जिन पूजोरे भाई।
सुर भवनवासी दस भेदमें जिन पूजोरे भाई॥टेक॥
असुरकुमारनके जिनमन्दिर, चौसठिलाख सुहाई।
कोडि गुणतरि लाख जु बारैं, सब प्रतिमा सुखदाई॥
सदा जिन पूजोरे भाई, सुर भवनवासी दस भेदमें।
सदा जिन पूजोरे भाई॥ १॥

ॐ ह्रीं भवनवासीमध्ये असुरकुमारनको चोसठिलाख जिन-मंदिर गुणहत्तरीकोडी बारह लाख जिनबिंबेभ्यो अर्घं ॥ १॥

नागकुमार माहि जिनके गृह, लाख चोरासी पाई।
कोडि निवै अर लाख बहत्तरी, प्रतिमा सूर्य छिपाई॥
सदा जिन पूजोरे भाई।
सुर भवनवासी दस भेद मैं, जिन पूजो रे भाई॥ २॥

ॐ ह्रीं भवनवासीमध्ये नागकुमारनके चोरासीलाख मंदिर नव्वैकोडि बहत्तरिलाख जिनबिंबेभ्यो अर्घं ॥ २ ॥

हेमकुमार तनैं मन्दिर सब, बहत्तरि लाख कहाई।
कोडि सत्तरि लाख छिहत्तरी, जिन प्रतिमा ठहराई॥
सदा जिन पूजोरे भाई।
सुर भवनवासी दस भेद मैं, जिन पूजो रे भाई॥ ३॥

ॐ ह्रीं भवनवासीमध्ये सुपर्णकुमारनके बहत्तरिलाख जिन-मंदिरमध्ये सत्तरिकोडी छिहत्तरलाख जिनबिंबेभ्यो अर्घं ॥ ३॥

द्वीपकुमार माहि जिनमन्दिर, लाख छिहत्तरि गाइ।
कोडी बयासी लाख अठ हैं, बिंब मनोहर थाई॥
सदा जिन पूजोरे भाई।
सुर भवनवासी दस भेद मैं, जिन पूजो रे भाई॥ ४॥

ॐ ह्रीं भवनवासीमध्ये द्वीपकुमारनके छिहत्तरिलाख जिन-मंदिरमध्ये बयासीकोडि आठलाख जिनबिंबेभ्यो अर्घं ॥ ४ ॥

उदधिकुमार माहि मंदिर जिन, छिहत्तरिलाख बताई।
तिनमैं कोडि बयासि प्रतिमा, आठलाख निति पाई॥

सदा जिन पूजोरे भाई।
सुर भवनवासी दस भेद मैं, जिन पूजो रे भाई ॥५॥

ॐ ह्रीं भवनवासीमध्ये उदधिकुमारनके छिहत्तरलाख जिनमंदिर तिनमैं बयासीकोडि आठलाख जिनबिंबेभ्यो अर्घं ॥५॥

विद्युत जाति माहि जिनमंदिर, छिहत्तरिलाख मनाई।
कोडि बयासि लाख आठ नितऊ, जिनप्रतिमा मन भाई॥
सदा जिन पूजोरे भाई।
सुर भवनवासी दस भेद मैं, जिन पूजो रे भाई ॥६॥

ॐ ह्रीं भवनवासीमध्ये विद्युत्कुमारनके छिहत्तरिलाख जिनमंदिरन मध्ये बयासी कोडी आठ लाख जिनचैत्येभ्यो अर्घं ॥६॥

स्तनितकुमारनके जिनमन्दिर, लाख छिहत्तरि माहीं।
तिनिमैं कोड़ी बयासी लख, आठ प्रतिमा हैं गिनिराई॥
सदा जिन पूजो रे भाई।
सुर भवनवासी दस भेद मैं, जिन पूजो रे भाई ॥७॥

ॐ ह्रीं भवनवासीमध्ये स्तनितकुमारनके छिहत्तरी लाख जिनमंदिर तिनमैं बयासी कोडी आठ लाख जिनबिंबेभ्यो अर्घं ॥७॥

दिक्कुमार माहीं जिनमंदिर, लाख छिहत्तरि ताईं।
कोडी बयासी लाख आठ हो, प्रतिमा हैं जिनराई॥
सदा जिन पूजो रे भाई।
सुर भवनवासी दस भेद मैं, जिन पूजो रे भाई ॥८॥

ॐ ह्रीं भवनवासीमध्ये दिक्कुमारनके छिहत्तरिलाख जिनमन्दिरमध्ये बयासीकोडि आठलाख जिनचैत्येभ्यो अर्घं ॥८॥

अग्निकुमारनके जिनवर गृह, लाख छिहत्तर माही।
जिनप्रतिमा है कोडि बयासी, लाख आठ सब भाई ॥
सदा जिन पूजोरे भाई।
सुरभवनवासी दस भेद मैं, जिन पूजो रे भाई ॥ ९॥

ॐ ह्रीं भवनवासीमध्ये अग्निकुमारनके छिहत्तरिलाख जिनमन्दिर तिनमैं बयासीकोडि आठलाख जिनबिंबेभ्यो अर्घं ॥९

बातकुमार माही जिनमन्दिर, लाख छण्णवैं ठाही।
तिनमैं एकसोतीन कोडि फुनि, अडसठिलाख जिनाई॥
सदा जिन पूजोरे भाई।
सुरभवनवासि दस भेद मैं, जिन पूजो रे भाई ॥१०॥

ॐ ह्रीं भवनवासीमध्ये बातकुमारनके छिधानवैलाख मन्दिर तिनमैं एकसोतीन कोडिअड़षठिलाख जिनबिंबेभ्यो अर्घं ॥१०॥

पुनः अर्घं।

द्रुतविलंबित छन्द।

भवनवासिनके दस भेदमैं,
असुरमैं हूय इन्द्र भए गमैं।
तिन मही प्रथम चमरेंद्र यो,
जिनगृहं तिसलक्ष चतुष्कयो ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं भवनवासीमध्ये असुरकुमारनमैं चमरेन्द्र सम्बंधी चोतीसलाख जिनगेहेभ्यो अर्घं ॥ १ ॥

असुर माही कह्यो वैरोचनो,
द्वितीय इन्द्र तहां जिन सोचनो।

सुरपतिकरि पूजित तीम है,
　　लख भये नमिये जगदीस हैं ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं भवनवासीमध्ये असुरकुमारनमैं द्वितीय इन्द्र वैरोचन ताके तीसलाख जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ २ ॥

भवनवासिय नागकुमार है,
　　प्रथम इन्द्र भूतानद धार हैं।
तिसहीके जिनमन्दिर वन्दिये,
　　लख चऊ अर चालीस संठिये ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं भवनवासीमध्ये नागकुमारनके प्रथम इन्द्र भूतानंद ताके चवालीसलाख जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ ३ ॥

भवनवासिय नागकुमारमैं,
　　द्वितिय इंद्र धराण समारमैं।
तिसहीके जिनमन्दिर वंदिये,
　　लख जु चालीस पाप निकंदिये ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं भवनवासीमध्ये नागकुमारनमैं द्वितीय इन्द्र धरणानन्द ताके चालीसलाख जिनमन्दिरेभ्यो अर्घं ॥ ४ ॥

भवनवासिय सुपर्णकुमार हैं,
　　सुपर्णवेणुय नाम जु धार हैं।
प्रथम इंद्रहिके जिनधाम हैं,
　　लखहि हैं अडतीस सु नाम हैं ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं भवनवासी मध्ये सुपर्णकुमारनके वेणुनाम इन्द्रके अडतीसलाख जिनचैत्यालयेभ्यो अर्घं ॥ ५ ॥

द्वितीय इंद्र सुवर्णकुमारमैं,
बसत वेणुपधारि सदा शमैं ।
जिनगृहं चउतीस जु लाख हैं,
सुरपूजित यह जिन भाष हैं ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं भवनवासिनमैं सुवर्णकुमारनके द्वितीय इन्द्रवेणुधारि ताके चौतीसलाख जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ ६ ॥

भवनवासिय द्वीपकुमारमैं,
बसत पूर्णक इन्द्र सुधारमैं ।
सदन है जिनके तीसमैं सही,
सुरग पूजित चालिस लाख ही ॥

ॐ ह्रीं भवनवासीमध्ये द्वीपकुमारनके पूर्ण नाम इन्द्र हैं ताके चालीस लाख जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ ७ ॥

सुरपति द्वितीयासुर द्वीपमैं,
रहत नाम वशिष्ट, सदा समैं ।
जिनथ सद्म तहां छत्तीस हैं,
लखहि वन्दन जग पत्तीस हैं ॥

ॐ ह्रीं भवनवासी द्वीपकुमारनमैं द्वितीय इन्द्र वशिष्ट है ताके छत्तीस लाख जिनचैत्यालयेभ्यो अर्घं ॥ ८ ॥

उदधिनाम कुमार हैं, पंचमा,
प्रथम इंद्र जलप्रभ सं चमा ।
तिसहिके जिनगेह मनाइये,
जिन गृहे लख चालीस गाइये ॥

ॐ ह्रीं भवनवासी उदधिकुमारनमैं जलप्रभ नाम इंद्रके चालीस लाख जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ ९ ॥

द्वीतीय इन्द्र इहां जलकांत हैं,
उदधिमाहि रहै मन शांत हैं।
जिनप सद्म सु लक्ष छत्तीस है,
तिनहि वन्दत तीन जगीसहैं ॥

ॐ ह्रीं भवनवासी उदधिकुमारनमैं द्वितीय इन्द्र जलकांत ताके छत्तीस लक्ष जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ १० ॥

भवनवासिय विद्युत नाम हैं,
प्रथम इन्द्रहि घोसन माम हैं।
लख सु चालिस जिनगृह नामके,
सकल वन्दित केवल भासके ॥

ॐ ह्रीं भवनवासी विद्युतकुमारनमैं घोषनाम प्रथम इंद्र ताके चालीस लाख जिनालयेभ्यो अर्घं ॥ ११ ॥

सुरपति द्वितीयो महा जानिये,
सुमनतैं महघोष वखानिये।
जिन प्रतिगृह छत्तिस लाख है,
तिसके पूजत शिव सुख चाखि हैं ॥

ॐ ह्रीं भवनवासी विद्युत्कुमारनके द्वितीय इन्द्र महाघोष सम्बन्धी छत्तीस लाख जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ १२ ॥

स्तनित सप्तम भावन भेद हैं,
तिस हीमैं हरिषैंण सुरेंद्र हैं।

प्रथम तास ही गेह बखानिये,
सकल है लक्ष चालिस जानिये ॥

ॐ ह्रीं भवनवासी स्तनितकुमारनमैं हरिषेण नाम प्रथम इन्द्रताके चालीस लाख जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ १३ ॥

सुरपती शुभ स्तनितकुमारमैं,
रहत है हरिकांत कलारमैं।
तिसहिके जिन गेह छत्तीस हैं,
लख प्रमाण सदा सुर सीस हैं ॥

ॐ ह्रीं भवनवासी स्तनितकुमारनमैं द्वितीय इन्द्र हरिकांत ताके छत्तीस लाख जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ १४ ॥

दिस कुमारय भावन है सही,
अमितपूर्व गती इह इन्द्र ही।
भवन जैननमें तहां जानिये,
सकल ही लख चाल बखानिये ॥

ॐ ह्रीं भवनवासी दिक्कुमारनमैं प्रथम इन्द्र अमितगति ताके चालीस लाख जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ १५ ॥

द्वितीय इन्द्र यहां निति ही रहैं,
अमित वाहन नाम सदा कहैं।
भवन हैं जिनके शुभ सास्वते,
लख छत्तीस जगत्रय भासते ॥

ॐ ह्रीं भवनवासि दिक्कुमारनमैं द्वितीय इन्द्र अमितवाहन ताके छत्तीस लाख जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ १६ ॥

भवनवासिय अग्निकुमार हैं,
सुख अग्नि सिखी शुभ सार हैं।
जिनय गेह तहां इनने कहे,
सुरब पूजित लक्ष चालीस हैं॥

ॐ ह्रीं भवनवासी अग्निकुमारनमैं अग्निशिखिनाम प्रथम इन्द्र ताके चालीसलाख जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ १७ ॥

द्वितीय अग्निकुमारन इंद्र हैं,
अग्नि वाहन नाम सुरेन्द्र हैं।
सकल मन्दिर छत्तीस लाख हैं,
सुरपति करि वन्दन साख हैं॥

ॐ ह्रीं भवनवासी अग्निकुमारमैं द्वितीय इन्द्र अग्निवाहन-ताके छत्तीसलाख जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ १८ ॥

पवन है सुकुमार दसम कहे,
तिनहि इन्द्र तहां विलयं वहे।
तिनहिको जिनमन्दिर सार हैं,
लख पचास नमैं दुख टार हैं॥

ॐ ह्रीं भवनवासी वातकुमारनमैं वेलंब नाम प्रथम इंद्र-ताके पचासलाख जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ १९ ॥

द्वितीय वातकुमारन इन्द्र हैं,
तिसहि नाम प्रभंजन मन्द्र हैं।
तिसहिके जिनगृह लखि पूजिये,
लख छियालीस निर्भय हूजिये॥

ॐ ह्रीं भवनवासी वातकुमारनमें द्वितीय इन्द्र प्रभंजन नाम ताके छियालीसलाख जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ २० ॥

भवनवासिय या विधि पूजिये,
जिनय गेह सदा सुखसौं जिये।
इनहीकी जयमाल बखानिये,
अठ सुणं सुणतैं दुख भानिये ॥२१॥

अथ भवनवासी चैत्यालय जयमाला।

(संस्कृतका)—त्रोटक छन्द।

दस भेद भावन देव वरां,
खरपंक सु भागम गेह धरा।
कति चालवविभूति धरा अमरा,
कति मध्यम भूमि धरा विमरा ॥ १ ॥
कति चोनम ऋधिग सौख्य गना,
इति भेद निरूपणि कात् कुना।
दश जाति गना सुर भावनका,
प्रथमा सुर नाग सुवर्ण धृता ॥ २ ॥
अथ द्वीप समुद्र तडित्कुमरा,
स्तनिताश्चदिगग्नि महत्कुमरा।
इति द्विविध नाम धराहि सुरा,
विलसन्ति सदा भवनेषु धरा ॥ ३ ॥

जय चामर भावन जैन कोभो,
प्रतिरूपक षट् त्रय कोटि कभो।
जय चाधिक युग्मक लक्षनिके,
इनि बिंब सु मान हरौ प्रथमे॥ ४॥
जय बिंब समूह हराय परे,
दुय मंक मथो त्रय मंक धरे।
इति कोटि सु लक्ष पंच चतु,
रिति सार प्रमाहि जगत्रि हितो॥ ५॥
अथवा सथ भावनके सुपरे,
जय सप्त चतुर्द्दुय पंच धरे।
इति कोटिक लक्ष प्रपंच सदा,
थवि नौमि भैवंत मनन्त मुदा॥ ६॥
जय ह्रींद्र चतुर्थम गेह गभो,
प्रतिबिंब विनान भयांत कभो।
त्रिचतुश्चहि कोटिक संख्य गभो,
अथ विंशति लक्ष विशेष गभो॥ ७॥
जय पंचम वासव भावन जे,
जिन बिंब समूह सुवण प्रजे।
जय चैक चतुर्जिन कोटि कभो,
जय लक्ष चतुर्जिननाय कभो॥ ८॥
जय षष्टम वासव भावन जे,
जिनराज समूह सु हेम प्रजे।

जय षट् अग्र कोटिक देव तथा,
जय लक्ष द्विमसति मान यथा ॥ ९ ॥
जय सप्तम वासव भावन जे,
जिन बिंब समूह च पूर्ण हरो।
त्रिचतुर्जिन कोटिक मान विभो,
जय विंशति लक्ष विशेष विभो ॥१०॥
जय आष्टम वासव भावन जे,
जिन रूप समूह वशिष्ट हरौ।
जय चाष्टक त्रिशति कोटि विभो,
जय लक्ष चतुर्वसु संख्य विभो ॥११॥
जय बिंब समूह सदा नवमें,
हरि राज सु भावन सागरमें।
त्रिचतुर्जिन कोटिक देव सदा,
जय विंशति लक्ष सु मान मुदा ॥१२॥
जिन रूप विनान मदोदधि जे,
दसमे हरि भावन भेद गते।
जय चाष्टक त्रिशति कोटि विभो,
जय लक्ष वसु द्रूप मान कभो ॥१३॥
जय भावन देव पवित्र तपे,
जिन नाथ सदा युगके सुरपे।
जय ही त्रिचतुर्जिन कोटि कभो,
जय विंशति लक्ष सु मान प्रभो ॥१४॥

पद्धड़ी छन्द।

जय भवनवासि जिन देव सदा,
जय थापो सब हम सदा सकुमुदा।
अष्टा त्रिशति कोटिश्रु मान,
चाष्टसीत्याधिक लक्ष मान ॥१५॥
जयचेन्द्र नाम हरिशेण कल्प,
जिन बिंब समूह विभाधाल्प।
कोटि अथ चत्वारिंश थान,
चाधिक विंशति लक्ष प्रमाण ॥१६॥
जयचेन्द्र चतुर्दशकल्प तथा,
हरिकांत नाम कल्पेह यथा।
जय चाष्ट त्रिशति कोटि संख्य,
चाष्टाशीत्पाधि कहे विलक्ष्य ॥ १७ ॥
जय पंच दशम संकल्प हरे,
प्रतिबिंब वितान स्तनित हरे।
त्रिक्चत्वारिंश सु कोटि मान,
जय विंशत्पाधिक देव मान्य ॥१८॥
जय षोडश कल्प हरेर्वितान,
जिनरूपकल्प नित्यं विमान।
अष्टा त्रिशतिकोटि प्रमान,
चाष्टाशित्पाधि कहे प्रमान ॥१९॥

सप्त दशाम हरिक स्याग्नि जस्य,
जय जिन सुमूह नित्यं नमस्य।
त्रिक् चत्वारिंश सु कोटि मान्य,
त्रिशत्पाधिक जय सुख निधान ॥२०॥
जय चाग्निकुमारज वास षस्य,
चाष्टादश सहप जिनौघनस्य।
जय चाष्टा त्रिंश सु कोटि मान,
लक्षाष्टा शोसाधिक प्रमान ॥२१॥
जय वातकुमार जवास वाय,
जिन संघहि चकोन विंशस्प।
कोट्ट्रा हि चतुः पंचाशदत्र,
जय भवनवासि गेहे पवित्र ॥२२॥
जय वासव नाम प्रभंजनस्य,
जिन विंब विनान सु विंशमस्य।
पंचासचैक विहीन मन्त्र,
कोटि लक्षाष्टक षटक मन्त्र ॥२३॥
एवं विध भेद सुगुनं जिनेन्द्र,
माग्रंत विहीन मनंत धींद्र।
वेदामि नमामि स्तौमि सदा,
चचामि सुख ध्यायामि मुदा ॥२४॥
सुर भवनवासि जिनदेव संघ,
कोट्राष्ट शत प्रमित प्रभंग।

त्रित्रिंश कोटि काष्ठ षट लक्ष,
मां रक्ष भवन जिन चेति संख्य ॥२५॥
मां कर्म रिपुः प्रद्वाल्य सुखं,
हे देव सदा च भवधि मुखं।
अधूना कुरुमां गत कर्म रिपु,
कुरु कुरु कुरुमां हो जान शिवपं ॥२६॥
नहि नहि नहि जिन मम रक्ष कोप्र,
भव भव भव हे जिने रक्ष कोप्र।
देहि देहि देहि मोक्षं जिनेंद्र,
हर हर हर भव जभयं मतींद्र ॥२७॥
हन हन हन मोह महारि भयं,
चितर चितर रत्नत्रय मभयं।
दर दर दर मम जिन कर्म गिरिं,
घर घर घर मोक्षगृह हमरं ॥२८॥
भर भर भर मम कल्याण भरं,
आरारारार प्रमन्न परं।
त्वंत्रा तृणां त्राता जिनेंद्र,
त्वं त्रात्रिणां त्राता सुखेंद्र ॥ ९॥
त्वं पितृणां च पिता जिनेन,
त्वं मातृणां माता परेन।
त्वयि संतिगुण बहु चाचि भोहि,
को याति च पारं ते प्रभोहि। ३०॥

सुर गुरु तुल्योपि न याति पार,
मथमा इश मंदो कथम पार।
नहि देव पद वांछामि कदा,
तव सेवां यां च मुक्ति प्रदा ॥३१॥
तांचितर सेवया सार रमां,
बुध महा चन्द्रक स्पहि परमां।
माकुरु विलंबनं त्रि जगदिस,
नहि दातारो मदा मतिश ॥३२॥

द्रुतविलंबित छन्द।

इतिजिनाः शुभ भावन मध्यगाः,
सकल सौख्यकराश्च शिवंवरा।
सकल जीव समूह सुखंकरा,
भव भवासत पूजित का वराः ॥३३॥

ॐ ह्रीं भवनवासि जिनसमूहाय महार्घं।

आर्या छन्द।

ये मनु जाहि पठंति ये श्रृणवंति च धरंति मान सके।
भावन जिन गृह पूजां ते यांति शिव हनुक्रमतः ॥३४॥

इत्याशीर्वादः।

इति श्री भवनवासी जिन चैत्यालय जिनसमूह पूजा समाप्त।

व्यंतर देवनके जिनगृहनकी पूजा।

सोरठा।

व्यन्तरदेव असंख्य एक एक कै जिन भवन।
तातैं संख्य प्रतक्ष कौन करैं जगमैं सुधी ॥१॥
तिन भवननके मांहि जिनवर इकसत आठ हैं।
ते जिन लिखो आय हम पूजन उद्यम कीयो ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं व्यंतर देवनके असंख्यात जिन गृह जिन समूह अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननं। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठःठः स्थापनं। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधापनं।

अथ अष्टकं।

त्रिभंगी छन्द।

कंचनमय झारी जलभरी लारी तुम पद ढारी सुखकारी। जन्मादि निवारो भव दुख टारो, करुणा धारो जिन सारी॥ व्यंतर सुर जिनवर संख्यरहित तर भव भव सुखकर अरज सुनौं। मम जन्म मरण हरए सुख करिए वांछित सरिए मोक्ष पनौं॥

ॐ ह्रीं व्यन्तरदेव स्थित जिनभवन जिनसमूहाय॥ जलं ॥१॥

घनसार सवार्यो कुंकुंम रारचो परिमल धार्यो ले आयो। तुम चरण चढ़ाउं मन हुलसाउं तुम पद ध्याउ सुखपायो॥ व्यन्तर सुर जिनवर संख्यरहित तर भव भव सुख कर अरज सुनौं। भव ताप हटावो शीत बढावो तुम सुख थावो मोक्ष पनौं॥

ॐ ह्रीं व्यन्तरदेव स्थित जिनसमूहाय ॥ चंदनं ॥ २ ॥

शिव सालो अखंडित परिमल मंडित इंदु कुंद-चनि अति सोहे। तुम चरण अगारी पूज धारो मन हरनारा जग मोहैं ॥ व्यन्तर सुर जिनवर० ॥ क्षय रूप भवं हरि करुणकरि अर अक्षयपद करि मोक्षपनौं ॥

ॐ ह्रीं व्यन्तरदेव स्थित जिनसमूहाय ॥ अक्षतं ॥ ३ ॥

शुभवेलि चंपेली जाति सुलेली मोतिनरेला गंध-भरी। तुमरेपद पूजौं और न दूजो तुमपद हुजो काज सरी ॥ व्यन्तर सुर जिनवर० ॥ मुझि काम बांण हरि काम रहत करि तुम पदमैं धरि मोक्षपनौं ॥

ॐ ह्रीं व्यन्तरदेव स्थित जिनसमूहाय पुष्पं ॥ ४ ॥

लै खाजा फीणा रस करि झिणी क्षुधा हरिणी तुरत करी। तुम पद परिवारौं पात्र सुधारौं कर परि-कारौं पाक करी ॥ व्यन्तर सुर जिन० ॥ मम क्षुधा निवारो यो दुःख भारो तुम पद कारो मोक्षपनौं ॥

ॐ ह्रीं व्यन्तरदेव स्थित जिनसमूहाय । नैवेद्यं ॥ ५ ॥

घृतमय शुभ दीपक तुम पद दीपक जोतिउद्यो-तक जोय धरयौ। तुम पद शु आरति मोह जारती तिमिर टारति निश्चय करौं ॥ व्यन्तर सुर जिनवर० ॥ मनमोहन मारो सोहन कारो तुम पद धारो मोक्षपनौं ॥

ॐ ह्रीं व्यन्तरदेव स्थित जिनसमूहाय ॥ दीपं ॥ ६ ॥

श्रीखण्ड आदि ले द्रव्य गन्ध ले करम अरि दले सेवन हौं। कंचन धूपा धनमन हरषाय न मोदनुपाय न लेवन हौं ॥ व्यन्तर सुर जिनवर० ॥ मम कर्म महा अरि अष्ट नास करि तुम पदमैं धरि मोक्षपनौं ॥

ॐ ह्रीं व्यन्तरदेव स्थित जिनसमुदाय ॥ धूपं ॥ ७ ॥

नारिंग बिजोरा आम बहोरा दाख छिहोरा थाल भरे। तुम चरण अग्र धरि मन प्रसन्न करि महामोद धरि प्यार करे ॥ व्यन्तर सुर जिनवर० ॥ जन्मादिक फल हरि भव भव सुख करि तुम पद फल धरि मोक्षपनौं ॥

ॐ ह्रीं व्यन्तरदेव स्थित जिनसमुदाय फलम् ॥ ८ ॥

जल चन्दन अक्षत पुष्प सु चरु अर दीप धूप कर फल सु लिया। यह अर्घ उतारौं तुम पद धारौं मन ही सवारौं हर्ष हिया ॥ व्यन्तर सुर जिन०। मम हार अर्घ पद करि नर्घ पद जहा नहि गद मोक्षपनौं ॥

ॐ ह्रीं व्यन्तरदेव स्थित जिनसमुदाय अर्घं ॥ ९ ॥

मोतीदाम छन्द।

सुरासव चिंतर अष्ट प्रकार, सु किंनर क्रिंपुरुषा सु विचार। महोरग गन्धरवा जु निहार, सु जिक्ष सु राक्षस यह मन धारि ॥ १ ॥ इनौं महि दो दुय इन्द्र कहाय, तिनौं महि चैत्य गृहा सु सुहाय। तिनौं निति भव्यज जै मन लाय, सु अर्घ बनाय महा सुखदाय ॥२॥

अथ प्रत्येकार्घाणि।

लक्ष्मिधरा छन्द।

किंनरा इंद्र द्वै नाम तैं जानिये, एक किंपुरुषो किन्नरो मानिये। एकके चैत्य गेहज संख्या रहे, अर्घ ले पूजतैं जन्म कैसे वहे ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं व्यन्तर मध्य किन्नर भेदमैं दोय इंद्र एक किंपुरुष दूजो किंनर तिन किन्नर सम्बन्धी जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ १ ॥

इंद्रकी पौरसे दोय है निश्चय हो, एक सत्पौरुषो है महापौरुषो। जैनके मन्दिरे संख्य नाहा तहां, वंदतैं दुःख सारे गये हैं जहां॥

ॐ ह्रीं अन्तर मध्य किंपुरिश भेदमैं दोय इंद्र एक सत्पुरुष दूजो महापुरुष तिनके जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ २ ॥

भेद माहोरगे इन्द्र है च्यार है, एक माहाकायु और अति काए हैं। चैत्य गेहा इसा है सदा जैनके, अर्घ ले पूजनैं पापनिकंदके ॥

ॐ ह्रीं व्यन्तर मध्ये महोरग भेदमैं दोय इन्द्र एक महाकाय दूजो अति काय तिन सम्बन्धी जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ ३ ॥

रूपचौपाई छन्द।

चउथे भेद गन्धर्व बखाना, तिनमैं दोय इन्द्र निति जाना। गीतरतीय गीत जस माना, तिनके संख्य रहत जिन धामा ॥

ॐ ह्रीं व्यन्तर मध्ये गन्धर्व जातिमैं दोय इन्द्र एक गीत रती दूजो गीत जस तिन सम्बन्धी जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ ४ ॥

पंचम भेद सु जिक्ष बतायो, तिनमैं मानभद्र इन्द्रायो। दूजा पूर्णभद्र इन माहीं, जिनगृहतैं वन्दू हुलसाहीं ॥

ॐ ह्रीं व्यन्तर मध्ये पंचम भेद जिक्ष है तामैं दोय इन्द्र एक मानभद्र दूजा पूर्णभद्र तिन सम्बन्धी जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥५॥

षष्टम भेद है व्यन्तर मांहीं, राक्षस नामैं इन्द्र रमा हीं। भीम महाभीमो यह नाम, इनके जिनगृह करो प्रणाम ॥

ॐ ह्रीं व्यंतरमध्ये षष्टमभेद राक्षसनामे दोय इन्द्र एक भीम दुजो महाभीम तीन सम्बन्धी जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ ६ ॥

भेद जु सातमैं इंद्र दो हैं, एक स्वरूप नाम दूजो हैं। प्रतिरूपक इनके जिन गेह, पूजूं मन वच तन करि नेह ॥

ॐ ह्रीं व्यन्तरनमध्ये सप्तम भेद भूत तिनमैं दोय इन्द्र एक स्वरूप दूजो प्रतिरूप तिनके जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ ७ ॥

भेद आठवों हैं जु पिशाच, इनमैं इद्र दोय हैं साच। काल एक दूजो महाकाल, इनमैं जिनगृह नमौ त्रिकाल ॥

ॐ ह्रीं व्यन्तरनमध्ये आठवौं भेद पिशाच तिनमैं दोय इन्द्र एक काल दूजो महाकाल इनमैं जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ ८ ॥

आठ भेद यह व्यन्तर देवा, इनमैं जिनग्रह संख्य रहेवा। एक गेह जिन आठ अधिका, सो धनुष पांचसै तुंग नमोसो॥

ॐ ह्रीं अष्टप्रकार व्यंतर तिनसम्बन्धी असंख्यात जिनमंदिर तिन एक एक जिनमन्दिरमैं एकसौ आठ जिनप्रतिमा पांचसै धनुष उत्तंग शरीर करि संजुक्त हैं तिनकै अर्थं महार्घं॥९॥

अथ जयमाला।

दोहा।

व्यंतरदेव जिनेन्द्र गृह, राजत नित्य असंख्य।
तिनको जयमाला रचौ, मनमैं तिनपद लक्ष॥१॥

पाइताछन्द।

जय व्यंतरदेव असंख्य जिनं, प्रणमौं तुमकौं करि शुद्ध मनं। जय आठ जु भेद लहे तिनमैं, जिनराज बिराजत हो इनमैं॥१॥ तह किंनरमैं दश भेद गिनौं, हृद्यंगम गायकरूप भनौं। तह रूप सपालय किंनरकं, फुनि किंनर नन्दित मानरमं॥२॥ तह किंनर उत्तम ए दस है, दस भेद तथा यह किंपुरुषैं। पुरुषं पुरुसोत्तम सत्पुरुषं, मह पौरुष पौरुष कांति दसं॥३॥ अनि पौरुष हैं मरुतोमझरे, चमरुत्प्रभ है जस अन्त मुदे। दस भेद तथा जु महोरगमैं, भुजगा भुजशालि तथोरगमैं॥४॥ महकाय निकाय सुरवन्ध शाली,

मनहार तथा अस नीज भली। महमार तथा सुगंभीर भये, दृगमा प्रिय पूर्व महोर नये ॥ ५ ॥ दस भेद चतुर्थम जानि कहे। तिनमैं जिनगेह असंख्य लहे ॥ जय भेदनमैं जिनराज सदा, हमकौं सरणागत राख मुदा ॥ ६ ॥

पद्धड़ी छन्द।

हाहा हूहू नारक अग्र हैं, तुंबरुक कदम्ब सुवास दहैं। सुमहास्वर गानरता शुभ हैं, गानजमा दैवत ए दस है ॥७॥ तह मान सुपूर्ण सुसैल भद्र, मन भद्र सुभद्र कहोय भद्र। तह सर्व भद्र फुनि मानु लहै, धनपाल सुरूपय जक्ष सुहै ॥ ८ ॥ जक्षात्तम नाम मनोहर हैं, यह बारह भेद सुजिक्षर हैं। इनमैं जिनगेह बिराजत हैं तह कोटिक सूरज लाजत हैं ॥ ९॥ तह राक्षस भेदसु सात सदा, भीमो मह भीमय भेद मुदा। तह विघ्न-विनायक राक्षस हैं, दूय राक्षस दल सुराक्षस हैं॥१०॥ तह भूत सु भेदय सात भये, प्रतिरूप सु रूप सु उत्तमये प्रतिभूत तथा महभूत कहैं प्रतिक्षण आकासु भेद लहैं ॥ ११ ॥ फुनि चौद भेद पिसाचनके, कुंभांड सुंजक्षा रक्षनके। संमोह सुनारक चोक्ष कहे, तह काल महाकाल सु लहै ॥ १२ ॥ तह चोक्षम तालक देह थये, मह देहसु तुक्षिक नाम भये। प्रवचन इनमैं जिनराज देव, राजत निति सुरपति करत सेव ॥१३॥

इनमैं सुरराक्षस एक भाग, बसते हैं जिनवर सेव लाग। बाकी चित्रा पृथ्वी बिलगाय, गिरि मेरु शिखर पर्यंत थाय ॥१४॥ व्यन्तर केई आवासनमैं, केई भवन माहि बसनैं। इनमैं केई भवनपुर रह निशि दिनमैं, या विधिके थान सदा तिनमैं ॥ १५ ॥ उर्द्धगत गिरि वृक्षादिकमैं रहते सोहै। आवासकमैं तह द्वीप समुद्रनमैं, रहै तैसो कहत भवनपुर जिन महते ॥ १६ ॥ चित्रा पृथ्वी मधी जे बसते, ते भवन कहावत शुभ लसते। इत्यादि थान सब व्यंतरके, इनमैं सब व्यंतर हैं भरकै ॥ १७॥ सब मध्यलोकमैं राजत हैं, तहां द्वीप समूह विराजत हैं। इनके गृह पद्मपदमैं भरिए, तातैं असंख्य पद इन धरिये ॥ १८॥ निति जिनवर भक्ति सु लीन रहैं, निति पूजन जिनपद प्रीति गहै। केई किन्नर किन्नरिणी मिलिकै, जिनअग्र सु नाचत हैं जिन अलिकैं ॥ १९ ॥ ननन ननन नन तान धरैं, झनन झनन झननं नुरैं, घनननन घन घन घन्ट करैं, सननननन नाच भरैं ॥ २० ॥ द्रूमद्रूमद्रूमद्रूम जुमृदंग होत, ताथेई थेइथेई धुनि जग उद्योत। चट चट चट चट चट नटत नाट, उट उट उट हट नट मट बिराट ॥ २१ ॥ इम गान तान मन मान करैं, जिनराज सुभाज मना जु धरैं। मुखतैं इम बोलत बोल लोल, जय जय जय जिनवर जग किलोल ॥२२॥

भव भव भव भव तुम चरण सेव, भव भव भव भव भव तुम ही देव। भव भव भव भव तुम कथित धर्म, भव भव भव भव तुम गुरु सुपर्म ॥ हम इस भवमैं व्रत रहत देव, नर भव भवमैं व्रत धरैं एव। हमपैं तुम भक्ति सिवाय नहीं, कछु होय सकै तुम ही तु कही ॥ २३ ॥ तुम भक्ति प्रभाव स्वभाव रहो, तुम भाषित तत्व सदा हि गहो। तुमरे गुन गान समान नहीं, जगमैं कछु सार त्रिलोक महीं ॥ २४ ॥ तातैं हम गान करैं निति ही, हमरे भव मांही सदा हित ही। तुमरे कुछ चाहि नहि जगमैं, हम भक्ति हमैं हि भली अब मैं ॥ २५ ॥

तुम तो अघ उग्र सु मोघ कियो, हमरै अघ उग्र निरत रह्यो। तातैं तुम भक्ति करैं निति हि, हरि पाप प्रताप चलै जित ही ॥ २६ ॥ हमरे नहि ओर जग अघमैं, तुम त्यागि सु देव अनिष्टपथमैं। हमरो दुःख मेटन देव तुमैं, दुःख मिटि शिव पद देहि हमैं ॥ २७ ॥ हमनैं भव बाधा बाधत हैं, दुःख सागर मांहि सुगाधत हैं। सो दूरि करो तुम ही जिन जी, अरजी हमरी इतनी सुन जी ॥ २८ ॥ हमरै सरणैं नहि को जगमैं, तुम ही जिनदेव रखो पगमैं। यौं अरज करि सब व्यन्तरमैं, निज निज निज गृह अभ्यन्तरमैं ॥ २९ ॥ ऐसैं सुर व्यन्तरमैं जिन हैं,

नहि आदि अन्त गिणती विन हैं। ते देव सदा हम वन्दत हैं, संसार समुद्र निकन्दन हैं ॥ ३० ॥

जय जय जिन जीते कर्म अरी, जय जय जिन हमरी अर्जि धरी। जय जय जिन जानत जग स्वरूप, जय जय जिन भानत भर्म भूप ॥ ३१ ॥ या विधि हम ध्यावत हैं तुमकौं, करि निर्भय थान प्रभो हमकौं। यह कर्म अरी दुःख देवत हैं, सुख नाहि कछु हमकूं भवमैं ॥ ३२ ॥ हम और नहीं कछु जाचत हैं, भव भव तुमरे पद राचत हैं। यातैं सरणागत राषो राषो, निज तत्त्व हमैं जिन भाषि भाषि ॥ ३३ ॥ जिन भानि भानि हम भर्म सर्व, जिन मानि मानि यह अरज अर्व। जिन खंडि खंडि खल कर्मनकौं, जिन मंडि मंडि मम मर्मनकौं ॥ ३४ ॥ जिन जानि जानि निजदास हमैं, जिन पुरी पुरी अब आस हमैं। मति करो ढील अब तारणमैं, नहीं बनें ढील शुभ कारणमैं ॥ ३५ ॥

जहां तुम सम देव मिले हमकौं, यह कर्म अरी न भये दमकौं। तो और कौन हनि हैं इनकौं, जगमांही सु व्यापि रहे तिनकौं ॥ ३६ ॥ ऐसे जिन करत पुकार नित्य, बुध महाचन्द्र करि एक चित्त। अब सुनि पुकार करुणा सु धारी, संसार उदधितैं तारि तारि ॥ ३७ ॥

घत्ता छन्द।

व्यन्तर मधि जिनवर सुख्य रहत, वर भव भव सुखकर वन्दत हौं। भव भव भ्रम कारण मोह जवारण, इंद्रिय धारण दंडित हौं ॥ ३८॥

ॐ ह्रीं व्यन्तरदेव स्थित जिन समुदाय महार्घं।

चौपाई।

व्यन्तर माही गेह जिन देव, जे नर पूज करैं स्वयमेव।
कै हि करावैं मन अनुमोद, ते पावे शिव तियकी गोद॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री व्यंतरदेव मध्ये जिनगृह पूजा समाप्त।

अथ ज्योतिषदेव जिनगृह पूजा।

सवैया।

ज्योतिसिदेवन मांही जिनवर गृहनाहि कोई करि कीने नांहि आदि अन्त हीन हैं। एक एक जु विमान तामैं एक जिन थान थान प्रति जिन मान आठ एकसो रहैं॥ पांचसे धनुष देह दीर्घ जिनबिंब कहे अनादि निधन गृह सदा ही बन्यौं रहैं। ऐसे जिनराज देव तिष्ठो आयकैं स्वमेव, करे करैंगे पदाब्ज सेव मन मेरो यो चहै॥ १॥

ॐ ह्रीं ज्योतिषिदेव स्थित जिनसमूह अत्र अवतरावतर संवौषट् आह्वाननं, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं, अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्नि धकरणं।

अथाष्टकम् संस्कृतमें।

शिखरणी छन्द।

सुनिरै नैर्मल्पै. गंगन गत गंगादिक सवै, शुभृत्वा शृङ्गार, कनक कलकांति कर कृतं, सुधारा निस्तेषां, जिनवर पदाब्जानि च यजे, विमानेषु ज्योतिष्कसुरगतकेषु प्रतिदिनं।

ॐ ह्रीं ज्योतिर्देवगन जिनसमूहाय जलम् ॥ १ ॥

सु काश्मीरै गंधाकृषित मधुपैं, श्चन्दनरसैर्भवातापो छेदैं। शुभतर सुशालेन चयुतैः, द्रवीभूतै रेभि जिनवर पदाब्जानि च, यजे विमानेषु ज्योतिष्क सुरगतकेषु प्रतिदिन ॥

ॐ ह्रीं ज्योतिर्देव स्थित जिनसमूहाय चन्दनम् ॥ २ ॥

सु शालेयैः शुभद्विमलतर कुंदेन्दु सदसै, रखंडैः शोभा करै शरल तर तीक्ष्ण रनिचरैः, महा मोदोद्भूते जिनवरपदाब्जानि च, यजे विमानेषु ज्योतिष्क सुरगतकेषु प्रतिदिनं ॥

ॐ ह्रीं ज्योतिर्देव स्थित जिनसमूहाय अक्षतम् ॥ ३ ॥

सु पद्मैः मन्दिरोद्भव कुसुमकै, जातिर्भवकैर्मिल-

भृंग व्राजा, जिनगुण कथानां च कथकैः। सु पुष्पैः सौगन्धैर्जिनवरपद्माब्जानि च यजे विमानेषु ज्योतिष्क सुरगतकेषु प्रतिदिनं ॥

ॐ ह्रीं ज्योतिर्देव स्थित जिनसमुदाय पुष्पम् ॥ ४ ॥

रसैः सर्पिर्दुग्धोद्भवमृदुतरैं निर्मलतरैं सुपक्व स्रो-द्भूतै, र्विमलतरशा ल्रज्ञविभवैः। अनेकैर्नैवेद्यैर्जिनवर पद्माब्जानि च यजे विमानेषु० ॥

ॐ ह्रीं ज्योतिर्देव स्थित जिनसमुदाय नैवेद्यम् ॥ ५ ॥

महा मोहो ध्वान्तो द्विघटन परै, निर्मलतरैर्घृतो-द्भूतैर्दीपैस्तिमिरत्तरैः नाशेमि चतुरैः। जगद्योतैः सारैर्जिनवर पद्माब्जानि च यजे, विमानेषु ज्योतिष्क सुरगतकेषु प्रतिदिनं।

ॐ ह्रीं ज्योतिर्देव स्थित जिनसमुदाय दीपम् ॥ ६ ॥

सुगन्ध श्रीखण्डोद्भवरसुधूपैरतितरैं, श्चलघूपा-मोदिक्कुलतरसुरैः। कर्मदहनकैः महारूपैरेभिर्जिनवर पद्माब्जानि, चयजे विमानेषु ज्योतिष्क० ।

ॐ ह्रीं ज्योतिर्देव स्थित जिनसमुदाय धूपम् ॥ ७ ॥

महाअनारिंगक्रमुकमुखसारैः, शुभतरैस्तथान्यै-र्गन्धाद्यैः शिवफल समानेरिव वरैं। फलैर्गन्धोद्धानै-र्जिनवरपदां, जानिजयजे०।

ॐ ह्रीं ज्योतिर्देव स्थित जिनसमुदाय फलम् ॥ ८ ॥

जलाद्यैर्द्रव्यैर्गन्धिलवरफलांतैरबिरलैर्मनो मोदो-त्पत्तिकृलवरसुखंदातुमनघैः। महार्घं सम्भूतैः जिनवर पदाब्जानिचयजे विमानेषु ज्योतिष्कसुरगनकेषु प्रति०।

ॐ ह्रीं ज्योतिर्देव स्थित जिनसमुदाय अर्घं ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येक अर्घ।

जोगीरासामैं।

ज्योतिषि देवनमैं सुरपति हैं, सोम सदा सुखकारी।
द्वीपसमुद्रन उपरि तिनि पति, रहत महामन हारी॥
जहांतक द्वीपसमुद्र विराजत, तहांतक चन्द्र विराजे।
तिनमैं इक इकमैं जिनमन्दिर, पूजूं मैं अघ भाजैं॥

ॐ ह्रीं पंचप्रकारज्योतिर्देवनमध्ये चन्द्रमानामइन्द्रगण-नारहत हैं ताके एकएक प्रति एकएक जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ १॥

सुर जिनाम प्रतींद्र कहावत, चन्द्र प्रमाण सदा है।
एक चन्द्र तहां एक सूर्य है, ऐसो नेम समावै॥
गणना रहत विराजत सूरज, सदा काजमैं सारे ताकैं।
एक एक महि जिन गृह पूजैं, सब दुख टारैं॥

ॐ ह्रीं ज्योतिर्देव पंचप्रकार तिनमैं सूर्यनाम प्रतीन्द्रगणना रहत हैं ताके एक एकके एक एक जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ २ ॥

एक चन्द्र प्रति अठासी गृह होत सदा ही काले।
तातैं गणना रहत निरन्तर चन्द्र जहां तहां सारे॥
इनमैं एक एक जिन मन्दिर एक एकके विमानैं।
नित्य विराजत हैं तिनकौं मैं नित्य नमौं धरि ध्यानैं॥

ॐ ह्रीं पचप्रकार ज्योतिर्देवन मध्ये एक चन्द्रमा तहां अठासी ग्रह नामा ज्योतिर्देव हैं तिनके एक एक विमान प्रति एक एक जिनगृहेभ्यो अर्घं । ३ ॥

अठाईस नक्षत्र इनोमें चोथो भेद बतायो।
एक चन्द्र प्रति होत अठाईस नित्य निरन्तर गायो ॥
एक नक्षत्रमैं एक ही जिनगृह राजत हैं जु अनादि।
तिनकौं पूजौं मन वच तन करि ले द्रव्य अष्ट जलादि ॥

ॐ ह्रीं पंचप्रकार ज्योतिर्देवनमध्ये नक्षत्रनामा चौथो भेद तामैं एक एक नक्षत्र प्रति एक एक जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ ४ ॥

तारा नाम भेद हैं पचम एक चंद्र प्रति एते।
छासठि सहस्र पचेतरि नोसै कोडाकोडि रहते ॥
तारा एक एक जिनमन्दिर नित्य विराजत सारैं।
तिन मन्दिरनमैं जिनवर प्रतिमा पुजुं मैं शिरधारैं ॥

ॐ ह्रीं पंच प्रकार ज्योतिर्देवन मध्य तारानाम ज्योतिर्देव तिन मैं एक एक प्रति एक एक जिन मन्दिरेभ्यो अर्घं ॥ ५ ॥

एक चन्द्रमां तहां एक रवि अष्टासि ग्रह सोहै।
अष्टाविंशती होत नक्षत्र सु तारा इतना हो है ॥
छयासठि सहस्र पचेतरि नोसै कोडा कोडि जानो।
इन सबमैं जिन मन्दिर तिनि प्रति पूजूं मैं सरधानौं ॥

ॐ ह्रीं पंच प्रकार ज्योतिर्देवनके असंख्यात विमाननमैं असंख्यात जिन गृहेभ्यो अर्घं ॥ ६ ॥

जयमाला।

दोहा।

ज्योतिस देवनके सदा, संख्य रहन जिनदेव।
तिनकी जयमाला कहौं, तिनगुण धरि मन एव ॥ १ ॥

पद्धडी-छन्द।

जय जय जय ज्योतिस मध्य देव, जिनराज जगत सुख करण एव। मैं बन्दत हौं नितिनाय शीश, सुनि तारोवेगि जगतें जनेश ॥ २ ॥ जय चन्द्र विमान विषैं विमोह नित्ति, राजत तुम जिन सर्वकोह। जय जय जिन सूरजिके विमान, जितनें तितनेंमैं तुम समान ॥ ३ ॥ जय जय ग्रह ग्रह मधि तुम सदैव, ग्रहके विमान माहिसुदेव। जय जय नक्षत्र मैं तुम लसन्त, इक इक विमान तुम गेह सन्त ॥ ४ ॥ जय जय तारन मधि एक मांहि, तुमरो ग्रह एक सदार हाथ। जय जय तुम ज्योतिसि सबन मांहि, ज्योतिसिन संख्यको करत नांहि ॥ ५ ॥

चित्रातैं ऊपरि जाय तवै, सत सात तथा निब्बै सु जवै। यह जोजन मान बड़े गनिये, तहां तारा नित्य विराजत ये ॥ ६ ॥ तातैं दस जोजन सूरज हैं, तातै चन्द्र असी ऊरजि हैं। तातैं चतु जोजन रिक्ष गनौं, तातैं चउ जोजन बुधमनौं ॥ ७ ॥ तातै त्रय जोजन शुक्र रहैं, तातैं त्रय जोजन गुरु सु चहैं।

ताउपरि त्रय जोजन कुज है, तातैं त्रय पैंजु शनिश्चर हैं ॥ ८ ॥ तारा तैं उपरि एक शतं, दश जोजन जाय शनिश्चर तं। इकसौं दस जोजन मान सबै, इनमैं सब ज्योतिस नित्य फबैं ॥९॥ इनमैं सब और अबैं गिनिये, उरध इक सार सदा भनिये। तारा इकसौं दश जोजनमैं, सर्वत्र ठिकानै हैं इनमैं ॥१०॥

बाकी ग्रह सर्व जीतेक रहे, ते रहत सदा उपर सु कहे। बुध और शनिश्चरके बिचमैं, इनके जु बिमान रहैं जबिमें ॥ ११ ॥ फुनि राहु बिमान सदा शशितैं, परिमाणांगुल चउ अन्तर तैं। नीचो रहतो निति स्याम रूप, जिनभवन सहित राजत अनूप १२॥ रविकैं तल भाग सुकेतु रहैं, चउ अंगुल परमांणागुल हैं। इनके स्थानक यौं नित्य लखैं, इनके बिमान जिन-राज बसै ॥ १३ ॥ जम्बू ऊपरि शशि दोय भूमैं लवणोदधि ऊपरि चयारिग मैं। बारै शशि धातकि-खंड लखैं, कालोदधि पैं बयालीस बसैं ॥१४॥ पुष्कर-बर द्वीपके अर्धमांहि, शशि रहत बहत्तरि जिन कहाय। पुष्कर बर द्वीप बिचि गिनिये, मनुषोतर गिरि निति हो सुनिये ॥ १५ ॥

तातैं जु परे शशि रूप चलैं, पचास सहस जोजन सु मिल। तहां गोलाकार शशि बसि है,

इक सो षम्माल तहां शशि है ॥ १६ ॥ तातैं जु अग्रके द्वीपनमैं, फुनि सागर उपरि अन्तर मैं। लक्ष जोजन उपरि सर्व ठौर, वलयाकृत शशि राजत वहोर ॥ १७ ॥ सागर सु स्वयंभूरमण कहैं, तहां तक यह सोम विमान रहैं। लोकांत घनोदधि वातवलैं पर्यंत शशि जानो सु भलैं ॥ १८ ॥ पुस्कर के अर्द्ध जु द्वीप मांहि, जितनें शशि तिनतैं च्यारि ताहा। अधिके हैं ऐसे वलय वलय चउ अधिक रूप सब चन्द्र मिलय ॥ १९ ॥ द्वीप समुद्रनके आदि, वलय दूणे दूणे शशि होय। मिलय द्वीपनकी आदि वलय माहि, तातैं दूणें दूणें मिलाय ॥ २० ॥

जहां एक चन्द्र तहां सूर्य एक, ग्रह अठ्ठासि तहां है। वनेक नक्षत्र तहां हैं, अष्ट वीस ताराकी संख्या इम कहीस ॥ २१ ॥ छयासठि हजार पचहत-रिय, नौसै कोडाकोडि गनाय, यह एक चन्द्र जहां सर्व होत ऐसैं जिनदेव कह्यो उद्योत ॥ २२ ॥

चौपाई।

ऐसे ज्योतिषके हैं विमान, तिन सबमैं जिन मन्दिर छान। एक एक मन्दिरके मांहि, प्रतिमा आठ अधिक शत ताहि ॥ २३ ॥ धनुष पांचसै देह शरीर, ऐसे सर्व होत जिन वीर। दीप समुद्र परि सर्वत्र, ज्योतिस देव वसत है तत्र ॥ २४ ॥ ज्योतिस देवनके

जु विमान, तिनकी गणनी नहीं प्रमाण। तातैं ज्योतिषके जिन गेह, संख्या रहित बखाने तेह ॥ २५ ॥ द्वीप अढ़ाई मैं जु विमान, ते सबकाल भ्रमत हो जान जोजन ग्यारहसैं इकईस मेरु, गिरिनतैं दूरि भूमीस ॥ २६ ॥ द्वीप अढ़ाई बारैं सबैं, ज्योतिस देव सदा थिर कबैं। या विधिकाल अनादि जु गयो, काल अनन्त सदा बनि रह्यो। २७ ॥

पाइता छन्द।

इनमैं जिनदेव सदा बसतैं, नहि कृत्रिम आप सदा लसतैं। मही जानु अनन्त विराजत हैं, सब देवन पूज्य समाजत हैं ॥ २८ ॥ जय श्रीधर श्रीकर श्रीवरजी, जय शंकर शंधर शंवरजी। जय मोक्षग मोक्ष परोक्षदजी, जय धर्मप धर्मद धर्मध्वजी ॥ २९॥ जयश्रीशशिवेश शिवंकरजी, जय सौख्य निधान सुखकरजी। जय सोमशमान समकरजी, जय सोमप सोमग शंकरजी ॥ ३० ॥ जय लक्ष विलक्ष सुलक्षकजी, जय पक्ष विपक्ष अपक्षकजी। जय एक अनेक सदैक पर, जय नित्य अनित्य अनन्त धरं ॥ ३१ ॥

जय पार अपार परापरजी, जय सार असारनकौं दुरजी। जय शुद्ध समृद्ध विरुद्धनजी, जय दुःख दवा-नलमैं घनजी ॥ ३२॥ जय मोक्ष रमापति शासनजी, जय भेद अभेद प्रकाशनजी। परमंपर पार परापरजी, मनमोहन मारनमैं अरिजी ॥ ३३ ॥ इन आदि अनेक

गुणाकर हो, महिमा भरपूरन सागर हो। तुमरे गुणकौं कछु पार न हैं, जगके जनकौं तुम तारन हैं ॥३४ हमपैं अब नाथ कृपा करिकै, जगजाल मिटाय क्षमा धरिकै। हमरे गुण ओ गुणके गणजी, तुम नांहि निहारन होपणजी ॥ ३५ ॥ हम तो जगजाल विजांत रमैं, करिवास बसे नहिं अन्तरमैं। हमरि सुधि लेहु दया निधिजी, तुमपैं जु अबानक हो निधिजी ॥३६॥

करुणा निधि देव जगत्पतिजी, सोब नायक पायक सम्पद्जी। तुमपैं कछु और न जाचत है, तुमरे पदमैं मन राचत हैं ॥ ३७। तुम दीन अनेक उधार कीये, हमरी अरजी करिये सु हिये। तुमकौं नित मस्तक नावत हैं, महचन्द्र जु पंडित ध्यावत हैं ॥३८॥

घत्ता छन्द।

ज्योतिसि जिनदेवा सुर कृत सेवा, शिव सुख देवा मैं ध्याऊं। करि पूजा ऐसैं मनमैं हर्षै, मांगत हौं तुम पद पाऊं ॥ ३९ ॥

ॐ ह्रीं ज्योतिर्देव स्थित जिनगृहेभ्यो पूर्णार्घं।

सोरठा।

ज्योतिषि देव जिनंद, जो नर पूजै भावतैं।
सो पावैं सुखकन्द, अनुक्रमतैं शिव पद लहैं॥

इत्याशिर्वादः।

इतिश्री ज्योतिषिदेव जिनगृह पूजा समाप्त।

अथ कल्पवासी देवनकी जिनगृहपूजा

गीता छन्द।

सुर कल्पवासि विमानमैं, जिन गेह सब निरधारिये।
तहां लक्ष चोरासी हजार, सत्तानु तेवीस कारिए॥
इनमैं द्विभेद सु कल्पकल्पातीत हैं, तिन जानिकै।
हम प्रथम कल्प विमान, जिनगृह पूजि है मनमानिकै॥१॥

दोहा।

लक्ष चोरासी छ्याणवै, सहस सातसै गेह।
कल्पवासि देवन विषै, निवसैं सदा सनेह॥२॥
ते जिन अब हम पूजि है, आवो तिष्ठो देव।
मम सन्निहित हुवो करो, कृपा करो स्वयमेव॥३॥

ॐ ह्रीं कल्पवासिन मध्ये षोडश स्वर्गवासी देव स्थित जिनगृह जिन समूह अत्रवतरावतर संवौषट् आह्वाननं। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं, अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

अथ अष्टकं।

(चाल—होरीकी चलित)

श्रीकल्पवासि जिनदेव, ध्यावो स्वर्गमैं। श्री कल्प०॥टेक॥
रत्नजडित वर कंचन झारि, निर्मल नीर भराय।
जन्मजरामृतो नाशन कारण, तीन धार शुभदाय॥
ध्यावो स्वर्गमैं। श्रीकल्पवासि जिनराय॥
ॐ ह्रीं षोडश स्वर्गस्थित जिनगेह जिनसमूहाय जलं॥१॥

केसरि कृष्नागुरु कर्पूरं मेलिन जल घसवाय।
भव आताप प्रताप प्रणासन जिनपद पद्म चढ़ाय॥
ध्यावौं स्वर्गमें श्री कल्पवासी जिनराय॥ ध्यावौं०॥
ॐ ह्रीं कल्पषोडशस्थितजिनगेह जिनसमूहाय चन्दनम्॥२॥
इन्दुकुन्द द्युतिधारक अक्षत सालि कलम नव लाय।
पुंज करो जिन चरणन आगे, जो अक्षयपद चाहि॥
ध्यावौं स्वर्गमें श्री कल्पवासि जिनराय॥ ध्यावौं०॥
ॐ ह्रीं षोडशस्वर्गस्थितजिनगेह जिनसमूहाय अक्षतम्॥३॥
कमल केतकी अर गुलाबके पुष्प सुगन्धित लाय।
कामबाण नाशक जिनको लखि चरण चढ़ावो आय॥
ध्यावौं स्वर्गमें श्री कल्पवासी जिनराय॥ ध्यावौं०॥
ॐ ह्रीं षोडशस्वर्गस्थितजिनगेह जिनसमूहाय पुष्पम्॥ ४॥
नाना रसकर खाजा घेवर मोदक मोद धराय।
क्षुधा वेदना नाश करनकौं त्रिभुवननाथके पाय॥
ध्यावौं स्वर्गमें श्री कल्पवासी जिनराय॥ ध्यावौं०॥
ॐ ह्रीं षोडशस्वर्गस्थितजिनगेह जिनसमूहाय नैवेद्यम्॥ ५॥
घृत कर्पूर मई वर दीपक जोड तुमरे पाय।
मोह तिमिरके नाश करनकौं जिनवर नाम सहाय॥
ध्यावौं स्वर्गमें श्री कल्पवासी जिनराय॥ ध्यावौं०॥
ॐ ह्रीं षोडशस्वर्गस्थितजिनगृह जिनसमूहाय दीपम्॥ ६॥
अगर तगर कृष्नागुरु लेकै गन्धित धूप बनाय।
अष्टकम अरि भस्म करनकौं सेवुं उनके पाय॥

ध्यावौं स्वर्गमैं श्रीकल्पवासी जिनराय ॥ ध्यावौं० ॥

ॐ ह्रीं षोडशस्वर्गस्थित जिनगेह जिनसमूहाय धूपम् ॥ ७॥

नींबू आम्र मनोहर केला कमरख दाख मगाय।
मोक्ष महाफल चाखन कारन फलतैं जजि जिनराय ॥
ध्यावौं स्वर्गमैं श्रीकल्पवासी जिनराय ॥ ध्यावौं० ॥

ॐ ह्रीं षोडशस्वर्गस्थित जिनगृह जिनसमूदाय फलम् ॥ ८ ॥

जलसुख लेय अनित फल लेकैं आठौं द्रव्य मिलाय।
गाय बजाय नाचि प्रभु आगैं अर्घ करो मन लाय॥
ध्यावौं स्वर्गमैं श्रीकल्पवासी जिनराय ॥ ध्यावौं० ॥

ॐ ह्रीं षोडशस्वर्गस्थितजिनगेह जिनसमूहाय अर्घम् ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येकार्घाणि।

शंकर छंद

वन्दूं प्रथम सौधर्म स्वर्ग सु गेह लाख बतीस इकतीस इन्द्रकमैं, सदा फुनि श्रेणिबद्ध गनीस वाकी प्रकीर्णक हैं। विमाननमैं लसैं जिनगेह तिनकौं जजौं शुभ भावनतैं यह अर्घ करमैं लेह ॥

ॐ ह्रीं प्रथमस्वर्गे प्रथमइंद्र सम्बन्धी बतीस लाख विमान तिनमैं बतीस लाख जिनगृह जिनसमूहाय अर्घम् ॥ १ ॥

इन्द्रक विमान जु आदि स्वर्गै, संख्यकरि इकतीस जिनगृह जानि। इनमैं कहे त्रिभुवन इस ईक एक गृहमैं जिन विराजत एक शत अरु आठ, तिन देह तुंग धनुष पंच शत पूजि हूं करि ठाट ॥

ॐ ह्रीं प्रथम स्वर्गे इकतीस इन्द्रकन सम्बन्धी इकतीस जिनगृह जिनसमुदाय अर्घम् ॥ २ ॥

फुनि श्रेणी बद्ध हजार पंच जु छ शत और छिहतर, इकतीसवां इन्द्रक दक्षिण दिस श्रेणी अट्ठासि नामैं रहे सौधर्म इन्द्र। सुराज है सब इन्द्रके इय श्रेणावद्ध जिनेन्द्र मन्दिर पूजि हौं सब दुखवो ॥

ॐ ह्रीं प्रथम स्वर्गे सौधर्म इन्द्र सम्बन्धी पांच हजार छमैं छिहंतरि श्रेणीबद्ध तिनमैं इकतीसवां इन्द्रकके दक्षिण दिशानैं अठारवा श्रेणी बद्धमैं सौधर्म इन्द्रकी बैठक है। तिन सबनमैं जिनगृह जिनसमुदाय अर्घम् ॥ ३ ॥

इकतीस लाख तथा सहंस चोराणवै सु बखान।
शत दोय ओर तरेणवै जु प्रकीर्णका सु विमान ॥
इन सबनमैं जिनगेह प्रतिमा जानिकै, भवि जीव बसु
द्रव्य लेय बनाय अर्घ सु पुजिये जु सदीव ॥

ॐ ह्रीं प्रथम स्वर्गे प्रथम इन्द्रसंबंधि इकतीस इन्द्रकनके इकतीस लाख चौराणवै हजार दायसै तराणवे प्रकीर्णक विमान तिन सबनमैं एक एक जिनगृहेभ्यो अर्घम् ॥ ४ ॥

इन सब विमाननमैं जु बिंब, जु कोडि चोतीस जानि।
फुनि लाख छप्पन अधिक है, यह प्रथम स्वर्ग बखान ॥
पूजो सदा जिनराज मूरति, स्वर्ग प्रथम पिछानी।
फुनि अर्घ लेकरि हर्ष मन धरि, पूजिए मनमानि ॥

ॐ ह्रीं प्रथम स्वर्ग सम्बन्धी बतीसलाख जिनमंदिर तिनमैं चोतीस कोडि छप्पनलाख जिनबिंबेभ्यो अर्घं ॥ ५ ॥

द्रुतविलंबित छंद।

जिनगृह प्रचुरं कथयन्ति च जिनवरा, अथ चोत्तर कल्पके अष्टविंशति लक्ष मित सदा। गृहसमूह मह परिपूजये ॥

ॐ ह्रीं उत्तरदिग्भव द्वितीयैशानकल्पेष्टाविंशतिलक्षप्रमित जिनगृह जिनसमूहायार्घं ॥ ६ ॥

जिनगृहाणि च, श्रेणीविमानकेषु च शताष्टदश प्रमितानिवै। द्विनवति प्रतिमान्यधिकानि च विंशतिा नियजे परकल्पके ॥

ॐ ह्रीं उत्तरदिग्भव द्वितियैशानकल्पे श्रेणुबद्धषुचाष्टादश शतद्वानवत्यधिक जिनगृह जिनसमूहायार्घं ॥ ७ ।

जिनगृहोघमथापरिकिर्णकेषु च सदा प्रयने सुख कारकं, रिपि सुविंशतिलक्ष सुमानकं। नवति चाष्ट सहस्र मथाष्टकं ॥

ॐ ह्रीं उत्तरदिग्भव द्वितीयैशानस्वर्गे प्रकीर्णकेषु सप्त-विंशति लक्षाष्टनवति सहस्र ष्टाधिकप्रमाण जिनगृह जिनसमूहा-यार्घं ॥ ८ ॥

चौपाई।

द्वितीय स्वर्ग विषैं जिनबिंब, तीसकोडि अर अधिक गिनिंब। चोविसलाख सदा पह रहैं, हमकौं पूजेतैं अघ थहैं ॥

ॐ ह्रीं उत्तरदिशामैं दूजा ईशान स्वर्ग ताके तीसकोडी चोबीसलाख जिनबिंबेभ्यो अर्घं ॥ ९ ॥

तीजो स्वर्ग जु सनतकुमार, तामैं जिनगृह हैं भवतार। बारहलाख सदा यह होय, पूजु मैं मन वच तन सोय॥

ॐ ह्रीं सनत्कुमारस्वर्गे बारहलाख विमान तिनमैं बारह-लाख जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ १० ॥

इंद्रक सात यहां जिन कहे, तिनमैं जिनगृह सात ही लहे। तिनकौं पूजों मैं धरि नेह, ते जिन मोकौं निजपद देह॥

ॐ ह्रीं त्रितीय सनत्कुमार स्वर्गे तामैं सात इंद्रनके सात जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ ११ ॥

तीजा स्वर्ग माही जिन गेह, श्रेणि बद्धनके गिनि एह। छसै त्रेपन संख्या कही, इनकौं पूजौं मन-सुख लही।

ॐ ह्रीं तीजो सनत्कुमार स्वर्ग तामैं श्रेणिक बद्धनके छसै त्रेपन जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ १२ ॥

तीजा कल्प माहि जु विमान, नाम प्रकीर्णक कहे बखान। लाख एकादस निन्यानवै, सहस साठि उपरि जिन गृहै॥

ॐ ह्रीं तीजो सनत्कुमार स्वर्ग तामैं ग्यारैलाख निन्या-णवैहजार साठि प्रकीर्णकनके जिनगृहेभ्यो महार्घं ॥ १३ ॥

बारह कोडि अरु छ्याणवै लाख, स्वर्ग तीसरे बिंब जु भाख। दक्षिण इंद्र तालिकै एह, इनकौं पूजुं मन धरि नेह॥

ॐ ह्रीं त्रितीय स्वर्ग सनत्कुमार तामैं बारहकोडि छ्याणवै लाख जिनबिंबेभ्यो अर्घं॥ १४॥

तोटकछन्द।

जिन गेह सदा पर कल्प मही, लख अष्ट प्रमाण जिनेन्द्र कही। तिनकौं मन धारी जजौं निति ही, मनमैं धरि नेह जिनेन्द्र मही॥

ॐ ह्रीं उत्तरदिशामें माहेंद्र स्वर्ग तामैं आठलाख प्रमाण जिनगृहेभ्यो अर्घं॥ १५॥

चतुर्थ फुनि श्रेणिबद्ध सही, शत दोय इग्यारह नित्य कही। इनमैं जिनगेह सदा बनि है तिनकौं निति पुजुन इंद्र महै॥

ॐ ह्रीं उत्तरदिशामैं माहेन्द्र स्वर्ग सम्बन्धी दोयसै ग्यारह श्रेणिबद्धनके जिनगृहेभ्यो अर्घम्॥ १६॥

परिकीर्ण विमान सदा गनिये, लख सप्त निन्याणु वैसंसनिये। शत सात निवासिय मन्दिर हैं, इनकौं निति पूज पुरंतर है॥

ॐ ह्रीं उत्तरदिशा संबंधि माहेंद्रस्वर्गमैं सातलाख निन्याणवैहजार सातसै निवासी प्रकीर्णक तिनप्रमाण जिनगृहेभ्यो अर्घम्॥ १७॥

जिनबिंब समूह महान लसैं, अठकोडिय चोसठि लाख बसैं। तिनकौं निजिचेथप कल्प मही, हम ध्यावत है मन मोदमई ॥

ॐ ह्रीं उत्तरदिशामैं माहेन्द्र स्वर्गमैं आठ कोडि चौसठ लाख जिनमन्दिरेभ्यो अर्घम् ॥ १८ ॥

मह पंचम षष्ठम कल्प मही, लख च्यारि जिनालय है तितही। यह दोय ब्रह्म ब्रह्मोत्तर हैं, इनमैं जिन वन्दत पाप दहै ॥

ॐ ह्रीं ब्रह्म ब्रह्मोत्तर नाम पंचम षष्टम स्वर्गमैं च्यारि लाख जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ १९ ॥

यह कल्प मही दुयमैं गनिये, शुभच्यारिय इंद्रक है सुनिये। तिनमैं जिनगेह लसै घउ है, हम पूजत पाप पलायउ हैं ॥

ॐ ह्रीं ब्रह्म ब्रह्मोतर स्वर्गे च्यारि इन्द्रकनके च्यारि जिनालयेभ्यो अर्घं ॥ २० ॥

इनमैं यह श्रेणिय बद्ध लसैं, त्रयसैजु बहत्तरि संख्य बसै। इनमैं जिनगेह विराजत है, इनके हि समान समाजत हैं ॥

ॐ ह्रीं ब्रह्मब्रह्मोतर स्वर्गे तीनसै बहत्तरि श्रेणिबद्धनमैं जिनगृहेभ्यो अर्घम् ॥ २१ ॥

परिकीर्णक नाम विमान यहां, त्रय लक्ष निंडपाणव

संस कहा। लहै छैसत है अष्ट विंशति है, जिनगेह नमौं निति ही जित हैं॥

ॐ ह्रीं ब्रह्म ब्रह्मोत्तर स्वर्गमैं तिन लाख निन्याणवैं हजार छसैं अठाईस सम्बन्धी जिनगृहेभ्यो अर्घम् ॥ २२ ॥

जिनगेहनमैं जिनराज बसै, चतु कोडि बत्तीस जु लाख लसैं। तिनकौं निति बन्दत भावन सौं, सुर राज समाज मिलावन सौं॥

ॐ ह्रीं ब्रह्म ब्रह्मोत्तर स्वर्गमैं च्यारि कोडि बत्तीस लाख जिनबिंबेभ्यो अर्घम् ॥ २३ ॥

लक्ष्मीधरा छन्द।

स्वर्ग सप्तम तथाष्टमैं जानिये, संत पचास जिन गेह ही मानिये। पूजि हूँ भावनैं मैं महा मोदनैं, लेयकैं अर्घ हाथै सदा चोलतैं॥

ॐ ह्रीं लांतव कापिष्ट स्वर्गनमैं पचास हजार जिन-मन्दिरेभ्यो अर्घम् ॥ २४ ॥

दोय इन्द्र माना यहां राजतै, नित्य अंतंनहि तेज रवि लाजतैं। दोय ही जैन गेहा अकत्र लसै, ताहि पूजै सदा जाय नामैं बसैं॥

ॐ ह्रीं लांतव कापिष्ट दोय स्वर्गमैं दोय इन्द्र तनके दोय जिनमन्दिरेभ्यो अर्घम् ॥ २५ ॥

श्रेणि बद्धा विमाना इहां नित्य हैं, एकसो और

छप्पन राजत हैं। जैन सद्म सदा एकमैं एक हैं, पूजि हौं धारि आनन्दकौं सेक है ॥

ॐ ह्रीं लांतव कापिष्ट दोय स्वर्गनमैं एकसो छप्पन श्रेणी बद्ध तिन एक एक सम्बन्धि एक एक जिनगृहेभ्यो अर्घम् ॥ २६॥

है यहां नाम तैं कीर्णका सोहते, एक तैं हीन पचास संसंजते। आठयै और व्यालीस संख्या कही, मैं जिजौं बिम्ब तानैं लहौं नामही ॥

ॐ ह्रीं लांतव कापिष्ट नाम दोय स्वर्गमैं गुणचास हजार आठयैं बैयालीस प्रकीर्णक विमान तिन एक एक सम्बन्धी एक एक जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ २७ ॥

बिंब हैं सर्व चोवन लक्षं प्रमा पंचसे, तुंग देहो धनुर्द्ध क्रमाराजिनै। निंद्य कलनि हतनकि पूजिहौं मैं महामोद धार्‌यो अर्भो ॥

ॐ ह्रीं लांतवकापिष्ट दोय स्वर्गमैं चोवन लाख जिन प्रतिमां पांच पांचसै धनुष ऊंच सदा विराजमानेभ्यो जिन-बिंबेभ्यो अर्घं ॥ २८ ॥

मोतीदाम छन्द।

विराजत कल्पन वेद समे, सचुवालिस सहस्र गेह जिनेस। तिनैं मनमैं धरि मोद विशेष, जिजौं जिन धाम सदा सु असेस ॥

ॐ ह्रीं शुक्रमहाशुक्र नाम नवमदसम स्वर्गमैं चालीस लाख जिनमन्दिर जिनसमुदाय अर्घं ॥ २९ ॥

विमानशु इन्द्रक एक यहां ही लसै, मनैं मोद धरै मनमांहि यहां। जिनमन्दिर एक लसंत जजौं जिनराज समाजस जन्त ॥

ॐ ह्रीं शुक्रमहाशुक्र नाम दोय स्वर्गमें एक इन्द्रक सम्बन्धि एक जिनमन्दिराय अर्घं। ३०॥

शुभ श्रेणीय बद्ध विमान कहे, ही बहत्तरि हो हि निरन्तर एही। इनौं महि मन्दिर है जिनके, है नमौं निति जोरिकर द्वय एह ॥

ॐ ह्रीं शुक्रमहाशुक्र नाम दोय स्वर्गमें बहत्तरि श्रेणिबद्धन सम्बन्धि जिनगृहेभ्यो अर्घम् ॥ ३१ ॥

विमान प्रकीर्णक थाकि रहेय, सु चालिस एक न संमक हेय। तथा नवसै सतवासधि केय यहां जिनगेह नमौं धरि नेह ॥

ॐ ह्रीं शुक्रमहाशुक्र स्वर्गनमें गुणतालीस हजार नवसै सताईस प्रकीर्णक विमाननिसम्बन्धि जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥३२॥

सबैं जिनबिंब यहां लखो लेय, तयालीस लक्ष सदा बनि एय। तथा गह विंशति सस प्रमान, नमौं जिन मूरतिमैं धरि ध्यान ॥

ॐ ह्रीं शुक्रमहाशुक्र स्वर्गनमैं तयालिस लाख त्रीस हजार जिनबिंबेभ्यो अर्घं ॥ ३४ ॥

सोरठा।

स्वर्गसतार जु नाम सहस्रार दुजो लखो इनमैं

जिनग्रह सार । पूजो मन बच कायतैं, छ सहंस जिन धाम दोनौं स्वर्गनके, करये अर्घ लेय जपि नाम ॥ पूजन हौं शुद्ध द्रव्यतैं ॥

ॐ ह्रीं सतारसहस्त्रार नाम ग्यारम बारम स्वर्गमैं छै हजार जिनमन्दिरेभ्यो अर्घं ॥ ३४ ॥

इंद्रक एक कहाय दोनौं स्वर्गनके विषैं ।
तामैं जिन ग्रह पाय पूजो हर्ष बधायकैं ॥

ॐ ह्रीं सतार सहस्रार नाम एकादशम द्वादशम स्वर्गमैं एक इंद्रक तासंबधी एक जिन गृहाय अर्घं ॥ ३५ ॥

श्रेणिबद्ध विमान अडसठि हैं सब जानिये ।
तिनकौं मनमैं आन जिन गृह पूजों भावतैं ॥

ॐ ह्रीं सतार सहस्रार नाम दोय स्वर्गनमैं अडसठि श्रेणि बद्ध विमाननि सम्बन्धी जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ ३६ ॥

यनमैं परिकीर्णाहि पंच हजार अधिक इता नौ सै इकतीसाहि जिन गृह तिनके पूजी हौं ॥

ॐ ह्रीं सतार सहस्रार नाम दोय स्वर्गन मैं पंचहजार नौमै इकतीस प्रकीर्णक विमान तिन सम्बन्धी जिन गृहेभ्यो अर्घं ॥ ३७ ॥

सब जिन प्रतिमा सब दोय स्वर्गमांहि बनी ।
लाषहि छैहै अभंग अकतालीस सहस हैं ॥ ३८ ॥
ते सब प्रतिमा आजि पूजन हौं निज भाव तैं ।
पूरो हमरो काज यह बीनती हमरी सही ॥

ॐ ह्रीं सतार सहस्रार नाम दोय स्वर्गनैं छै लाख अडतालीस हजार जिन बिंबेभ्यो अर्घं ॥ ३९ ॥

चौपाई।

स्वर्ग च्यारि मैं है जिनगेहा, सात सतक वंदूं धरि नेहा। वंदूं तिन कौं मन वच काई, यह आनन्द बढ्यो मन मांहि ॥४०॥ आणत प्राणत अरण सुनामा, ओर अच्युत यह च्यारि सुधामा। इनमैं जिनवरगेह बताए, तिनकौं पूजौं मन वच काए ॥

ॐ ह्रीं आणत प्राणत आरण अच्युत नाम च्यारि स्वर्ग मैं सात सैं जिन मन्दिरेभ्यो अर्घं ॥ ४१ ॥

इंद्रक इन च्यारिन मैं छै हैं, जिनमन्दिर तिन मैं तितने हैं। तिन कौं पूजत हौं हरषाइ, यह वांछा उपजी मन मांही ॥

ॐ ह्रीं आणत प्राणत आरण अच्युत नाम च्यारि स्वर्ग मैं छह इंद्रकन सम्बन्धी जिन मन्दिरेभ्यो अर्घं ॥ ४२ ॥

श्रेणी बद्ध विमानन माही, तीन सतक चोसठि जिन नाई। इन मैं मन्दिर हैं जिनकेरा, तिन कौं मैं हौं चरणन चेरा ॥

ॐ ह्रीं च्यारि स्वर्गन सम्बन्धी तीनसै चौसठी श्रेणि-बद्धन सम्बन्धी जिनमन्दिरेभ्यो अर्घं ॥ ४३ ॥

च्यारिन मैं परकीर्णक जानौं, तीन सतक

छतीस प्रमानौं। इनके जिन गृह पूजौं सारं, कर द्रव्य ले अष्ट प्रकारं॥

ॐ ह्रीं च्यारि स्वर्गन मैं तीन से छतीस प्रकीर्णक विमान सम्बन्धी जिन गृहेभ्यो अर्घं॥ ४४॥

जिनप्रतिमा च्यारिनके मांही, सहस पचेतरी घटसत याही। तिनकौं पूजौं मन वच काय, अघ लेप कर्मन हुलसाय॥

ॐ ह्रीं आनत प्राणत आरण अच्युत नाम च्यारि स्वर्गनमैं पचहेतरि हजार छैसै सर्व जिनबिंबेभ्यो अर्घम्॥४५॥

षोडश कल्प मांहि जिन गेहा, लाख चोरासी प्रथम गनेहा। छनहंसनवैं सात से सारा, अर्घ बनाय जजौं जगु तारा॥

ॐ ह्रीं सौधर्मादि अच्युतपर्यंत षोडस स्वर्गन विषैं च्योरासी लाख छ्यानवे हजार सातसै प्रमाण सर्व जिन मन्दिरेभ्यो अर्घं॥ ४६॥

जिन प्रतिमा सब स्वर्गन मांही, कोडि इक्याणवै गनि मन मांही। लाख छिहंतरि सहंस तयाला, छै सै मैं पूजौं तिर काला॥

ॐ ह्रीं सौधर्मादि अच्युतपर्यंत षोडस स्वर्गनमैं इक्याणवै कोडि छिहंतरि लाख तयालीस हजार छसै सर्वं जिन बिंबेभ्यो अर्घं॥ ४७॥

दोहा।

याविधि षोडश स्वर्ग के, पूजे जिन वर गेह।
अब इनकी जयमाल जपि, नर भव लाहो लेय ॥ १ ॥

जयमाला।

सोरठा।

सौधर्मादि निहारी अच्युत अन्त विचारिकैं,
षोडश कल्प हो धार। अब जयमाला मनलयो ॥१॥

सुन्दरी छन्द।

जय जय प्रथमैं शुभ कल्प मैं, जिनस गेह लसै नहि। ओपमैं जयति इंद्र सुधर्म पूज्य हो, जयसु पंच प्रमाण विधैं जु हो ॥ २ ॥ जयतु मैं विव दूसरम जजे, द्वितिय इंद्र इशान सदा भज। जय सु तीनही भागमही तुमैं, जय सु इंद्रक ईकतिस इमैं ॥३॥ सुरपै बैठक इंद्रक के विषै, उपरिके ईकतीस हो कल्प कै। जय तहां शुभ श्रेणि अठार वैं, दक्षिण उत्तर तुम जयकार वैं जयतु मैं त्रितिये दिवमैं सही, जजत इन्द्र सु मान कुमार ही। दक्षिण पुरव पश्चिम वाचिमैं, सबनको यह मालिक है इमैं ॥ ४ ॥ रहत इन्द्रक सप्तम श्रेणीमैं, दक्षिण केषु विमान विशैं रमैं। जयहीं षोडश मान्नु विमानमैं, जजन हैं तुमकौं लखि ज्ञानमैं ॥ ५ ॥

जय जय प्रभु कल्प चतुर्थमैं, तुम महेन्द्र जजै निति स्वायमैं। द्वय सु कौंगर उत्तरमैं सदा, सबनको

यह मालिक है सुदा ॥ ६ ॥ रहत बैठक सप्तम इन्द्रके, दिस सु उत्तर सोलम श्रेणीके। जय तुमैं निति पूजत भावसौं, नचत गान करें सु उछाहसौं ॥ ७ ॥

पद्धड़ी छन्द।

तुमकौं जय देव सदा दिवमैं, जय पंचममैं ब्रह्मे-इनमैं। जय पंचम षष्ठम इन्द्र एक, तुमकौं ध्यावत निति करि विवेक ॥ ८ ॥ जय ब्रह्म इन्द्र पञ्चम दिवमैं, दक्षिण श्रेणि बद्ध चौदशमैं। यहां बैठि पूजत हैं तुमकौं, निति जाचत तारि विभो हमकौं ॥ ९ ॥ जय ब्रह्म अन्त लोकांत देव, तुमकौं पूजैं निति करत सेव। जय आठ प्रकार रहैं निति ही, सारस्वत अर आदित्य कही ॥ १० ॥

वह्नबहि अरुण फुनि गर्दतोय, तुषिताव्याबाध अरिष्ट होय। ईसाण आदि परिकोणमांहि, यह तुमकौं पूजत हैं जिनाय ॥ ११ ॥ ब्रह्मोत्तरमैं यह इन्द्र होय, तुमकौं नित पूजत इन्द्र साय। लांतवकापिष्ठ हि स्वर्ग दोय, कापिष्ठ मांहा हरि रहत जोय ॥ १२ ॥ जय सप्त अष्टमैं इन्द्र एक, कापिष्ठ सु उत्तर श्रेणि देख। जय बारम श्रेणि बद्ध मांहि, बैठक पूजै नित हर्ष लाय ॥ १३ ॥ जय शुक्र महाशुक्र हि जिनेश, तुमकौं हरि शुक्र जिजैं महेश। इन दोय स्वर्गमैं इन्द्र एक, दक्षिण कल्पं महि रहित पेख ॥ १४ ॥ जय शुक्र इन्द्र

बैठक रहाय, दक्षिण श्रेणि बद्ध दसम माहि। निति पूजैं तुमकौं शुद्ध भाय, जय जय जय जय जय रव कराय ॥ १५ ॥

एकादश द्वादश स्वर्ग दोय, इनमैं निज इन्द्र ही एक दोय। जय जय सतार अर सहस्रार, यह नाम दोय दिन है सभार ॥ १६ ॥ उत्तर दिव नाम सु सह-स्रार, तामैं हरि बैठत सहस्रार। श्रेणि बद्ध उत्तर माहि होय, अष्टम हरि बैठक नित्य जोय ॥ १७ ॥ ऐसैं इन जुगलन च्यारि माहि, हरि च्यारि होय जिन तुम कहा ही। तुमकौं जय पूजत बार बार, मनमैं अति आनन्द धारि धारि ॥ १८ ॥ जय आनत स्वर्ग सु आनतेन्द्र, तुमकौं पूजत हैं निज सुरेन्द्र। दक्षिण दिशि आदि सुपंच दिशा, यह मालिक है राजेन्द्र जिसा ॥ १९ ॥ यह दक्षिण श्रेणि बद्ध महीं, अष्टममैं रहत सदीव यहीं। जय जय तुम देव सहाय जी है, अति भक्ति लीन सुर पति भजि हैं ॥ २० ॥

जय तुमकौं प्राणत इन्द्र जजै, चउदसमैं कल्प यह राज रजै। यह उत्तर दिशा अर कौंण दोय, इन तीन भाग कांई सहोय ॥ २१ ॥ यह बैठत श्रेणि बद्ध माही, उत्तर दिशि अष्टम संख्य काहि। जय जय तुम या करि पूजित हो, जय जय जग जीवनके हित हो ॥ २२ ॥ जय जय आरणमैं तुम निति हो, आरण

सुरपति करि पूजित हो। दक्षिण दिशमैं पंच भाग, नायक हैं तुमकौं जजन लाग ॥ २३ ॥ जय जय तुमकौं यह इन्द्र जजे, दक्षिण दिस श्रेणिय बद्ध भजै। अष्टम श्रेणि बन्ध विमानैं, नामैं वठल तुमकौं ध्यानैं ॥२४॥ जय जय तुम षोडश कल्प माहि, अच्युत नामेंद्र जजै जिनाहि। यह उत्तरमैं अध भागनको, ईश्वर तुमकौं यज नागनको ॥ २५ ॥

जय जय यह उत्तर श्रेणी बद्ध, अष्टममैं रहत सदा समृद्ध। जय तुम यश वासव ईश्वर हो, जय जय तुम सब जगदीश्वर हो ॥ २६ ॥ ऐसैं तुम षोडश स्वर्ग माहि, मन मोदक देव जगमैं तुमाहि। जय जय तुम तीनौं लोक मांही, सर्वत्र थान व्यापी जानाय ॥ २७ ॥ तुमको सुरपति स्वर्ग मैं, ध्यावनिनित है आनन्द गर्कनमैं। नहि तुम बिन कोई और देव, ध्यावन लायक है नाथ एव ॥ २८ ॥

मोतिदाम छन्द।

सुरेन्द्र सुरिद्र सुरासुर ईय सु स्वर्गन मांहि, तुमैं जजतिय नचै चरच। चरणांबुज कंहि सजै, सब साज समाज कजंहि ॥ २९ ॥ कर कर ताल सु ताल कराल, महा सुकुमाल सुरूप विशाल। छमाझम छंछ मछं छम छोर, दमादम दंदम दंदम दोर ॥ ३० ॥ घनाघन घंघन घंघन घोर, टमाटम टंटम टंटम टकोर।

हमाहम हं हम होल दहोर, समासम शांसम शब्द झकोर ॥ ३१ ॥ झनाझन झंझन झंझनकोर, अटा-अट अ अट अंअट मोर। चलाचल चंचल चालि चकोर, गमागम गंगम गंगमगोर ॥ ३२ ॥ नचैं इस भांति सुरेन्द्र सुरिन्द्र, कहैं मुखनैं हम तारि जिनेन्द्र। कहो तुम मारग जान उपाय, गहो हम हाथ करो मन चाय ॥ ३३ ॥ हमैं नहि और जगत्पति चाहि, करो तुमरे व्रत निर्मलताहि। हमैं तुम भाषित सम्यक् धारि, लखो पद देव हि कल्प मझारि ॥ ३४ ॥ अबै हमकौं नर जन्म कराय, सु उत्तम धर्म तुमैं चकमाय। महा कुल उत्तम द्यो जिनराय, तहां शुभ संगति नित्य लहाय ॥ ३५ ॥

सु श्रावकके व्रत पूरव धारि, सु सम्यक् संयुत सुद्ध सवारि। सु फेरि तुमैं व्रत शुद्ध कराय, सु सम्यक्ज्ञान चरित्र बनाय ॥ ३६ ॥ करो यह नाथ जगत्पति मोहि, अनुक्रम मोक्ष सु येठक होय। बडीय विभूति जगत्त्रय मांहि, सुरेन्द्र तनी सब पाई नाहि ॥ ३७ ॥ जगत्त्रयमैं बहु रिद्धि समाज, सुरेन्द्रनकै सब पायो राज। अबैं हम मोक्षपुरी रिद्धि देय, यही हम मागत सेव करेय ॥ ३८ ॥ सुरेन्द्र तुमैं यम जाचत हैंय, तुमैं पदमें मन राचत हैय। अबै जिन षोडश कल्पन मांहि, सुनौं हमरी विनती सु कराही ॥ ३९ ॥ हरो

हमरो हठ कर्म करंत, न मानत नाथ तुमैं विरतंत। महा घनघोर हलाहल खाय, मिथ्यात सु हाल हल अधिकाय ॥ ४० ॥

करै दुःख घोर भवांतर मांहि, मिथ्यात्व हलाहल नाहि हटाय। करो मिथ्यात्व सुखंडन नाथ, करो सबका जग हो मम हाथ ॥ ४१ ॥ हमैं नहिं किंचित् चैतक नाथ, भ्रमैं निति चौगति कमन साथि। कहु मन थापि निगोद मझारी, महा दुःख देत नहि सुख सार ॥ ४२ ॥ कभी मुझ नारकीके दुःख देय, सु छेदन भेदन ताड़न लेय। वहाँ जगदीस तहाँ मम कोय, तुमैं बिन नाथ सहाय न होय ॥ ४३ ॥ कभी पशुमैं मुझि लेय गमेय, क्षुधादिक दुःख अनेक करेय। नहीं कछु खान न पानहि देय, महा दुःख भार घनेय लदेय ॥ ४४ ॥ कभी सुरमांही मुझे बिलमाय, सु मानस दुःख महा अधिकाय। तहां करि माल लखौं कुमलान, करै मुझि दुःख महा अघ खानि ॥४५॥

कभी नर मांही महा दुःख देय, सु इष्ट वियोग अनिष्ट करेय। सु राय हि रंक न वार लगेय, महा दुःख देत कराल कहेय ॥ ४६ ॥ अबैं हम मानुष जन्म लहा ही, करै तुम सेव जगत्त्रय राय। करो हमकौं भवसागर पार, हमैं अब वेगि वरौं शिव नारि ॥४७॥ तुमैं बिन कौन हरै भवपीर, तुमैं बिन कौन करै सुख

सीर। तुमैं विन कौन मिटावन दुःख, तुमैं विन कौन बढावन सुख ॥ ४८ ॥ तुमैं विन देव नहीं कोई और, तुमैं विन जीव सहैं दुख घोर। तुमैं विन कौन सुनैं जिय पीर, तुमैं विन कौन हनैं दुःख धीर ॥ ४९ ॥ हमैं तुम सेवक सेव करेय, भवोदधि तारि महा सुख देय। इती अरजी हमरी सुनि लेय, दयानिधि नाथ कृपा करियेय ॥ ५० ॥

अरी विधि हानि विधान करेय, भवांतरमैं यह दुःख जु देय। करो अरि कर्मन खण्डन नाथ, करो भवपार गहो मुहि हाथ ॥ ५१ ॥ हमैं तुमपैं नहिं जाचन और, भवांतरमैं तुम सेव मिलौर। यही हमरै नित चाह लगाय, करो मन चिंतित है जिन जोय ॥ ५२ ॥ महाचन्द चन्दत प्रीति लगाय, कहै मुझिकों तुमरो पद थाय। महा सुख सम्पत्ति कीजिय नाथ, जलांजलि दे हम ज्यों भवपाथ ॥ ५३ ॥

घत्ता छन्द।

जिन कल्पनवासी सब सुखरासी, पूजत कल्पन इन्द्रवरा। मैं पूजत हौं निति भवभव सन्तति, पाऊं सम्पति आप धरा ॥ ५४ ॥

ॐ ह्रीं कल्पवासीस्थित जिनसमूहाय महार्घं।

दोहा।

कल्पवासी महीं जिनभवन, जो पूजै जस गाय।
सो सुखसम्पति शिव लहैं, भवदुख सर्व मिटाय ॥१॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री कल्पवासी जिनभवन पूजा समाप्त।

अथ कल्पातीत जिनभवन पूजा।

संस्कृत सुग्धरा छन्द।

कल्पातीता जिनेन्द्राः सुखरसकलैः पूजिताश्चाहमिन्द्रै। ग्रैवेयेषुस्थिताः सप्तवसु च परतोये चपंचोत्तरेषु ॥
ते सर्वेषाअसम्प्राप्य परमसुखदास्तिष्ठरशाभि मुख्यं।
सारैर्नीराद्विकस्तान् सुरपति महितान् पूजयामीहभक्त्या ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं कल्पातीत ग्रैवेयकानुदिशानुत्तर विमानस्थित जिनसमूह अत्रावतर संवौषट आह्वाननं। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्रमम सन्निहितो भवभव वषट् सन्निधापनं।

अथाष्टकं।

संस्कृत द्रुतविलंबित छन्द।

विमलनीरभृते शुभकांचनैं, विमलधारवरैर्जिनपादयोः।
अतिमनोज्ञजलैर्जिनपंगजे, सुखकरंस्वहमिन्द्रगतं सदा॥

ॐ ह्रीं कल्पातीत विमानास्थितजिनसमूहाय जलं ॥ १ ॥

अतिसुगन्धिनचन्दनसद्द्रवैः परम शीतलकैर्जिनपद्मम्।
भवतप प्रहरं परिपूजये, सुखकरंस्वहमिन्द्रगतं सदा॥

ॐ ह्रीं कल्पातीतस्थित जिनसमूहाय चन्दनम् ॥ २ ॥

अमलमनोज्ञसुतन्दुल पुंजकैः परिमलप्रकरैर्जिनपंयजे।
विगतनाशपदं प्रतिसंस्थितं, सुखकरं त्वहमिंद्रगतं सदा॥

ॐ ह्रीं कल्पातीत स्थितजिनसमुदाय अक्षतं ॥ ३ ॥

कमलमल्लिसुजातिज पुष्पकैर्विगतमोदमनोभवनाशकैः।
विगतमन्मथदुःख जिनंयजे सुखकरं त्वहमिंद्रगतं सदा॥

ॐ ह्रीं कल्पातीत विमान स्थित जिनसमुदाय पुष्पं ॥ ४ ॥

विमलमोदकमुख्यनिवद्यकैः, सकलजीव सुमोदनकारकैः। विगतरोगजिनं परिपूजये, सुखकरं त्वहमिंद्रगतं सदा ॥

ॐ ह्रीं कल्पातीत विमानस्थित जिनसमुदाय नैवेद्यं ॥ ५ ॥

घृत मयैर्वरदीपितदीपकैः तिमिरमोह भवप्रविनाशकैः।
विगतमोहजिनवरिपूजये, सुखकरं त्वहमिंद्रगतं सदा॥

ॐ ह्रीं कल्पातीत विमानस्थित जिनसमुदाय दीपं ॥ ६ ॥

अगरुमुख्यभवैर्वरधूपकैः, कृतमहारिविधि प्रविनाशकैः।
विगतकर्मजिन परिपूजये, सुखकरं त्वहमिंद्र गतं सदा॥

ॐ ह्रीं कल्पातीत विमानस्थित जिनसमुदाय धूपं ॥ ७ ॥

फलभरैरथवाम्रकदाडिमैः, सुखदमोक्षमहाफल कारकैः।
शिवफलप्रतिगं जिनपंजे, सुखकरं त्वहमिंद्रगतं सदा॥

ॐ ह्रीं कल्पातीत विमानस्थित जिनसमुदाय फलम् ॥ ८ ॥

उदक मुख्य फलांतकजेन च, विगतमौल्यपदेनमहानघं।
गतसुमौल्यपदस्थ जिनंयजे, सुखकरं त्वहमिंद्रगतसदा॥

ॐ ह्रीं कल्पातीत विमानस्थित जिनसमुदाय अर्घम् ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येकार्घ।

चाल पंचमेरु पूजाकी।

भजो भविसार कल्पातीत विमान जिनार॥
प्रथम ग्रिवेयकमैं जिनगेह इकसोग्यारह गनिकरि लेह।
भजो भविसार कल्पातीत विमान जिनार॥
नव ग्रिवेयक अनुदिसराय पंच पंचोत्तरमैं जिनदेव।
भजो भविसार कल्पातीत विमान जिनार॥

ॐ ह्रीं प्रथम ग्रैवेयकत्रिकमैं एकसौ ग्यारह जिनमंदिरेभ्यो अर्घम्॥ १॥

इंद्रक तीन यहां तिनि होय, तिनमैं जिनगृह तिनही जोय।
भजो भवि सार, कल्पातीत विमान जिनार॥
नवग्रीवेयक अनुदिश एव, पंच पंचोत्तरमैं जिनदेव॥
भजो भविसार कल्पातीत विमान जिनार॥

ॐ ह्रीं प्रथम ग्रैवेयकत्रिकमैं तीन इन्द्रकसम्बन्धि तीन जिनगृहेभ्यो अर्घम्॥ २॥

श्रेणिबद्ध प्रकीर्णक सार, इकसो आठ लसैं सुखकार॥
भजो भविसार कल्पातीत विमान जिनार॥

ॐ ह्रीं प्रथमग्रैवेयकत्रिकमैं एकसो आठ श्रेणीबद्ध वा प्रकीर्णकस्थ जिनगृहेभ्यो अर्घम्॥ ३॥

प्रतिमा सबते ग्यार हजार, नवहिमनक अठरासी धार।
भजो भविसार कल्पातीत विमान जिनार॥

ॐ ह्रीं प्रथम ग्रैवेयक त्रिकमैं ग्यारह हजार नवसै अठासी सर्व जिनबिंबेभ्यो पूर्णार्घं ॥ ४ ॥

मद्धीनमतो नग्रीवके माहि, जिनगृह इकसोसात रहाही।
भजो भविसार कल्पातीत विमान जिनार ॥

ॐ ह्रीं मध्य मग्रैवेयकत्रिकमैं एकसो सात सर्व जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ ५ ॥

इंद्रकतीन इहालखो जोय, तिनमैं गेह तीन भजो सोय।
भजो भविसार कल्पातीत विमान जिनार ॥

ॐ ह्रीं मध्यम ग्रैवेयकत्रिकमैं तीन इन्द्रकन सम्बन्धी तीन जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ ६ ॥

श्रेणीबद्ध प्रकीर्ण विमान, इकसोच्यारि सद्मा थिर जानि।
भजो भविसार कल्पातीत विमान जिनार ॥

ॐ ह्रीं मध्यमग्रैवेयकत्रिकमैं एकसोच्यारि श्रेणिबद्धप्रकीर्णक सम्बन्धी जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ ७ ॥

सब प्रतिमा है ग्यार हजार, पंचशतक छप्पन निरधार।
भजो भविसार कल्पातीत विमान जिनार ॥

ॐ ह्रीं मध्यम ग्रैवेयकत्रिकमैं ग्यारा हजार पांचसै छप्पन सर्व जिन बिंबेभ्यो पूर्णार्घं ॥ ८ ॥

अंतिम ग्रैवेयक त्रिक गेह, इकाणवे गणिए धरि नेह।
भजो भविसार कल्पातीत विमान जिनार ॥

ॐ ह्रीं अंतिम ग्रैवेयकत्रिकमैं इकाणवै सर्व जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ ९ ॥

इन्द्रक तीन यहां लख लेय, तिनमैं तीनि जिनगृह ध्येय।
भजो भविसार कल्पातीत विमान जिनार॥

ॐ ह्रीं अंतिम ग्रैवेयकत्रिकमैं तीन इंद्रकके तीन जिनगृहेभ्यो अर्घं॥ १०॥

श्रेणीबद्ध प्रकीर्ण विमान, जिनगृह अठरासी लखो मानी।
भजो भविसार कल्पातीत विमान जिनार॥

ॐ ह्रीं अठासी श्रेणीबद्ध प्रकीर्णक जिनगृहेभ्यो अर्घं॥११॥

प्रतिमा इनमैं नवही हजार, आठसतक अठाईस निहार।
भजो भविसार कल्पातीत विमान जिनार॥

ॐ ह्रीं अन्तिम ग्रैवेयकमैं नव हजार आठसै अठाईस सर्व जिनबिंबेभ्यः पूर्णार्घं॥ १२॥

नवअनुदिशि विमान धरि नेह,
इनमैं जिनगृह नव गनि लेह।
भजो भविसार कल्पातीत विमान जिनार॥
नवग्रीवेयक अनुदिश एव, पंचपञ्चोत्तरमैं जिनदेव भजो०

ॐ ह्रीं कल्पातीत नव अनुदिश विमाननविषैं नव जिनगृहेभ्यो अर्घं॥ १३॥

इंद्रक एक यहां तिनि होय, तामैं जिनगृह एकहि जोय।
भजो भविसार कल्पातीत०। नवग्रीवक० पञ्चपञ्चो०॥

ॐ ह्रीं अनुदिस विमाननमैं एक इन्द्रक सम्बन्धी एक जिनगृहाय अर्घं॥ १४॥

च्यारि दिशामधि च्यारि विमान, तिनमैं च्यारि जिनालय मानि । भजो भवि० ॥ नवग्रीवक० पञ्चपञ्चो० ॥

ॐ ह्रीं नव अनुदिश विमाननमैं च्यारि दिशामैं च्यारि विमाननमैं च्यार जिनगृहेभ्यो अर्घ ॥ १५ ॥

विदिशामैं विमान चउ होय, च्यारि जिनालय पूजुं सोय । भजो भविसार कल्पातीत० ॥ नवग्रीवक० पञ्चपञ्चो० ॥

ॐ ह्रीं नव अनुदिश विमाननमैं च्यारि विदिशानिमैं च्यारि विमान तिन सम्बन्धी च्यारि जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ १६ ॥

सब जिनबिंब विमानन माहि, नवसै बहत्तरि नित्य रहाहि । भजो भविसार कल्पातीत० । नवग्रीवक० पंचपञ्चो० ॥

ॐ ह्रीं नव अनुदिश विमाननमैं सर्व प्रतिमा नवसै बहत्तरि हैं तेभ्यो अर्घं ॥ १७ ॥

पंचोत्तरमैं पंच विमान, तिनमैं पंच जिनालय जानि । भजो भविसार कल्पातीत० । नवग्रीवक० पंचपंचो० ॥

ॐ ह्रीं पंच अनुत्तर विमाननमैं पंच जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥१८॥

इन्द्रक एक यहां लखि लेय, तामैं एक जिनालय सेय । भजो भविसार कल्पातीत० । नवग्रीवक० पंचपंचो० ॥

ॐ ह्रीं पंच अनुत्तर विमाननमैं सर्वार्थसिद्धि नाम एक इन्द्रक तासम्बन्धी एक जिनगृहाय अर्घं ॥ १९ ॥

श्रेणीबद्ध विमान जु च्यारि, जिनमंदिर तिनमैं चउसार । भजो भविसार कल्पातीत० । नवग्रीवक० पंचपंचो० ॥

ॐ ह्रीं पंच अनुत्तरनमैं विजय वैजयन्त जयन्त अपराजित नाम च्यारि श्रेणीबद्धनमैं च्यारि जिनगृहेभ्यो अर्घं ॥ २० ॥

सब जिन प्रतिमा लखि इन माहि, पंच सतक चालीस अधिकाहि। भजो भवि०॥ नवग्रीवेय० पञ्चपञ्चो०॥

ॐ ह्रीं पञ्चअनुत्तरविमाननमैं पांचसै चालीस जिनबिम्बेभ्यो अर्घम् ॥ २१ ॥

सब जिनमन्दिर कल्पातीत, तीन सतक तेवीस प्रतीत।
भजो भविसार कल्पातीत०। नवग्रीवक० पञ्चपञ्चो० ॥

ॐ ह्रीं कल्पातीत विमानसम्बन्धी तीनसै तेवीस सर्व-जिनमन्दिरेभ्यो पूर्णार्घम् ॥ २२ ॥

जिन प्रतिमा चौतीस हजार, आठसतक चोरासी धार।
भजो भविसार कल्पातीत० नवग्रीवक० पञ्चपञ्चो०॥

ॐ ह्रीं कल्पातीत विमाननमैं सर्व जिन प्रतिमा चौतीस हजार आठसै चोरासी संख्याहैं तेभ्यो सर्व जिनबिम्बेभ्यः पूर्णार्घं ॥ २३ ॥

अथ जयमाला।

दोहा।

कल्पातीत विमान मधि, जिनमन्दिर हैं सार।
एक माही सत आठ जिन, तिनकी यह जयमाल ॥१॥

कामिनि मोहन छन्द।

जयति जय जयति जय जयति जिनदेव हो।
कल्प ऊपरी परम पद पद्म सेव हो ॥

इन्द्र अहमिंद्र अहमिंद्र करि पूज्य हो।
सकल कल कल करन कान सुख दूजि हो॥ २॥
नमत तन मन बचन मोद धरि भावनैं।
रटन जय जयति जय जारी कर चावनै॥
कहत कुरु कुरु सकुरु भव समुद्र पार हो।
हरन हर हरन हर रागमद जाल हो॥ ३॥
हम ही नर जन्म करि चरण अनुचर तुमैं।
ओर पद पावनेंमैं नमन हैं हमैं॥
सुनहु सरण गनन पाल विनती हमैं।
करहु किरपा परम सुख भज ही जगतमैं॥ ४॥
तुम ही ग्रहि एक फुनि दोय परि हरकीये।
तीन रतु ही परम धारि धनि धनि भये॥
तजीये चऊ चोकडा पच व्रत धारिये।
हरिय दुखदाय षट्नाय तन टारिये॥ ५॥
धरिय फुनि सप्त तत्वन सु निर्णय लगे।
टारि मद आठ नव पद सु निश्चय मगे॥
धरिय दश धर्म मन वचन तन निर्मले।
टारि एकादशम थान ऊपरि चले॥ ६॥
तप सु द्वादस विविध धारि कर्मन लरे।
लहिय चारित्र तेरह सु विधि भव तरे॥
तुम ही जिन भव तरे सो हम ही दीजिये।
हम ही तुम चरण किंकर सुकर लीजिये॥ ७॥

नहिय हम हरिहरि सु प्रति हरिय चाहि है।
तुम चरण सेव बिन सब ही दुखदाय है॥
करहु जदि सेव फल तो हम हा दीजिये।
करत हम वीनती ताहो सुनि लीजिये॥ ८॥
चल हि अहमिंद्र तजी तब मनुज कीजिये।
करि मनुज जन्म श्रावक सुफल कीजिये॥
करिय श्रावक सुफल फेरी सुधि लीजिये।
प्रथम रत्नत्रय भरसम बर दीजिये॥ ९॥
देय सम्यक्त फुनि ज्ञान घट कीजिये।
करिय शुभ ज्ञान फुनि चरण चर दीजिये॥
करहु हम नाथ गहो हाथ हम हानको।
दीनके नाथ तुम दान हम दीनको॥ १०॥
करत अहमिंद्र हम तबत जिन भामको।
ग्रीव नव नव सु अनुदिश विमानानको॥
पंचपंचोत्तरन मांहि सब देव हैं।
ते सकल कहत अहमिंद्र जिनदेव हैं॥११॥
नहिय तहां राव अर रंक कोइ दीसिये।
सब ही निज निज तन सु इन्द्र करि रीझिये॥
कल्पवत इन्द्र प्रति इन्द्र तहां नाही हैं।
लोकपाल तथा सुर सु नही पाय हैं॥१२॥
त्रायत्रिंसा सु सामान्य तनु रक्षका।
पारिषद जाति फुनि देव नही कक्षका॥

नहिय परिकिर्णका नहिय अभियोग्यका।
नहिय किल्विष सुरा हो न तहां जोग्यका ॥१३॥
नहिय गमनागमन तिन ही कहिं होत हैं।
निज ही निज निज विमानन मारणोंन हैं॥
करत नित्य द्रव्य चरचा चलत नाहि है चित्त।
नित्य जिनभक्ति भरभार करि तृप्त चित्त ॥१४॥
नहिय तहां काम सेवन सु सेवा करन
नितिप्रति जिनचरण चरचि करि सुख भरन॥
नहिय तहां बालपन नहिय वृद्धापनौं।
नहिय कुछ रोग शोकादि तहां थापनौं ॥१५॥
इन हि आदिक सु गुण गणन संजुक्त हैं।
और सब गुण कथन करण कौन सक्त हैं॥
इन हि अहमिंद्र करि पूज्य परमेस हो।
सुनहु हम विनती करहु सुख ईस हो ॥१६॥
हरहु घनवेलि संसार सन्तति तनी।
करहु सुखसार शिवसार सम्पत्ति घनी॥
और दुःख नाहि हम एक दुःख सास्वतो।
जन्मफिरि मरणफिरि जन्मकरि आपतो ॥१७॥
एक शुभ स्वासमैं अष्ट दश वारकै।
मुहूर्त अन्तर माही बहुत मरणार है॥
सहस छयासठि सुतन तीन छतीस हैं।
क्षुद्रभव आदि मिलि होत सब दीस हैं॥१८॥

भूमि जल अगनी तह पवन चउ भेद हैं।
सूक्ष्म बादरन करि आठ कह देत हैं।
वनस्पति होत साधरण प्रत्येक है।
एक अपर्याप्तिमें करि भेद ग्यारह यहै।।१९।।
एक इक भेदमें सहसट बार हैं।
जोरिये सबहित तब सहस छयासठि कहै।
एकशत और बत्तीस ऊपरि गहै।
थावर समरण अन्तमुहूर्त मध है।।२०।।
क्षुद्र भेद होत ये इन्द्रीके है असी।
होत ते इन्द्री स्ठि चाल चोइन्द्रीसी।
तहय पचेंद्री चौबीस वर मरण हैं।
क्षुद्र भव दोय शत च्यारि दुखकरण हैं।।२१।।
सब हो थावर सबहि जोरिये तब भये।
सहस छयसटि सुमन तीन छतीस ये।।
सब ही यह मरण अन्तर्मुहूर्त ही कहै।
ए महादुःख मम होत किम दहु कहै।।२२।।
मेटि दुख करहु सुख हरहु अघराशि जु।
नाथ मुझि राखो निज चरण जुग पासि जु।।
हमहु तुम चरण जुग पद्मके दास हैं।
दास निज जानि पूरो सबहि आस है।।२३।।
तुमहि सेवन करत उच्च पद पाय हैं।
तुमही परताप सब सुख समुदगाहि हैं।।

तुम जपत होत मृग ईस मृग सारिसो।
तुम जपत होत अहि नाथ फूलमालसो ॥२४॥
तुम रटत होत रत्नाधिप पुष्करसमो।
तुम जपत अग्नि जल होत सब सुखदमो ॥
तुमहि रटतैं अरा मित्र निति बनि रहत।
तुम सु स्मरण है सु जप विनाश्रम लहत ॥२५॥
कर्म कांतार पर जार तुम अग्नि सम।
दुष्ट दुखदार सुख सार भवपार तुम ॥
परम सुख स्वहत दान महत मद टार हो।
सकल सु स्मरण सुख भरण भरतार हो ॥२६॥
अमल चल अचल मल दमन मन मोद हो।
अखिल तुम अटल तुम परम परमोद हो ॥
अनघ तुम अघ हनन पाप मल दूरि हो।
तुम ही विभु तुम ही प्रभु सकल सुख पूर हो॥२७॥
तुम ही सब आदि तुम संख्य करि रहत हो।
तुम हि ईश्वर तुम ही विष्णु बुध व्रत हो ॥
परम तुम सरम स्वरवर सुख सु मग्न हो।
तुम ही संसार संकलि करत भग्न हो ॥२८॥

स्रग्विणी छन्द।

नाथ ते सर्वको पार पावै नरो, इंद्र नागेन्द्र चक्री सबै थाकिरो। च्यारि ग्यानी गणी गारयो सर्व मैं, पार तेरो नही पावते अब मैं ॥ २९ ॥ तो हमें मन्द

बुद्धि किमैं पार हैं, वासना आद्रिके शीशकों त्यार हैं। नाथ देवाधिदेवा हमैं ध्यान हैं, भक्तिनैं नाथ तेरे गुण गान हैं ॥ ३० ॥ दीनबन्धु दयाधार मो दीनपैं, कीजिये देव दृष्टी सदा हीनपैं। देखिये नाही मेरी करी नाथजी, आप हो नाथ तातैं गही हाथजी ॥३१॥ हीन मैं कर्मतैं दुःख पाये घने, देव तेरे कहे धर्म जानें तिनैं। ते सबैं दुःख तेरे अबै ज्ञानमैं, देखि मोकौं दुःखी लेहुते थानमैं ॥ ३२ ॥ दुष्ट कर्मारिकौं खण्ड खण्डा करो, सुष्ट धर्मिनको मंझ मझी धरो। दे महा चन्द्रकौं मोक्ष थानं अबैं, बीनती नाथ मेरी सुनौं या सबैं ॥ ३३ ॥

घत्ता छन्द।

जै जै जिनचन्दा थिन अहमिंदा, ग्रीव अनुदिश अनुत्तरमैं। नव नव पणमाही रहत सदा ही, यह लखी पूजौं सूतरमैं ॥ ३४ ॥

ॐ ह्रीं कल्पातीत अहमिंद्र नवग्रीवेयक नव अनुदिश पंच-अनुत्तर विमान स्थित जिनसमुदाय महार्घं ॥

रथोद्धता छन्द।

जे जजैं सकल कल्पतीतका, जैन बिंब बहु दुःख तीतका। ते लहैं सकल सौख्य सम्पदा, पुत्र पौत्र फुनि मोक्ष तो सदा ॥ १ ॥

इतिश्री कल्पातीत विमाननकी जिनगृह पूजा समाप्त।

मध्यलोकके जिनगृहनकी पूजा।

४५८ समस्त चैत्यालयनकी समुच्चय पूजा।

॥ स्थापना संस्कृतं ॥

शार्दूल विक्रिडत छन्द।

लोकेस्मिन् शुभ मध्यके जिन विभो, शश्वानि-र्मानित्यच। अष्टपञ्चाशत चतुःशत मितानानि प्रशस्तानि च॥ तेषु प्रोद्भूत केषु मध्य सु जिनाः सन्ति प्रभावाधिका। स्तेषांमादत यज्ञाय भक्ति वशात् तिष्ठं स्वहं सं यजे॥

ॐ ह्रीं श्री परमब्रह्म मध्यलोक स्थित चतुःशताष्टपंचाशत्प्रमित जिनगृह स्थित जिनसमूह अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननं। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्रमम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधापनं।

अथाष्टकं-संस्कृतम्।

राग-विदेशी ठुमरा।

जिनवरगणकं यज जीव सदा भव्य जग ह्त्त मनघ भव्य जिनवर॥ भृङ्गारं हैमंके भृत्वा। जिनपदाब्जयोर्देहि सदा भव्य जगद्धृत मनघ भव्य। जिनवर गणकं यज जीव सदा भव्य०॥

ॐ ह्रीं मध्यलोक स्थिताकृत्रिम जिनगृहस्थित जिनसमूहाय जलं॥ १॥

काश्मीरंस चन्दनं कृत्वा पूजन जिन चरण च सदा। मध्य जगद्गुन मनघ भव्य। जिनवरगणकूं यज जीव सदा। मध्य० ॥

ॐ ह्रीं मध्यलोकस्थाताकृत्रिम चैत्यालयस्थ जिनसमूहाय चन्दनम् ॥ २ ॥

शालि समूहमखण्डितममाद यज जिनदेव विभुच मुदा। मध्य जगद्गुन मनघ भव्य। जिनवरगणकूं यज जीव सदा। मध्य जग० ॥

ॐ ह्रीं मध्यलोकस्थ अकृत्रिम चैत्यालयस्थ जिनसमूहाय अक्षत ३ ॥

पद्मं जातो पुष्पं समूहं ग्राह्य जिनं यज जीव सदा। मध्य जगद्गुन मनघ भव्य। जिनवरगणकू यज जीव सदा। मध्य० ॥

ॐ ह्रीं मध्यलोकस्थ अकृत्रिम चैत्यालयस्थ जिनसमूहाय पुष्पं ॥ ४ ॥

घृत वरमा मोदिन मवादा च जिनवर देवं यज प्रमुदा। मध्य जगद्गुन मनघ भव्य। जिनवरगणकू यज जीव सदा। मध्य० ॥

ॐ ह्रीं मध्यलोकस्थ अकृत्रिम चैत्यालयस्थ जिनसमूहाय नैवेद्यं ॥ ५ ॥

घृतमय दीपवर्तिकां ग्राह्य योनय जिन क्रम कुम सदा मध्य जगद्गुन मनघ भव्य। जिनवरगणकूं यज जीव सदा। मध्य० ॥

ॐ ह्रीं मध्यलोकस्थित जिनसमुदाय दीपं ॥ ६ ॥

श्रीखण्डादि द्रव्यममंदं धूपय जिनपदाग्रे वेदः मध्य जगद्गत मनघ भवन । जिनचरणकं यज जीव० ॥

ॐ ह्रीं मध्यलोकस्थित जिनसमूहाय धूपं ॥ ७ ॥

आम्र पूग मुख फल मानिय यज जिनप नित्यं प्रमुदा मध्य जगद्गत० ॥

ॐ ह्रीं मध्यलोक स्थित जिनसमूहाय फलम् ॥ ८ ॥

तोय जलादि फलान्तं द्रव्यं पूजय जिन पदमादि मुदा । मध्य जगद्गत० ॥

ॐ ह्रीं मध्यलोकस्थित जिनसमूहाय अर्घम् ॥ ९ ॥

अथ जयमाला ।

दोहा ।

च्यारिशतक अट्ठावना, जिनगृह संख्या जानि ।
मध्यलोक मांहि लसैं, वंदत हौं सुख खानि ॥ १ ॥

कामिनि मोहन छन्द ।

पंचमेरुन तनैं अस्सिय जिन मन्दिरं, रूप्य गिरि एक सत और सत्तरी घरं । बीस गज दन्त परि बीस जिनगृह लसं, तीस कुल पर्वतन परि सु तीसहि वसैं ॥ २ ॥ असीय वक्षार गिरि असीय जिन सद्म हैं, पंच तरु जम्बू परि पंच गृह पद्म हैं । शालमलि पच महि गेह जिन पंच हैं, च्यारिइसु कारी परि च्यारि गृह संच है ॥ ३ ॥ मानुषोत्तर दिशा च्यारि महि जानिये, च्यारि जिन मन्दिरं तिन ही निति मानिये ।

अष्टमो द्वीप नन्दीश्वर हो सार है, च्यारि दिशमैं सु बावन गृह धार हैं ॥ ४ ॥ होत एकादशम द्वीप कुण्डल वरो, मांच कुण्डलगिरि सु च्यारि जिनगृह धरो। तेरमुं द्वीप हैं रुचिकवर नाम जू, मांचि है रुचिक गिरि च्यारि जिन धाम जु ॥ ५ ॥

सबहि मिलि करि भये च्यारि शत ठावना, वन्दिये सब ही गृह परम सुख पावना। एक गृह माहि जिनबिंब शत आठ हैं, पत्रैं धनुष जिनबिंब उचार हैं ॥ ६ ॥ जहां जिनगृह कह्यो तहां सब यो हि है, नित्य प्रति मन वचन काय करि पूजि हैं। जगतपति नाथ यह अरज उर धारि हैं, दुःख परिपूर्ण भव हमैं तारियै ॥ ७ ॥ देहि तुम चरणकी भक्ति भवनैं भव विषैं, बुध महाचन्द्रकी अरज इतनी अबै। याही मुक्ति हाथ करि साथ तुम चरणकी, बार बार मोहो सुनि बीनती तरणकी ॥ ८ ॥

घत्ता छन्द।

जै जै जिन स्वामि मध्य जगामि, तीन लोकपति तुमैं सबैं। मन वांछित कारक भवदधि तारक भव्य जीव तुम गुन चैवैं।

ॐ ह्रीं मध्य लोकस्थिता कृत्रिम चैत्यालयेभ्यो महार्घं।

सोरठा।

मध्य लोक जिनगेह, जो नर पूजैं भावतैं।
भव दधि पानी देह सुख संपति पावै घनो ॥ १ ॥

इति श्री मध्यलोकके चैत्यालयनकी समुच्चय पूजा समाप्त।

जंबूद्वीपमैं सुदर्शन मेरु ताको प्रथम भद्रशाल वन ताकी च्यारि दिशामैं च्यारि चैत्यालय तथा नंदनवन सोमनस वन तथा पांडुक वनमैं च्यारौं वननमैं साला चैत्यालयनकी पूजा।

स्थापना।

अडिल्ल छन्द।

जंबूद्वीप सुदर्शन मेरु विराजई, ताके चउ वनमैं जिन गेह समाजहीं। सोलह च्यारौं वनके विंब जु सहैं, तहैं ले जिन आवो तिष्ठ पूजके हेत हैं॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शन मेरु सम्बन्धी च्यारि वन भद्रशाल नंदन सोमनस पांडुक तिन एक एक वनकी च्यारि दिशामैं च्यारि चैत्यालय सर्व सोलह चैत्यालयस्थ जिनसमूह अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननं। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधापनं।

अथाष्टकम्।

करुणा ल्यको चालमैं।

हमरी करुणा ल्यो जिनराज। षोडश गृहके जिनन्द हमारी क०। कंचन झारी जलभरी धारी तुम

पद्माद्री जन्म जरा। मृतनाशनैं जिहे त्रिभुवनके राय हमारी क०॥ षोडशगृह०॥ जम्बूद्वीप विषै लसैं, मेरु सुदर्शन नाम। ताके चउ वन च्यारि दिशा, षोडश है जिनधाम॥ हमारी करुणाल्यो०॥ षोडश गृ०॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शन मेरोश्चतुर्वनानां षोडश जिनगृह जिनसमुदाय जलं॥ १॥

अगर तगर कर्पूर लिये, कुंकुम चन्दन लाय। भव आताप निवारणौं, पूजौं तुम प्रभु पाय॥ हमारी० ॥ षोडश गृह०॥ जम्बूद्वीप विष लसैं, मेरु सुदर्शन नाम। ताके चउ वन च्यारि दिशा, षोडश है जिनधाम॥ हमारी षोडश०॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शन मेरोश्चतुर्वनानां षोडश जिनगृह जिन समुदाय चन्दनं॥ २॥

शालि अखण्डित ले आयो, इन्दु कुन्द द्युति धार। पुंज धरौं तुम चरणपैं, अक्षय पद दातार॥ हमारी करुणा०॥ षोडश गृह०॥ जम्बूद्वीप विषैं लस मेरु सुदर्शन नाम, ताके चउ वन च्यारि दिशा षोडश है जिन धाम। हमारी करुणा०॥ षोडश०॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शन मेरोश्चतुर्वनानां षोडश जिनगृह जिनसमुदाय अक्षतं॥ ३॥

कमल केतकी जाति लई ले गुलाबके फूल, तुम पद पूजौं वेगी करो काम बाण निर्मुल। हमारी०

॥ षोडश० । जम्बूद्वीप विषैं लसै, मेरु सुदर्शन नाम, ताके चउ वन च्यारि दिशा, षोडश हैं जिन धाम ॥ हमारी० ॥ षोडश० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शनमेरोश्चतुर्वनानां षोडश जिनगृह जिनसमूहाय पुष्पं ॥ ४ ॥

नव्य गव्य नैवेद्य करौं, नाना रस मिलवाय। क्षुधा वेदनि नाशनैं, पूजत हौं तुम पाय ॥ हमारी० ॥षोडश०॥ जम्बूद्वीप विषै० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शन मेरोश्चतुर्वनानां षोडश जिनगृह जिनसमूहाय नैवेद्यं ॥ ५ ॥

घृतमय द्वीप बनायकै, करौं आरति नाथ। मोह तिमर निति छाइयो, मेटि गहो मम हाथ ॥ हमारी० ॥ षोडश० ॥ जम्बूद्वीप विषैं०

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शन मेरोश्चतुर्वनानां षोडश जिनगृह जिनसमूहाय दीपं ॥ ६ ॥

श्रीखण्डादिक लेप करैं, कृष्णागुरु कर्पूर। लेकैं खेउ चरणपैं, अष्ट कर्म निरमूर। हमारी०। षोडश० ॥ जम्बू द्वीप विषैं० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शनमेरोश्चतुर्वनानां जिनगृह जिनसमूहाय धूपं ॥ ७ ॥

दाडिम आम मगायकैं, पूंग आदि फल सार।

तुम पद पूंजौं भावतैं, ते शिवफल दातार। हमारो०॥
षोडश०॥ जम्बू द्वीप विषैं०॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपसुदर्शनमेरोश्चतुर्वनानां षोडशजिनगृह-
जिनसमुदाय फलम्॥ ८॥

जल फल आठों द्रव्य ले, अर्घ करौं सुखदाय।
नाचौं गावौं साथके, हे जिन तुमके पाय। हमारो०॥
षोडश०॥ जम्बू द्वीप विषैं०॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपैसुदर्श मेरोश्चतुर्वनानां षोडशजिनगृह
नसमुदाय अर्घं। ९॥

अथ प्रत्येकार्घं।

दोहा।

भद्रशाल वनकी दिशा, पूर्व निशा जिन धाम।
तामैं प्रतिमा आठ सत, नमौं जोरि कर नाम॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपैसुदर्शनमेरोभद्रशाल वनकी पूर्वदिशा-
स्थित जिनधाम जिनसमुदायार्घं॥ १॥

ताकी दक्षिण दिशा लसैं, एक महा जिन धाम।
उच्च पचेत्तरि योजना, पूजौं अर्घ ललाम॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपैसुदर्शनमेरोर्भद्रशाल वनस्य दक्षिणदिशा-
स्थित जिनगृह जिनसमुदाय अर्घम्॥ २॥

भद्रशाल वनकी दिशा, पश्चिममैं जिन गेह।
रत्नमई प्रतिमा सहत, वन्दूं मन धरि नेह॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शनमेरोभद्रशाल वन पश्चिमदिशि जिनगृहे जिनसमूहाय अर्घम् ॥ ३ ॥

मेरु सुदर्शन प्रथम वन, ताको उत्तर ओर।
जिन गृह सुन्दर अति लसैं, वन्दौं द्वै कर जोरि॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शनमेरोर्भद्रशाल वनस्य उत्तरदिशि जिनगृह जिनसमूहाय अर्घं ॥ ४ ॥

मेरु तनौं दूजो लसैं, नन्दन वन अभिराम।
ताको पूरव दिशि मध्य, जिनगृह पूजौं नाम॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शनमेरो द्वितीय नन्दनवनस्य पूर्वदिशिस्थित जिनगृह जिनसमूहाय अर्घं ॥ ५ ॥

नन्दन वन नन्दन जगत, ताकी दक्षिण ओर।
जिनगृह पूजौं भावतैं, अर्घ लेय कर जोर॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शनमेरोर्द्वितीय नन्दनवनस्य दक्षिणदिशिस्थित जिनगृह जिनसमूहाय अर्घम् ॥ ६ ॥

नन्दन वन पश्चिम दिशा, जिनवर गेह अनूप।
जो जन तुंग पचेत्तरे, पूजुं त्रिभुवन भूप॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शनमेरो द्वितीय नन्दनवनस्य पश्चिमदिशिस्थित जिनगृह जिनसमूहाय अर्घं ॥ ७ ॥

प्रथम मेरुको द्वितीय वन, नन्दन नाम विशाल।
ताको उत्तर दिशि विखैं, जिनगृह नमौं त्रिकाल॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपेसुदर्शनमेरो द्वितीयनन्दनवनस्य उत्तरदिशिस्थित जिनगृह जिनसमूहाय अर्घम् ॥ ८ ॥

सोरठा।

मेरु सुदर्शन नाम ताको, वन तीजो लसै।
नाम सोमनस सु धाम, जिनको पूर्व सु दिश जजौं॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपेसुदर्शनमेरोस्तृतीय सोमनसवनस्य पूर्व-दिशिस्थित जिनगृह जिनसमूहाय अर्घम् ॥ ९॥

मेरु सुदर्शन नाम, तीजो वन ताको तहां।
दक्षिण दिशा प्रणाम, जिनगृहकौं निति प्रति करौं॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपेसुदर्शनमेरोस्तृतीय सोमनसवनस्य दक्षिण-दिशिस्थित जिनगृह जिनसमूहायार्घम् ॥ १०॥

वन सोमनस महान, ताकी पश्चिम दिशा विखैं।
जिनगृह सुन्दर जान, पूजौं अर्घ बनायकै॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपेसुदर्शनमेरोस्तृतीय सोमनसवनस्य पश्चिम-दिशिस्थित जिनगृह जिनसमुदायार्घम् ॥ ११॥

जम्बूद्वीप मंझारि, मेरु प्रथम वन तासरो।
ताको उत्तर सार, जिनगृह पूजौं भावतैं॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपेसुदर्शनमेरोस्तृतीय सोमनसवनस्य उत्तर-दिशिस्थित जिनगृह जिनसमूहाय अर्घं ॥ १२॥

त्रोटकछन्द।

चतुथो वन पांडुक नाम कहै, दिशी पूर्वमहि जिन धाम रहै। जज हौं निति अर्घ बनाय यहैं, मम वांछित काज सरो यहैं॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपेसुदर्शनमेरो चतुर्थ पांडुकवनस्य पूर्व-दिशस्थित जिनगृह जिनसमुदाय अघ्र ॥ १३ ॥

दिशि दक्षिणमैं जिन धाम लसैं, वन पांडुकमैं मन मोद बसैं। तिसमैं प्रतिमा सत आठ अखैं, तिनकौं निति पूजौं अर्घ लखैं ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपेसुदर्शनमेरोश्चतुर्थ पांडुकवनस्य दक्षिण-दिशिस्थित जिनगृह जिनसमुदायार्घं ॥ १४ ॥

प्रथमे सुर पर्वत देखि तहां, चउथो वन पांडुक नाम कहा। जिन धाम तहां दिशि पश्चिममैं, निति पूजत हौं करि अर्घ अबैं ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीप सुदर्शनमेरोश्चतुर्थवन पांडुकस्य पश्चिम-दिशि स्थित जिनगृह जिन समुदायार्घं ॥ १५ ॥

पुन होत सु उत्तर भाग विषैं, जिन गेह मनोहर नित्य अषै। तह उन्नत जोजन पौंण गनी, तिसमैं जिन बिंब जजौं सुगुणी ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शनमेरोश्चतुर्थपांडुक वनस्य उत्तर दिशि स्थित जिनगृह जिनसमुदाय पूर्ण । ।

दोहा ।

मेरु सुदर्शन च्यारि वन, तीनकी चउ दिशि माहि ।
षोडश जिन गृह जानिकैं, पूजौं मन हरषाहि ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शन मेरोश्चतुर्वनानां षोडश जिनगृह जिनसमुदाय पूर्णार्घम् ॥ १७ ॥

जयमाला।

सोरठा।

जम्बूद्वीप मझारी मेरु सुदर्शन नाम है।
ताके चउ वन माहिं षोडश जिनगृह जिननमौं ॥१॥

चौपाई।

प्रथम सुभद्रशाल वनजानौं, दो नन्दनवन मन मानौं। तीजो वन सोमनस बखानौं, चोथो पांडुकवन सुख खानौं ॥ १ ॥ यह च्यारोंवन हैं जु अनादि, कर्ता नाही कोय गनि शादि। इक वनमैं च्यारौं दिश मांहै, जिन मन्दिर चउ सब मन मोहे ॥ २ ॥ सो जोजन जिन गृह लम्बे हैं, भद्रशाल वनके मझबे हैं। नन्दन सोमन समहि विराजैं, उन्नत इनमैं मध्यम राजैं ॥३॥ पांडुक वनमैं जिनगृह ऊँचे, जोजन पौंणी गुणिसठि सूचे। जिनमन्दिर आयाम बखानौं, भद्रशाल सो जोजन जानौं ॥ ४ ॥ व्याम अर्ध आयामग कहिये, ऐसैं सब मन्दिर लखि लहिये। च्यारचौं वनको च्यार दिशा हैं, सोलह जिन मन्दिर विलसाहैं ॥ ५ ॥

इक इक जिन मन्दिरके मांही, प्रतिमा इकसौ आठ बनाई। धनुष पंचसैं उन्नत जानौं, रत्नमई लखि सब दुख हानौं ॥ ६ ॥ ऐसी शोभातैं निति सोहै,

मेरु तने जिन मन्दिर होहिं। तिन मन्दिरमांहि जिन देवा, राजत है दुःख दूरि अछेवा ॥७॥ सुरनर किन्नर निति प्रति जावैं, पूजि जिनेश्वर पाप नसावैं। जय जय जय जय शब्द उचारैं, नन्द नन्द नन्द हि सुख-कारैं। ८॥ जय वर्द्धस्व जिनेश्वर देवा, भव भवमांही करैं तुम सेवा। चारण ऋद्धिधारी रिषि आवैं, वन्दत जिनवरको गुन गावैं ॥ ९ ॥

पद्धडी-छन्द।

निति नाचत सुर सुर करत तारत,
ननननन नननन तान धार।
झननननन नूपर झनझनाट,
कट कट कट अटपट होन नाट। १०॥

झट झट झट झट झट कट कटन,
थेई थेई थेई थेई धुनि मुख रटन्त।
केई नाचत गावत तान लाय,
केइ जय जय जय धुनि करत धाय ॥ ११॥

इत्यादि अतुल महीमाल सन्त,
गिरि मेरु तनैं वन चउ वसन्त।
षोडश जिनमन्दिरके सु देव,
मम अरज सुनौं मन लाय एव। १२॥

भव भव तुम पद सेवा मिलाय,
यह जाचत हौं निति मोहि थाय।
संसार समुद्र दुख मेटि मेटि,
बुध महाचन्द्र तुम भेटि भेटि ॥१३॥

घत्ता छन्द।

इह जिन जयमाला परम रसाला, षोडश जिनगृह मेरु तनैं। तिनकी लखो ध्यावो भव सुख पावो, दुःख मिटावो भव घनैं॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शनमेरो भद्रशाल नन्दन सोमनस पांडुक वन सम्बन्धी षोडश जिनगृह जिनसमुदाय महार्घं ॥१४॥

अडिल्ल छन्द।

जम्बूद्वीपमझारो सुदर्शनमेरु है, ताके चतु वनमैं जिनगृह षोडश रहैं। तिनकी यह जयमाल पढ़े जो मन धर, सो पावे भव सौख्य फेरि भवनैं तरैं॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री जम्बूद्वीपे सुदर्शनमेरो षोडश जिनगृह पूजा समाप्त:।

जम्बूद्वीपके सुदर्शनमेरु सम्बन्धी च्यार गजदन्तनि परि च्यारि जिनमन्दिरनकी पूजा।

कवित्त।

जम्बू द्वीप सुदर्शन मेरु सुताकी च्यारि कौंण बखानौं। अग्नि सु नैऋत वायु इशान जु है इनमैं गजदन्त प्रमानौं॥ तांत तिनौं परि च्यारि जिनालय बिंब अठोत्तरसो सुख खानौं। ते जिननाथ विराजहु साथ गहो मम हाथसु द्यो शिवथानौं॥ १॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शनमेरुश्चतुर्गजदन्तश्चतुर्जिनालय जिन-समूह अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननं। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

चाल—राजघाटके गमनाकी।

मिथ्या मग नहि गमना गजदंत जिनन्द पद रमना हो मिथ्यामग०। कञ्चन श्रृङ्गार कराबो तामैं शुभ रत्न जडावो हो॥ शुभ निर ताहि भरावो जिनराज चरण द्वय न्हावो हो। जन्म मरण दुख दमना गजदन्त जिनन्द पद मनोहर हो॥ मिथ्या मग० नहि गमना गजदन्त०॥ यह जम्बू द्वीप सुहावै। तामैं मेरु मन भावैं हो॥ ताकी चउकौंण ममावैं।

गजदन्त जिनालय ध्यावैं हो॥ तातैं शिवमारग गमना, गजदन्त जि० मिथ्यामग०॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपेसुदर्शनमेरोश्चतुर्गजदंतस्थित जिनसमूहाय जलं॥ १॥

मलियागुरु सुन्दर लावो, कुङ्कुम कर्पूर मिलावो हो। घसिकैं जिन चरण चढ़ावो, नरजन्म पाय ल्यो लहावो हो॥ भवताप महादुःख दमना, गजदंत जिनंद पद्रमना हो। मिथ्या मग नहि गमना, यह जम्बूद्वीप सुहावे तामैं मेरु मन भावैं हो॥ ताकी चउकौंण मनावैं। गजदंत जिनालय ध्यावै हो॥ तातैं शिवमारग गमना गजदंत जिनं०। मिथ्या मग०॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपेसुदर्शनमेरोश्चतुर्गजदंतस्थित जिनसमूहाय चन्दनम्॥ २॥

शीत शालि अखण्डित ल्यावो, शुभ जलत क्षालन भावौं हो। जिन अग्र पुंज करवावो मानौं शुभ पुञ्ज लखावो हो॥ अक्षयपद प्रति गमना। गजदंत जिनन्द पद रमना हो। मिथ्या मग०॥ यह जम्बूद्वीप०॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपेसुदर्शनमेरोश्चतुर्गजदंतस्थित जिनसमूहाय अक्षतं॥ ३॥

शुभ पुष्प सुगन्धित लावो, मालती मोगरो महकावो हो। दिश दशहि सुगन्ध करावो केवड़ो कमल

मन भावो हो ॥ कामबाण दुख दमना । गजदन्त जिनन्द० मिथ्या मग० ॥ यह जम्बूद्वीप सुहावै० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शनमेरोश्चतुर्गजदंतस्थित जिनसमुद्राय पुष्पं ॥ ४ ॥

खाजा फेनि बनवावो, नाना रस खूब मिलावो हो। ऐसो नैवेद्य सुलावो जिनचरण पूज रचावो हो ॥ क्षुधारोग दुख शमना। गजदन्त जिनन्द पद रमना हो मिथ्या मग० । यह जम्बूद्वीप सु० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपेसुदर्शनमेरोश्चतुर्गजदन्तस्थित जिनसमुद्राय नैवेद्यम् ॥ ५ ॥

घृतमय दीपक बनवावो, अथवा कर्पूर जु पावो हो। ऐसो दीपक कर लावो, जिनचरण उद्योत करावो हो ॥ तममोह अरिकों दमना । गजदन्त जिनन्द पद-रमना हो । मिथ्या मग० ॥ यह जम्बूद्वीप सुहावै० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपेसुदर्शनमेरोश्चतुर्गजदन्तस्थित जिनसमुद्राय दीपम ॥ ६ ॥

कृष्णागुरु धूप मगावो, फुनि अगर तगर मिलावो हो। जिनचरणन अग्र जलावो, शुभ गन्ध दसौंदिश छ्यावो हो॥ अरि अष्ट कर्मकों दमना। गजदन्त जिनन्द पदरमना हो । मिथ्या मग० ॥ यह जंबूद्वीप सुहावै० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपेसुदर्शनमेरोश्चतुर्गजदन्तस्थित जिनसमुद्राय धूपम ॥ ७ ॥

नारिंग आम्र सु अनारा नाना नेत्रने सुखकारा हो। ऐसे फल ल्यावो प्यारा जिनराज चरण परिवारा हो॥ मोक्ष महाफल पमना। गजदन्त० ॥मिथ्या-मग०॥ यह जम्बूद्वीप सुहावें०॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपेसुदर्शनमेरोश्चतुर्गजदन्तस्थित जिन-समुदाय फलम् ॥ ८ ॥

जल चन्दन अक्षत लावो, पुष्प सु चरु दीप मगावो हो। फुनि धूप सु फल मन भावो, यह अर्घ जिनंद पद धावो हो ॥ मोल रतन पद गमना। गजदन्त जिनन्द रमना हो। मिथ्या मगन हि गमना यह जम्बूद्वीप सुहावैं, तामैं मेरु मन भावैं हो॥ ताको चौकौण मनावैं, गजदन्ता जिनालय ध्यावैं हो। तातैं शिव मारग गमना गजदन्त० ॥ मिथ्या० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपेसुदर्शनमेरोश्चतुर्गजदन्तस्थित जिन-समुदाय अर्घं ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येकार्घं।

मोतीदाम छन्द।

सुदर्शन मेरु इसान सु कौण, तहां गजदन्त सु माल्य वहौंण। विडूर्यमयो शुभ वर्ण लसन्त, तहां जिन भौन नमो मन सन्त ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपेसुदर्शनमेरो ईशानकोण स्थित माल्यवान नाम गजदन्तस्थित जिनगृह जिनसमुदाय अर्घं ॥ १ ॥

सुमेरु सु अग्निय कौंण महन्त, तहां गजदन्त सु सोमनस सन्त। सु रूपामयान सुवर्ण दिपन्त, जिनालय माहि नमों बहु भन्त॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शनमेरो अग्नि कौण स्थित सोमनस नामगजदन्त स्थित जिनगृह जिनसमूहाय अर्घम्॥ २॥

सु नैऋत्त कौंण सुदर्शन मेरु, तहां गजदन्त विद्युत्प्रभ हेर। सु तप्त सुवर्ण समान शरीर, नमों जिनगेह तहां मन धीर॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शनमेरो नैऋत्यकौण स्थित विद्युत्प्रभ-नाम गजदन्त स्थित जिनालय जिनसमूहाय अर्घं॥ ३॥

सु वायव कौंणय माहि लसन्त, तहां गजदन्त सुवर्णतनन्त। सु गन्धय मादन नाम धरात, तहां जिन गेह जजे हुलसात॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शनमेरो वायव्य कौण स्थित गन्ध-मादन नाम गजदन्त स्थित जिनालय जिनसमूहाय अर्घम्॥४॥

जिनालय च्यारि सबैं गजदन्त, सु जम्बूयद्वीप विषैं विलसन्त। जजौं तिनकौं करि पूरण अर्घ, करो हमकौं जिन धाम अनर्घ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शन मेरोश्चतुर्गजदन्त स्थित जिनालयेभ्यो पूर्णार्घं॥ ५॥

सु विंब सबैं गजदन्त नमाहि चतुः, शत और

बत्तीस कहाही। सु पंच सतानि धनूष उतङ्ग, जजे तिनकौं मन मांहि उमंग॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शनमेरोश्चतुर्गजदन्त स्थित द्वात्रिंसै बत्तीस जिनबिम्बेभ्यो पूर्णार्घं॥ ६॥

अथ जयमाला।

दोहा।

जम्बूद्वीप विषैं लसैं, मेरु सुदर्शन नाम।
ताके चउ गजदन्तकी, जिन जयमालज धाम॥१॥

त्रोटकछन्द।

जय जम्बूद्वीप सु मध्य जिनं, गजदन्तनमाहि नमौं सु दिनं। गजदन्त कुलाचलपैं गनिये, चउसै शुभ जोजन उन्नत ये॥ २॥ गिरि मेरु समीप सु उन्नत हैं, शतपंच सु जोजन सून्नत हैं। गिरि मेरु समीप तुमैं गृह है, यह गोल सबैं गजदंत रहै॥ ३॥ जय नाथ सदा गजदंतनपैं, निति राजतु हो नहि अंतनपैं। तुम हो जगनायक नाथ हमैं, निति वन्दत हैं कर पद्म तुमैं॥ ४। गजदन्त इशानहि माल्यव हैं, अर अग्नि सु मानस नाम कहै। पुनि विद्युतप्रभ नैऋत महि है, तह गन्ध सुमादन वायव है॥ ५॥ इनके शुभ वर्ण सदा लखिये, तह होन विहूंग सुहृदय मये। तपनीय सुवर्ण समान कहे, कमन यह वर्ण सदाहि रहे॥ ६॥ इस भांति सदा गजदन्त कहे,

गजदन्त समान सुवृत्त ठये। गजदन्त समो अहो उन्नत हैं, गजदन्त यथार्थ सु नाम लहैं ॥ ७ ॥ इनपैं जिनमन्दिर च्यारि लसैं, तिनमैं शत आठ जिनेन्द्र बसैं। धनु पञ्चशतोन्नत काय लसैं, मय रत्नमई प्रतिमा विलसैं ॥ ८ ॥ जिनदेव सदा गजदन्तनके, हमरी अरजी जगसन्तनके। हम कर्मन प्रेरित नित्य नमैं, हनि कर्म अरि शिवधाम गमैं ॥ ९ ॥ तुम दीनदयाल दयानिधि हो, भवनाशन बान सबै विधि हो। हरि मोह महा रिपु सौख्य करो, महचन्द्रतनो अरजी सु धरो ॥ १० ॥

घत्ता छन्द।

इति जिनगुनमाला गजदन्ताला, च्यारि जिनन्द गृह पूजत हैं। तिनि हर्ष बढाऊं नाचौं गाऊं, मन आनंदित हूजत हौं ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शनमेरोश्चतुर्गजदन्त स्थित चतुर्जिनालय जिनसमुदाय महार्घम् ॥ ११ ॥

मालिनी छन्द।

सकल सुर सु सेव्यं हस्तिदन्तस्थितं, जे जिनवर गणकं संपूजयं तित्रि संध्यं। नर सुर सुख पावैं मोक्ष जावैं क्रमेण, इति मन निकलंकं होयके ध्याय देवं ॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री जम्बूद्वीपे गजदन्त जिनालय पूजा समाप्ता।

अथ जम्बूवृक्ष चैत्यालय पूजा।

स्थापना।

दोहा।

जम्बूवृक्ष सुहावनौं, ताको उत्तर शाख।
तहां जिनभवन सुलाल हौं, तिष्ठो सन्मुख आंख॥

ॐ ह्रीं जम्बूवृक्ष स्थित जिनालय जिनसमूह अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननं। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधापनं।

सुन्दरी छन्द तथा द्रुतविलम्बित छन्द।

विमल नीर भरौं शुभ पात्रकं, जिनपदांबुज धारद दात्रकं। तरु सु जम्बूव नाममहं लहै, जजत हौं जिन उत्तर सन्त हैं॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपेसुदर्शनमेरौ ईशान कोण जम्बूवृक्ष स्थित जिनालय जिनसमूहाय जलम्॥ १॥

अगर चन्दन मेलि घसौं सही, जिनपदांबुज पूजत हौंय ही। तरु सु जम्बूव नाममहं लहै, जजत हौं जिन-उत्तर सन्त हैं॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शनमेरौ ईशान कोण स्थित जम्बूवृक्ष स्थित जिनालय जिनसमूहाय चन्दनं॥ २॥

अमल तन्दुल उज्जल लाय हौं, जल पखालि सु पुञ्ज कराय हौं। तरु सु जम्बूव नाम०॥

ॐ ह्रीं जम्बूवृक्ष स्थित जिनसमूहाय अक्षतम्॥ ३॥

कमल केतकी पुष्प मगायकैं, भ्रमर गुञ्जन गन्ध समायकैं। तरुसु० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूवृक्ष स्थित जिनसमूहाय पुष्पम् ॥ ४ ॥

विमल मोदक मोदन लाईयो, क्षुध विनाशन चरण चढ़ाईयो। तरु सु० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूवृक्ष स्थित जिनसमूहाय नैवेद्यं ॥ ५ ॥

तिमिरनाशक दीप जगाइयो, जिन पदांबुज चोन कराइयो। तरुसु० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूवृक्ष स्थित जिनसमूहाय दीपं ॥ ६ ॥

अगर आदि सुगन्धित द्रव्य ले, जिन पदांबुज अग्र जरैं भले। तरुसु० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूवृक्षस्थित जिनसमूहाय धूपं ॥ ७ ॥

फल मनोहर आम्र सु दाडिमं, कर सु स्वाद चढ़ावतर चारिमं। तरुसु० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूवृक्ष स्थित जिनसमूहाय फलं ॥ ८ ॥

जल फलं वसुद्रव्य मनोहरं, कनक पात्र सु लेय सुखोत्करं। तरु सु जम्बूवनाम महन्त है, जजत हौं जिन उत्तर सन्त हैं ॥

ॐ ह्रीं जम्बूवृक्ष स्थित जिनसमूहाय अर्घं ॥ ९ ॥

सोरठा।

जम्बूद्वीपमझारी, जम्बूवृक्ष सुहावनौं।
तामैं जिनगृह सार, पूजौं मन वच कायतैं ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपेसुदर्शनमेरो ईशानकौंण स्थित जिनगृहाय अर्घं ॥ १ ॥

बिंब एकशत आठ, जम्बूवृक्ष विषैं लखैं।
तिनकौं बहु करि ठाठ, पूजौं मन हरषाईकैं ॥

ॐ ह्रीं जम्बूवृक्षस्थित एकसो आठ जिनबिंबेभ्यो अर्घं ।२॥

जयमाला।

दोहा।

जम्बूद्वीप विषैं लसैं, मेरु ईशान हि कौंण।
सीता पूरब भागमैं, जम्बूवृक्ष हि हौंण ॥ १ ॥

पद्धडी-छन्द।

जय जम्बूद्वीप विषैं जिनन्द, जय जम्बूवृक्ष विषैं अनन्द। जय वृक्षतनी उत्तर सु शाख, तुम राजत हो महिमा अभाख ॥ २ ॥ कुरु उत्तरमांही विराजमान, मेरुतैं कौंण इशान जान। सीताकै पूरब भाग माहि, नीलाचलतैं निकटे रहाहि ॥ ३ ॥ तहां जम्बूवृक्ष लसै विशाल शत पंच सु जोजन पीठ माल। पृथ्वीमय जम्बूवृक्ष सार, नहि होत वनस्पतिके आधार ॥ ४ ॥ जय जय जिनदेव तुमैं लसन्त, चैत्यालय उत्तर शाख सन्त। महिमा मन मोद विराजमान, भविजीवनकौं आनन्द दान ॥ ५ ॥

तुम नाथ अनाथनके दयाल, हमपै प्रसन्न होहु कृपाल। हम तुम चरणांबुज भक्ति लीन, नित्ति जाचत तुम सेवा प्रवीन ॥ ६ ॥ तुम चरण पासी सदैव राखी, हित होन जिसो उपदेश भाखि। हम जाचत हैं बुध महाचन्द्र, सो ही दीजे त्रिजगत्प्रचन्द्र ॥ ७ ॥

घत्ता छन्द।

जम्बू तरु सोहैं लख मन मोहैं,
तामैं जिन गृह एक लसैं।
नित्ति पूजूं ध्याऊँ गुणगण गाऊँ,
यह वांछा उर मांहि बसैं ॥

ॐ ह्रीं जम्बू वृक्ष स्थित जिनगृहाय महार्घं।

चौपाई।

मन वच काय हर्ष अति लाय,
मोद धारि मन होय पसाय।
पूजे जो जम्बु तरु गेह,
सो अनुक्रम शिवके सुख लेह ॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री जम्बू वृक्ष जिनगृह पूजा समाप्ता।

अथ जम्बूद्वीप मध्य शाल्मली वृक्ष जिनगृह पूजा।

अडिल्ल छन्द।

जम्बूद्वीप विशाल मेरु नैऋत्य विषैं,
सीतोदा का पश्चिम तट पासैं।
अहै वृक्ष शाल्मली नाम सहारा,
जैं सदा तापरि जिनगृह प्रतिमा आचौं अर्घ सुद्धा ॥१॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपस्थित शाल्मली वृक्षस्थित जिनगृह जिनसमूह अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननं। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

सोरठा।

निर्मल नीर अगाध, कनक सुझारीमैं भरौं।
शाल्मली जिनगृह ध्याय, पूजौं जन्म विनाशनैं ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे शाल्मली वृक्ष स्थित जिनसमुदाय जलं ॥१॥

चन्दन कुँकुम लाय, घसि करी जिनवर अर्चिये।
शाल्मली जिनगृह ध्याय, पूजौं भव तप नाशनैं ॥

ॐ ह्रीं शाल्मली वृक्ष स्थित जिनसमुदाय चन्दनम् ॥ २ ॥

तन्दुल अन्दुल आन, सोमसमं अति उज्जले।
शाल्मली जिनगृह जानि, अक्षयपदकौं पूजिये ॥

ॐ ह्रीं शाल्मली वृक्ष स्थित जिनसमुदाय अक्षतं ॥ ३ ॥

सुमन सुमन महकाय, गन्ध सुगन्धि लेयकै।

शाल्मली जिनगृह ध्याय, पूजौं मन्मथ नाशनैं ॥

ॐ ह्रीं शाल्मली वृक्ष स्थित जिनसमूहाय पुष्पं ॥ ४ ॥

नाना रस पकवान, खाजा ताजा लेयकैं।
शाल्मली जिनगृह जानि, पूजौं रोग क्षुधा हनैं ॥

ॐ ह्रीं शाल्मली वृक्ष स्थित जिनसमूहाय नैवेद्यं ॥ ५ ॥

दीपक जोति जगाय, तिमिर विनाशक लायकैं।
शाल्मली जिनगृह ध्याय, पूजौं मोह विनाशनैं ॥

ॐ ह्रीं शाल्मली वृक्ष स्थित जिनसमूहाय दीपं ॥ ६ ॥

श्रीखण्डादिक धूप, लेकै खेवो जिन चरन।
शाल्मली जिनगृह भूप, पूजौं कर्म विनाशनैं ॥

ॐ ह्रीं शाल्मली वृक्ष स्थित जिनसमूहाय धूपं ॥ ७ ॥

फल दाडिम नारंग, और मनोहर लेयकै।
शाल्मली जिनगृह रंग, पूजौं शिव फल कारनैं ॥

ॐ ह्रीं शाल्मली वृक्ष स्थित जिनसमूहाय फलं ॥ ८ ॥

जल फल अर्घ बनाय, उत्तम पात्र सु धारिकैं।
शाल्मली जिनगृह ध्याय, पूजौं मन वच कायतैं ॥

ॐ ह्रीं शाल्मली वृक्ष स्थित जिनसमूहाय अर्घं ॥ ९ ॥

मोतीदाम छन्द।

सु जम्बूव द्वीप विषैं विलसन्त,
सु मेरुय नैऋत्त कौण बसन्त।
तहां तरु शाल्मली नाम कहान,
जजौं जिन गेह तहां ठहरान ॥

ॐ ह्रीं शाल्मली वृक्षस्थित जिनगृहाय अर्घं ॥ १ ॥

सु थित अठोत्तरिसो जिन केह,
धनु: शत पंच उतंग सनेह।
नमौं तिनकौं मन मोद बढाय,
मनोहर अर्घ लिये हरषाय ॥

ॐ ह्रीं शाल्मली वृक्ष स्थित एकसो आठ जिनबिंबेभ्यो अर्घं ॥ २ ॥

जयमाला।

दोहा।

शाल्मली वृक्ष सदा लसैं, मेरु सु नैऋत्त कौण।
ताकी दक्षिण साखमैं, जिनगृह सार सु भौण ॥ १ ॥

लक्ष्मीधरा छन्द।

शाल्मली वृक्षके जैन गेहे जिनं, एकसो आठ राजें सदा सन्दिनं। तासके पाद पद्मं मौं भावनैं ॥ याहु मोकौं शिवं जाचना चावनैं ॥ २ ॥ द्वीप जम्बू विषैं मेरुतैं नैऋत्ते, सार सीतोदके पश्चिमे भागतैं। राजतो शाल्मली वृक्ष है सुन्दरं, ताककी दक्षिणे शाखमैं मन्दिरं ॥ ३ ॥ सोभतो नित्य प्रीति करो भव्यकौं, देखतैं पाप भागैं सबै भव्यकैं। सो जिनं गेहके नाथ मोकौं अबैं, तार संसारतैं सार सो यो सबैं ॥ ४ ॥ कीजिये आप तुल्यं जिनं देवजी, येही

वांछा सदा सो मनैं सेवकी। कीजिये नाथ संसारके पार सो, धारिये बीनती माहचन्द्र हि चिओ ॥ ५ ॥

दोहा।

शाल्मलि तरु मधि गेह, जिन ताकी यह गुणमाल।
गावो बांचो भरदहो, भव्य जीव सुखकार ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं शाल्मलिवृक्ष स्थित जिनगृह जिनसमुदाय महार्घ ॥

सोरठा।

जो बांचे यह पाठ, मनमैं हर्ष बढ़ायकैं।
सो पावै सब ठाठ, अनुक्रम शिव धाम्म बरै ॥ ९ ॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री जम्बूद्वीपे शाल्मलिवृक्ष स्थित जिनगृह पूजा समाप्ता ॥

अथ जम्बूद्वीपे पूर्वविदेह स्थित आठ वक्षारागिरि पूजा।

अडिल्ल छन्द।

मेरु सुदर्शनतैं पूरब दिशा जानिये, सीताके उत्तर दक्षिण तट मानिये। गिरि वृक्षार जु आठ आठ जिन गेह हैं, ते जन निश्चे आय जजे करि नेह हैं ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपेसुदर्शनमेरोः पूर्वविदेहक्षेत्र स्थित अष्टवृक्षारोपरि अष्ट जिनगृहजिनसमूदाय अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननं। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

चाल-काफी होरीमैं।

भजो भवि पूर्व विदेह मझारी, गिरि अठ वक्षार जिन सारी। भजो भवि० ॥ निर्मल नीर सीर अति सीतल, भरी करि कञ्चन झारा। जन्म मरण दुख नाशन जिन पद, धार तीन शुभ हारो। भजो भवि०॥ भजो भवि पूर्व विदेह मझारी, गिरि अठ वृक्षार जिनसारि भजो भवि० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपेसुदर्शनमेरो पूर्वविदेह स्थित वक्षारगिरि जिनगृह जिनसमुदाय जलं ॥ १ ॥

अगर सुगन्धित चन्दन कुङ्कुम, मेलि घसो सुखकारी। भव तप नाशन कारण जिन पद, पूजो मन शुभ करि ॥ भजो भवि०, गिरि अठ० ॥

ॐ ह्रीं पूर्व वक्षार स्थित जिनसमुदाय चन्दनं ॥ २ ॥

तन्दुल उज्वल इन्दु कुन्द सम, खण्ड विवर्जित सारो। अक्षय पद पावन जिन पूजो, करि करि मनकी हुलारो ॥ भजो भवि०, गिरि अठ० ॥

ॐ ह्रीं पूर्व वक्षार स्थित जिनसमुदाय अक्षतं ॥ ३ ॥

कमल केतकी और केवडो, हात सुगन्ध दिगारि। कामबाण दुःख नाशन पूजो, जिन क्रम सब सुखकारि ॥ भजो भवि०, गिरि अठ० ॥

ॐ ह्रीं पूर्व वक्षार स्थित जिनसमुदाय पुष्पं ॥ ४ ॥

मोदक मोदन फीणि झीणी, खाजा ताजा कारी। रोग क्षुधा शतखण्ड करणकौं, जिन पद पूजि अगारी॥ भजो भवि०, गिरि अठ०॥

ॐ ह्रीं पूर्व वक्षार स्थित जिनसमूहाय नैवेद्यं॥ ५॥

दीपक जोति जगाय सर्पिमय, आरती जिनपद कारी। मोह तिमिर नाशनके कारण, जिनवर पद परिवारी॥ भजो भवि०, गिरि अठ०॥

ॐ ह्रीं पूर्व वक्षार स्थित जिनसमूहाय दीपं॥ ६॥

श्रीखण्डादिक लेय मनोहर, गन्ध सुगन्धन कारी। अष्ट कर्मके नाशन खेवों, जिनवर पदके अगारी॥ भजो भवि०, गिरि अठ०॥

ॐ ह्रीं पूर्व वक्षार स्थित जिनसमूहाय धूपं॥ ७॥

आम्र कर्कटी दाडिम पूंगी, और मनोहर सारी। मोक्ष महाफल चाखन पूजौं, फलतैं जिनपद भारी॥ भजो भवि०, गिरि अठ०॥

ॐ ह्रीं पूर्व वक्षार स्थित जिनसमूहाय फलं। ८॥

जल फल वसुविधि द्रव्य लेयकैं, अर्घ करों अघ हारि। नाचि गाय अति हर्षित ह्वैकैं, धारो जिनपद तारी॥ भजो भवि०, गिरि अठ०॥

ॐ ह्रीं पूर्व वक्षार स्थित जिनसमूहाय अर्घं॥ ९॥

अथ प्रत्येकार्घं।

चाल-होरी चलत।

जजो गिरि बक्षार जिनराज गिरितैं पूर्वमैं ॥जजि०
नीलाचलतैं निकस्यो, सीता पासी आय। तिथिकाज भद्रशालतैं लगना, प्रथम जु गिरि बक्षार। जिनराज गिरितैं पूर्वमैं॥ जजि गिरबक्षार जिनराज गिरितैं०॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे पूर्वविदेह विभाग स्थित प्रथम बक्षार-गिरि स्थित जिनगृह जिनसमुदाय अर्घम् ॥ १ ॥

सीताके उत्तर तट माहि, नीलत निकसि सवाज दूजो गिरि। बक्षार तहां जिन गेह, जजो सुखकाज गिरितैं पूर्वमैं॥ जजौं गिरि०॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शनमेरो पूर्वविदेह विभाग स्थित द्वितीय बक्षारगिरि स्थित जिनगृह जिन समुदाय अर्घं॥ २॥

नीलकुलाचल तैं निकस्यो कुनि, सीना आय मिलाजनि जो। गिरी बक्षार तहां जिनगेह, जजौं महाराज गिरितैं, पूर्व मैं जजि गिरिबक्षार जिनराज०॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शनमेरो पूर्वविदेह विभाग स्थित तृतीय बक्षार गिरि स्थित जिनगृह जिनसमुदाय अर्घं ॥ ३ ॥

चौथो गिरि बक्षार विराजन, देवारण्य वन साज। जिनवर गेह तहां निति सोहैं, पूजो अर्घ कराज गिरितैं०॥ जजि०॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शनमेरो पूर्वविदेह विभाग स्थित चतुर्थ वक्षार स्थित जिनगृह जिनसमूहाय अर्घम् ॥ ४ ॥

सीताके दक्षिण तट सोहै, निकट भद्रवन साज। पंचम गिरि वक्षार जिनगृह तहां, पूजो सुखके राज गिरितैं० ॥ जजि० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपेसुदर्शनमेरो पूर्वविदेह सीता दक्षिणतट स्थित पंचम वक्षारस्य जिनगृह जिनसमूहाय अर्घं ॥ ५ ॥

निषध कुलाचलतैं लगनो फुनि, सीता पासि विराज षष्टम गिरि। तापरि जिन मन्दिर पूजौं, मन सुख काज गिरितैं० ॥ जजि० ॥

ॐ ह्रींजम्बूद्वीपे सुदर्शनमेरो पूर्व विदेह सीता नद्या दक्षिण तट स्थित षष्टम वक्षारस्य जिनगृह जिनसमूहाय अर्घं ॥ ६ ॥

कंचन मय अति सुन्दर सप्तम, गिरिवक्षार सुराज। तापरि जिनगृह सोहत सुन्दर, पूजत पाप पलाय गिरितैं० ॥ जजि० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपेसुदर्शनमेरो पूर्वविदेह सीतानद्या दक्षिणतट स्थित सप्तम वक्षारस्य जिनगृह जिनसमूहाय अर्घं ॥ ७ ॥

अष्टम गिरि वक्षार विराजत, सीता दक्षिणराज। देवारण्य समीप मनोहर, तापरि जिनगृह साज ॥ गिरितैं० ॥ जजि० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शनमेरो पूर्व विदेह सीतानद्या दक्षिणतट स्थित अष्टमवक्षारस्य जिनगृह जिनसमूहाय अर्घं ॥८॥

सीताके चतु उत्तर तटपैं, चउ दक्षिण तटराज। अष्टवक्षार आठ जिनमन्दिर पूर्व विदेह विराज, गिरितैं पूर्वमैं, जजि गिरिवक्षार जिनराजगिरि० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपेसुदर्शनमेरो पूर्व विदेह विभाग स्थित अष्ट वक्षार गिरणां अष्ट जिनगृह जिन समुदाय पूर्णार्घं॥ ९ ॥

आठ शतक चोसठि जिन प्रतिमा, नित्य इनौं परिराज। तिनकौं पूजौं मन वच तन करि, अर्घ लेय शुन गाज गिरितैं० ॥ जजि० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपेसुदर्शनमेरो पूर्व विदेह विभाग स्थिताष्ट वक्षार गिरि स्थित अष्ट जिनगृहरेषु अष्टशत चोसठ सर्व जिन बिम्बेभ्यः ॥ पूर्णार्घं ॥ १० ॥

अथ जयमाला।

दोहा।

जम्बूद्वीप सुमेरु तैं, पूरब भाग विशाल।
गिरिवक्षार जु आठ हैं, आठ जिनालय सार ॥१॥

कामिनि मोहन छन्द।

अष्टवक्षार गिरिमेरुतैं पूर्वमैं, राजि हैं सर्व कंचन मई उर्वमें। च्यारि सीतानदी उत्तरे भागमैं, च्यारि सीतानदी दक्षिणे भागमें ॥ २ ॥ नीलकुल चलतैं निकसैं चउ सुन्दरे, च्यारि निषधाचलत निकसि ऐसे जुरे। नील निषधाचले पासि उन्नत बनें, च्यारि-

सै जोजनं सबे दुःख कौं हनै ॥ ३ ॥ शीतनदि पासि उन्नत भये पांचसैं, जोजनं सबे बलधाकृतिराचि-सैं। शीत जहां पांच सत जोजनं उन्नतं, शीत नदि पासि तहां जिनगृह सुन्नतं ॥ ४ ॥ एक जिन गेहमैं बिंब शत आठ हैं, पंच शत धनुष्य उन्नत महा ठाठ हैं। रत्नमय बिंब नहि आदि अर अन्त हैं, नित्य प्रति रहत पूजैं सदा सन्त हैं ॥ ५ ॥

आठ वक्षार गिरिके जिनं देवजी, अरज सुन-ज्यो हमैं करत निति सेवजी। दुष्ट शठ अष्ट कर्मन तनैं जालनैं, काढियो मोहि लखि किंकरो हालतैं ॥ ६ ॥ जयति जय जयति जय नाथ अवलोकके, इन्द्र शत पुज्ज जय नाथ सब थोकके। नाथ जय कर्म अरि साथ निर्मुक्त हो, देव जय तात जग प्राणी हित सूक्त हौ ॥ ७ ॥ हम हि तुम चरणके दास गत आस हैं, करहु हम परि दयाल हु तुम पास हैं। चरण तुमपैं खडो बुध महाचन्द्र है, तुम चरण सेव जाचत सु मन सांद्र हैं ॥ ८ ॥

घत्ता छन्द।

इतिपूर्व विदेहे गिरि अठकै हैं, नाम नाम सदा वक्षार।
तिनपैं जिनगेहे अठ संखे हे, पुजत भवभव पाप नसैं॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपें पूर्वविदेह विभागस्थिताष्ट वक्षारगिरि-स्तेषां अष्ट जिनगृह जिनसमूहाय महार्घं ॥ ९ ॥

गाहा छन्द

पूर्वविदेह विभागस्थित, अठवक्षार आठ जिनगेहा।
जो पूजैं धरि नेहा, सोपावै भुक्ति मुक्ति सुखगेहा॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री जम्बूद्वीपे सुदर्शन मेरौ पूर्वविदेह विभाग-
स्थिताष्ट वक्षारगिरि पूजा समाप्ता।

अथ जम्बूद्वीपे सुदर्शन मेरौ पूर्वविदेहे षोडश विजयार्द्धगिरि पूजा

कवित्त।

जंबूद्वीप सुमेरु सुपूरब, षोडशसंख्य विदेह विराजैं।
तिनमैं एक माहि विजयारध, एकलसैं यौं षोडशसाजैं॥
तिनपैं षोडश हैं जिनगेह, सुजिनवर बिंबसमेत अनुपंते। जिन आय विराजहु अत्रसु पूजन, हौं त्रय लोक सुभूपं॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शन मेरौ पूर्वविदेहस्थित षोडश विजयार्द्धानां षोडश जिनगृह जिनसमूह अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननम् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् संनिधापनं।

अथाष्टक।

चाल—लावणी।

सुनौं जिनराज अरज मेरा, जम्बूद्वीप विदेहपूरबमैं

विजयाधर केरी, सुनौं। सुर सरिताको उज्जल जल ले, कनक पात्र भरी जन्म मरण दुःख नासन कारण धार तीन देरी, सुनौं जिनराज अरज मेरी। जम्बूद्वीप विदेह पूर्वमैं, विजयारध केरी, सुनौं० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे पूर्वविदेह स्थित षोडश विजयार्ध जिनसमुदाय जलम् । १ ॥

कुंकुम मालिमेलिक चन्दन सुन्दर घनि लेरी। भव तप नाशन कारण पूजौं पद जिनवर केरी, सुनौं जिनराज० ॥ जम्बूद्वीप० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे पूर्वविदेह स्थित षोडश विजयार्द्ध जिनसमुदाय चंदनम् ॥ २ ॥

उज्जल तन्दुल धोय नीरतैं पूंज करौं तेरी, अक्षय पद पावनके कारण। जजौं चरण दूरी, सुनौं जिन० ॥ जम्बूद्वीप० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे पूर्वविदेह स्थित विजयार्द्ध जिनसमुदाय अक्षतम् ॥ ३ ॥

कमल केतकी बेलि, चम्पेली फूल सुगन्धेरी। काम बाण नाशन हित पूजौं, चरण कमल तेरी ॥ सुनौं जिन० ॥ जम्बूद्वीप० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे पूर्वविदेह स्थित विजयार्द्ध जिनसमुदाय पुष्पम् ॥ ४ ॥

नाना रस पकवान बनाओं कंचन पात्रेरी। क्षुधा-
रोग नाशन जिन पूजौं, नेवज ऐसैंरी॥ सुनौंजिन०
॥ जम्बूद्वीप०॥

ॐ ह्रीं जंबूद्वीपे पूर्वविदेहस्थित विजयार्द्ध जिनसमूहाय नैवेद्यं॥५॥

घृत मय दीपक जोय बनाउं आरती जिन तेरी।
मोह तिमर नाशक लखी पूजौं चरण कमलमैंरी॥
सुनौं जिनराज०॥ जम्बूद्वीप०॥

ॐ ह्रीं जंबूद्वीपे पूर्वविदेहस्थित विजयार्द्ध जिनसमूहाय दीपं॥६॥

श्री खण्डादिक द्रव्य मनोहर लेय सुगन्धेरी।
अष्ट कर्म नाशक लखी खेउं धूप चरण तोरी सुनौंजिन-
॥ पूर्वविदे०॥

ॐ ह्रीं जंबूद्वीपे पूर्वविदेहस्थित विजयार्द्ध जिनसमूहाय धूपं॥७॥

दाडिम आम्र जमेरी कमरख, फल सुन्दर लेही।
मोक्ष महाफल चाखन पूजौं, तुम चरणं ढेरी॥
सुनौं जिन०॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे पूर्वविदेहस्थित विजयार्द्ध जिनसमूहाय
फलं। ८॥

जल चन्दन अक्षत प्रसून चरु, दीप धूप हेरी।
ले फल अर्घ बनाय जजौं, जिन हरौं जगतफेरी॥
सुनौं जिन०॥ जम्बूद्वीप०॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे पूर्वविदेहस्थित विजयार्द्ध जिनसमूहाय
अर्घ॥ ९॥

अथ प्रत्येक अर्घ।

सोरठा।

कक्षा देश मझारि, रूपाचल सुन्दर लसैं।
ता परि जिनगृह सार, पूजौं अर्घ बनायकैं॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शनमेरो पूर्वविदेह कक्षामध्ये प्रथम विजयार्द्ध स्थित जिनगृहसमूहाय अर्घं॥ १॥

देश सु कक्षा नाम, सीताके उत्तर तटैं।
विजयारध जिन धाम, पूजत विघ्न कर्मैं सबैं॥

ॐ ह्रीं पूर्वविदेह सु कक्षामध्ये द्वितीय विजयार्द्ध स्थित जिनगृह जिनसमूहाय अर्घम्॥ २॥

विजय नाम महा कछ, तीजो ता विचि जानिये।
विजयारध अति स्वच्छ, जिनगृह मंजुल पूजि हौं॥

ॐ ह्रीं तृतीय महाकछनाम विदेह विजयार्द्ध स्थित जिनगृह जिनसमूहाय अर्घं॥ ३॥

क्षेत्र चतुर्थ अनूप, कछकावती नाम है।
विजयारध जिन भूप, पूजौं करकरि अर्घ शुभ॥

ॐ ह्रीं पूर्वविदेह कछकावती मध्ये विजयार्द्ध जिनगृह जिनसमूहाय अर्घम्॥ ४॥

पंचमक्षेत्र विदेह नाम, आवत सु जानिये।
ता रूपाद्रि जिनगेह, पूजौं प्रतिदिन भावसैं॥

ॐ ह्रीं पूर्वविदेह आवर्तनाम मध्ये विजयार्द्ध स्थित जिनगृह जिनसमूहाय अर्घम्॥ ५॥

षष्ठम क्षेत्र लसन्त नाम, लांगलावर्त है।
ता मधि रूप्य गिरन्त, जिनगृहसंजुत मो जजौं ॥

ॐ ह्रीं पूर्वविदेह लांगलावर्त मध्ये विजयार्द्ध स्थित जिनगृह जिनसमूहायार्घम् ॥ ६ ॥

सीता उत्तर भाग, सप्तम क्षेत्र संजु पुष्कला।
विजियारध विचि पाग, जिनगृहनापरि संयजे ॥

ॐ ह्रीं पूर्वविदेह सप्तम पुष्कला नाम ता मध्ये विजयार्द्ध जिनगृह जिनसमूहायार्घम् ॥ ७ ॥

अष्टमक्षेत्र महन्त, पुष्कलावती नाम है।
ता विजयारध रून्त, जिनगृहनापरि पूजिये ॥

ॐ ह्रीं पूर्वविदेह पुष्कलावती नाम ता मध्ये विजयार्द्ध जिनगृह जिनसमुदाय अर्घम् ॥ ८ ॥

सीता दक्षिण भाग, नवमौं वक्षा देश है।
विजियारध विचिलार, जिन गृहनापरि पूजि है ॥

ॐ ह्रीं पूर्वविदेहसीता दक्षिण तटे वक्षा नाम नवमौं क्षेत्र ता मध्ये विजयार्द्ध जिनगृह जिनसमुदाय अर्घम ॥ ९ ॥

नाम सु वक्षा देश, दशमौं सीता दक्षिणे।
जिनगृहयुत विजयेश, जिनवर पूजौं अर्घतैं ॥

ॐ ह्रीं पूर्वविदेह सुवक्षानाम मध्ये विजयारध जिनगृह जिनसमुदाय अर्घम् ॥ १० ॥

क्षेत्र एकादश जानि, नाम महावक्षा लसै।
रूपाचल विचिमानि, जिनधाम परिपुजये ॥

ॐ ह्रीं पूर्वविदेह महावत्सा ता मध्ये विजयारध जिनगृह जिनसमूहाय अर्घम् ॥ ११ ॥

द्वादशमौं लखि देश, वत्सकावती नाम।
तसु विजयारध हि जिनेश, गेह सहित जिन संयजे॥

ॐ ह्रीं पूर्वविदेह वत्सकावती तामध्ये विजयारध जिनगृह जिनसमूहाय अर्घम् ॥ १२ ॥

रम्यादेश विशाल, सीता दक्षिण तट विषैं।
विजयारध तहां भाल, जिनगृह पूजौं ता विषैं॥

ॐ ह्रीं पूर्वविदेह रम्यानाम ता मध्ये विजयारध जिनगृह जिनसमूहाय अर्घम् ॥ १३ ॥

चौदहमौं तहां देशनाम, सुरम्या जानिये।
ता मधि रूप्य गिरीश, जिनगृह संयुत पूजिये॥

ॐ ह्रीं पूर्वविदेह सुरम्या नाम ता मध्ये विजयारध जिनगृह जिनसमूहाय अर्घम् ॥ १४ ॥

रमणीया शुभ क्षेत्र, सीता दक्षिण विजयगिरि।
पूर्वापर विक्षेत्र. ता परि जिनगृह संयजे॥

ॐ ह्रीं पूर्वविदेह रमणीया क्षेत्र विजयारध जिनगृह जिनसमूहाय अर्घम् ॥ १५ ॥

षोडशमौ शुभ देश, मंगलावती जानिये।
ता मधि रूप्य गिरीश, जिनगृह तापरि पूजि हौं॥

ॐ ह्रीं पूर्वविदेह मंगलावती नाम तामध्ये जिनगृह युत विजयार्द्ध जिनसमूहाय अर्घं ॥ १६ ॥

पूर्वविदेह प्रमाण षोडश, षोडश रूप्यगिरि।
तामधि षोडश जान, जिनगृह तिनप्रति अर्घ हैं ॥

ॐ ह्रीं पूर्वविदेह षोडशमध्ये षोडशविजयार्द्धतिउपरि षोडश जिनगृह जिनसमूहाय अर्घम् ॥ १७ ॥

जिन प्रतिमा सब जानि, एक सहस्र शत सात हैं।
अठवीशं अधिकानि, सर्व जिजौं हम अर्घतैं ॥

ॐ ह्रीं पूर्वविदेह षोडश विजयार्द्धनके एकहजार सातसै-अठाईस सर्व जिनप्रतिमा समूहाय पूर्णार्घं ॥ १८ ॥

अथ जयमाला।

दोहा।

पूर्व विदेह विषै लखैं, षोडश विजय विशाल।
तिनपरि षोडश जिनभवन, तिनकी यह जयमाल ॥१॥

पद्धडी-छन्द।

जय पूर्व रूप्य गिरिके जिनेश, तुमको निति पूजत हौं सुरेश। षोडश विदेह पूरब लसंत, सुर गिरितैं पूरबमैं बसन्त ॥ २ ॥ तह आठ विदेह दिपै सु जानि, कक्षादिक सीता उत्तरान। फुनि आठ विदेह सदा लसन्त, सीताके दक्षिण भाग सन्त ॥३॥ ऐसैं षोडश शुभ हैं विदेह, गिरि सुर गिरितैं पूरब सगेह। इन देशनमैं षट्खण्ड होत, द्वय नदी बीचिमैं है उद्योत ॥ ४ ॥ विजयारध विद्याधर समेत, पचपन

पचपन नगरी द्विखेन। द्वय गुफा समेत सदा लसन्त, इनमैं द्वय नदि निकसन्तवन्त ॥ ५ ॥

इनको लम्बाई जानि एम, पूर्वापर होत सदाहि नेम। इन उपरि जिनगृह जिन कहन्त, इक इक परि एक सु एक सन्त ॥ ६ ॥ षोडश क्षेत्रन मधि जानि नित्य, षोडश विजयारध हैं पवित्त। तिन परि षोडश जिनगृह लसन्त, इक मन्दिर प्रतिमा शत अठन्त ॥७॥ प्रतिमा शत पंच धनु उतंग, रत्नमय सुन्दर शोभ अंग। यह मन्दिर उन्नत पौंण कोश, इक कोस लम्बाई जानि च्योस ॥ ८ ॥ इन व्यास अर्द्ध कोशहि प्रमाण, यह नित्य लसैं मन्दिर महान। नहि किये नाश करि रहत जानि, नित वन्दू प्रतिमा मानि मानि ॥ ९ ॥ इन गृहन माहि प्रतिमा अनूप, जय जय जय त्रिभुवन नाथ भूप। जय सब जिव करुणाधार देव, हम वन्दत हैं तुमकौं सदैव ॥ १० ॥

संसार समुद्र मद भानि भानि, करुणा करि मोतय हानि हानि। हम सेवक हैं तुम चरण नाथ, संसार समुद्रतैं गहो हाथ ॥ ११ ॥ यह विघ्न सघन घन घानि घानि, सुख मूल मोक्ष करि भांति भांति। यह जाचत बुध महाचन्द्र नित्य, माहि राखो तुम पद तनौं भृत्य ॥ १२ ॥

घत्ता छन्द।

विजयारध नाम्नि पूरव पामी, जिनगृह नामी पूज करो।
निति नाचूं गाऊँ भक्ति बढ़ाऊँ, तातैं शिवपुर राज करौं॥

ॐ ह्रीं पूर्व विदेह षोडश विजयार्ध जिनगृह जिनसमूहाय महार्घं ॥ १३ ॥

दोहा।

पूर्व विदेह सु रूप्य गिरि, तिनके जिनवर भूप।
जो पूजै मन लायकैं, सो होवैं शिव रूप ॥१४॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री पूर्व विदेह विजयार्ध जिनगृह पूजा समाप्ता॥

जम्बूद्वीपे सुदर्शनमेरुतैं पश्चिम विदेह विषैं आठ वक्षार गिरि जिनगृह पूजा।

चौपाई।

जम्बूद्वीप सुदर्शन जानो, ताकी पश्चिम दिशा मनआनौं।
गिरि वक्षार आठ जिन गेहा, ते आठों पूजूँ धरि नेहा॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे पश्चिमविदेहभागस्थित वक्षारगिरि जिन-समूह अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननं। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

अथाष्टकम्।

चाल जोगीरासा आवलीबन्ध।

भवि तुम चेतो मनमाई, सुर सरिता आदिक

जल उत्तम, शुभ भृंगार भराई। जन्म मरण नाशन जिनपद पै, धारा तीन लगाई, भवि तुम चेतो मनमाई॥ जम्बूद्वीप सुदर्शनमेरू, पश्चिम भाग सुहाई। गिरि वक्षार आठ जिन गृह, जिन पूजो मन वच काई भवि तुम० ॥

ॐ ह्रीं पश्चिमभागस्थित वक्षारगिरि जिनगृह जिन-समूहायार्घम् ॥ जलं ॥ १ ॥

केसरि चन्दन अगर तगर, कपूर मिलाय घसाई। भव तप नाशन कारण पूजौं, चरण जिनेश्वर राई॥
भवि तुम चेतो मनमाही ॥ जम्बूद्वीप० ॥

ॐ ह्रीं पश्चिम विदेह विभागस्थित वक्षारगिरि जिनगृह जिनसमूहाय चन्दनं ॥ २ ॥

उज्वल तन्दुल खण्ड विवर्जित इंदु कुंद उजलाई। पुंज धरो जिन चरनन आगैं, तुरत अखैपददाई। भवि तुम चेतो मनमाई॥ जम्बूद्वीप० ॥

ॐ ह्रीं पश्चिम विदेह विभागस्थित वक्षारगिरि जिनगृह जिनसमूहाय अक्षतं ॥ ३ ॥

कमल केतकी वेलिचमेली, आदिसु पुष्प मगाई। काम बाणके नाशन कारण, जिन पूजौं हरषाई॥ भवि तुम० ॥ जम्बूद्वीप० ॥

ॐ ह्रीं पश्चिम विदेह विभागस्थित वक्षारगिरि जिनगृह जिनसमूहाय पुष्पं ॥ ४ ॥

नाना रस मीठक मन मोदक, खाजा ताजा ल्याई। क्षुधावेदनी नाशन पूजौं, श्री जिनके दुय पाई॥ भवि तुम० ॥ जम्बूद्वीप० ॥

ॐ ह्रीं पश्चिम विदेह विभागस्थित वक्षारगिरि जिनगृह जिनसमुदाय नैवेद्यम् ॥ ५ ॥

दीपक जोति जगाय आरति, जिन पदकी करी भाई। मोह महातम नाशन पूजौं, श्री जिन चरण मनाई॥ भवितुम० ॥ जंबूद्वीप० ॥

ॐ ह्रीं पश्चिम विदेह विभागस्थित वक्षारगिरि जिनगृह जिनसमुदाय दीपम् ॥ ६ ॥

अगर तगर श्री खण्ड आदिकरि, धूप सुगन्धित भाई। अष्ट कर्म यह काष्ट जरा यन, सेवो जिन अगराई॥ भवि तुम० ॥ जम्बूद्वीप० ॥

ॐ ह्रीं पश्चिम विदेह विभागस्थित वक्षारगिरि जिनगृह जिनसमुदाय धूपम ॥ ७ ॥

दाडिम दाख छुवारा पिस्ता, आम्र सु फल शुभलाई। मोक्ष महा फल चाखन, श्री जिनपद पूजौं मनलाई॥ भवि तुम० ॥ जम्बूद्वीप० ॥

ॐ ह्रीं पश्चिम विदेह विभागस्थित वक्षारगिरि जिनगृह जिनसमुदाय फलम् ॥ ८ ॥

जल आदिक फल अन्त लेयकैं, अर्घ करौं सुख-

हाई। पद अनघ पावनके कारण, पूजो जिनवर राई॥ भवि तुम०॥ जम्बूद्वीप०॥

ॐ ह्रीं पश्चिम विदेह विभागस्थित वक्षारगिरि जिनगृह जिनसमुदाय फलम्॥ ९॥

अथ प्रत्येक अर्घं।

छन्द चौपाई।

सीतोदा उत्तर तट जानौं,
भद्रशाल वन लगतो मानौं।
गिरि वक्षार प्रथम शुनि राजै,
जिनग्रह तापरि जजि जिनराजै॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे पश्चिम विदेह विभागस्थित वक्षारगिरि जिनगृह जिनसमुदायार्घम्॥ १॥

नील कुलाचल तें निकसाना, सीतोदा नदि माहि मिलाना। दूजो गिरि तापरि जिनगेहा, पूजौं जिन प्रतिमा धरि नेहा॥

ॐ ह्रीं द्वितीय वक्षारस्थित जिनसमुदायार्घम्॥ २॥

नील समीप चतारिसैं राजैं, जोजन पंच शतं नदि पासैं। तहां जिन मन्दिर सोहैं सारं, जिनवर पूजौं निति सुखकार॥

ॐ ह्रीं तृतीय वक्षारस्थित जिनसमुदायार्घम्॥ ३॥

सीतोदा उत्तर तट माही, चोथो गिरि वक्षार सुहाई। जिनगृह तापरि सुरनर ध्याई, पूजौं मैं शुभ अघ खनाई॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ वक्षारस्थित जिनसमूहायार्घम् ॥ ४ ॥

सीतोदा दक्षिण दिशिमाही, पचम गिरि वक्षार सुहावैं। तापरि जिनगृह पूजो सारं, तीन जगत्त करि पूज्य जिनार ॥

ॐ ह्रीं पश्चिमविदेह सीतोदादक्षिणतट स्थित वक्षारगिरि-स्थित जिनसमूहायार्घम् ॥ ५ ॥

षष्ठम गिरि वक्षार सुहावै, कंचन मय सबकै मन भावै। तापरि जिनगृह सब मन मोहैं, जिन प्रतिमा पूजै सुख होहैं ॥

ॐ ह्रीं पश्चिमविदेहस्थित षष्टम वक्षारगिरि जिन-समूहायार्घम् ॥ ६ ॥

सप्तम गिरि वक्षार सुहावैं, सीतोदा दक्षिण तट पावैं। तापरि जिनगृह जिनवर राई, पूजौं जिनवर सब सुखदाई ॥

ॐ ह्रीं सप्तम वक्षारगिरिस्थित जिनसमूहायार्घम् ॥ ७ ॥

अष्टम गिरि वक्षार समेतं, भूतारण वन पास लगेतं। जिनगृह तापरि पूजौं सारं, अष्ट द्रव्य शुभ करमैं धारं ॥

ॐ ह्रीं अष्टम वक्षारगिरिस्थित जिनसमूहायार्घम् ॥ ८ ॥

दोहा।

पश्चिम भाग विषैं सदा, वक्षारन जिन गेह।
आठ तीन पूर्णार्घतैं, जजौं सदा धरि नेह ॥

ॐ ह्रीं पूर्णार्घम् ॥ ९ ॥

आठ शतक चौसठि अधिक, जिन प्रतिमा सब पाय।
तिनकैं वन्दूं भावतैं, पूर्ण अर्घ बनाय ॥

ॐ ह्रीं सम्पूर्णार्घम् ॥ १० ॥

अथ जयमाला।

दोहा।

पश्चिम सीतोदा नदी, उत्तर दक्षिण भाग।
गिरिवक्षार सु आठ हैं, जिनगृह तिन परि पाग ॥१॥

पद्धड़ी छन्द।

जय जम्बूद्वीप सुमेरु सार, ताकी पश्चिम सु विदेह धार। तहां गिरि वक्षार लसैं सु सार, सीतोदा उत्तर दक्षिणार ॥ २॥ चउ उत्तर तट राजै वक्षार, चउ दक्षिण तट उपरि समार। यह दक्षिण उत्तर मैं अयाम, पूरव पश्चिम हैं व्यास नाम ॥ ३ ॥ चउ नील कुलाचलतैं लगाय, सीतोदा नदि पर्यंत आय। चउ निषध कुलाचलतैं लगाय, नदि जाय मिले यह जिन कहाय ॥ ४ ॥ नीलाचल निषधाचल सु पासि, चउसै जोजन उन्नत विलास। सीतोदापै उन्नत वक्षार, शत पंच सु जोजन हैं समार ॥ ५ ॥

कंचनमय नित्य लसैं अनूप, घलयाकृति सब वक्षार रूप। जहां पंच शतक जोजन उतंग, दिन

पासि तहां जिनगृह अभंग ॥ ६ ॥ तिन गृहनमाहि जिनराज देव, इकसो अठ राजत हैं स्वमेव, तिनकों मैं वन्दौं सीस नाय, करि शुद्ध सदा मन वचन काय ॥ ७॥ जिनराज देव विनति सुनेय, संसार उदधिमैं तार लेय। तुमकौं निति वन्दूं बारबार, बुध महाचन्द्र भवसिंधु तार ॥ ८ ॥

दोहा।

पश्चिमगिरि वक्षार परि जे जिन गेह लसन्त।
तिनमैं जिन प्रतिमा लसैं, वन्दौं मनहु लसन्त ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं पश्चिम विदेहस्थित वक्षारगिरि जिनसमूहाय महार्घं।

सोरठा।

जे बांचै यह पाठ पश्चिमगिरि वक्षार, जिनतैं पावै सुख ठाठ। भव सुख लहि शिवसुख लहै ॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री जम्बूद्वीपे पश्चिमविदेह विभागस्थित वक्षारगिरि जिनगृह पूजा समाप्ता ॥

अथ पश्चिमविदेह विजयार्द्ध जिनगृह पूजा।

दोहा।

मेरु सुदर्शन पश्चिमे, क्षेत्र विदेह सु नाम।
विजियारध परिजिन भवन, ते जिन आठों ठाम॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शनमेरो पश्चिम दक्षि विदेह विजयार्द्ध-स्थित जिनसमूह अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननं। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

अथाष्टक।

सुन्दरी छन्द।

विमल नीर सु पात्र भरायकैं, जजत हौं जिनराज मनायकैं। विजय अर्द्ध सु पश्चिम भागमैं, जिन महन्त जिजौं करि आयमैं॥

ॐ ह्रीं पश्चिम विजयार्द्ध जिनसमूहाय जलम्॥ १॥

अगर चन्दन लाय सुगन्धितं, मधुप गुँजत गन्ध सु गन्धितं॥ विजय०॥ जिनमहन्त०॥

ॐ ह्रीं पश्चिम विजयार्द्ध जिनसमूहाय चंदनम्॥ २॥

अमल तन्दुल उज्जल सुन्दरं, करि सु पुञ्ज मनोहर मंधरं॥ विजय०॥ जिनमहन्त०॥

ॐ ह्रीं पश्चिम विजयार्द्ध जिनसमूहाय अक्षतम्॥ ३॥

कमल केतकी बेला चकपेलो जु, लेय पुष्प मनोहर बेलि जु ॥ विजय० ॥ जिनमहन्त० ॥

ॐ ह्रीं पश्चिम विजयार्द्ध जिनसमुदाय पुष्पम् ॥ ४ ॥

रस अनेक सुगन्धित लेयकैं, करि सु नेवज सुन्दर येयकैं ॥ विजय० ॥ जिनमहन्त० ॥

ॐ ह्रीं पश्चिम विजयार्द्ध जिनसमुदाय नैवेद्यम् ॥ ५ ॥

जगमगात सु दीपक जोति हैं, मोहतिमिर हरै जग योत हैं ॥ विजय० ॥ जिनमहन्त० ॥

ॐ ह्रीं पश्चिम विजयार्द्ध जिनसमुदाय दीपम् ॥ ६ ॥

अगर धूप मनोहर लेयकैं, कनक पात्र सु मध्य हिखेयकैं ॥ विजय० ॥ जिनमहन्त० ॥

ॐ ह्रीं पश्चिम विजयार्द्ध जिनसमुदाय धूपम् ॥ ७ ॥

फल मनोहर दाडिम आदिकं, नयन नास सुहावन सादिक ॥ विजय० ॥ जिनमहन्त० ॥

ॐ ह्रीं पश्चिम विजयार्द्ध जिनसमुदाय फलम् ॥ ८ ॥

जल फलांन मनोहर लेयकैं, करि सु अर्घ सुख जिन ध्येयकैं ॥ विजय० ॥ जिनमहन्त० ॥

ॐ ह्रीं पश्चिम विजयार्द्ध जिनसमुदाय अर्घम् ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येकार्घं।

दोहा।

पद्मा देश विषै महा, प्रथम रूपगिरि जानि।
जिनमन्दिर तापैं लसैं, नमौं अर्घ कर ठानि ॥

ॐ ह्रीं पश्चिमविदेहस्थित प्रथम विजयार्द्ध जिनसमूहायार्घम् ॥ १॥

क्षेत्र सुपद्मा नाम हैं, तामधि हैं विजयार्द्ध।
दूजो तापरि जिन भवन, नमौं जिनं सुख सार्द्ध ॥

ॐ ह्रीं द्वितीय विजयार्द्ध जिनसमूहायार्घम् ॥ २ ॥

तीजो क्षेत्र सु उत्तरे, महापद्म तसु नाम।
विजयारध जिन भवन जिन, पूजौं मन वच ताम ॥

ॐ ह्रीं तृतीय विजयार्द्ध जिनसमूहायार्घम् ॥ ३ ॥

पद्मकावती क्षेत्र हैं, चोथो तामधि जानि।
रूपाचल जिनभवन जिन, नमौं सदा मनमानि ॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ विजयार्द्ध जिनसमूहाय अर्घम् ॥ ४ ॥

चलना पंचम क्षेत्र है, सीतोदा उतरान।
विजयारध जिन भवन जिन, पूजौं अर्घ करान ॥

ॐ ह्रीं पचम विजयार्द्ध जिनसमूहाय अर्घम् ॥ ५ ॥

नलिना षष्टम क्षेत्रमैं, विजयारध सुखकार।
जिनगृह तापरि जानिकै, पूजौं अर्घ सवार ॥

ॐ ह्रीं षष्टम विजयार्द्धस्थित जिनसमूहाय अर्घं ॥ ६ ॥

कुमुदा सप्तम क्षेत्र हैं, उत्तर शीक्षोदान।
विजयारध जिन भवन जिन, नमौं जोरि जुग पान ॥

ॐ ह्रीं सप्तम विजयार्द्ध जिनसमूहाय अर्घम् ॥ ७ ॥

सरिता क्षेत्र सु आठमौं, उत्तर नट महिराज।
रूपाचल जिन भवन जिन, पूजौं अर्घ समाज ॥

ॐ ह्रीं अष्टम विजयार्द्ध जिनसमूहाय अर्घं । ८ ॥

सीतोदा दक्षिण तटे, वप्रा क्षेत्र लसन्त।
नवमौं रूप्य गिरि तहां, जिनगृह वन्दौं सन्त॥
ॐ ह्रीं नवमा विजयार्द्धस्थित जिनसमुदाय अर्घं॥ ९॥
क्षेत्र सुवप्रा नाम है, दक्षिण भागे सन्त।
विजयारध जिन गेह युत, नमौं जिन भव हन्त।
ॐ ह्रीं दशम विजयार्द्धस्थित जिनसमुदाय अर्घम्॥ १०॥
महावप्र नामा लस, क्षेत्र रूप्यगिरि युक्त।
रूप्याचल जिन भवन जिन, नमौं अर्घ संजुक्त॥
ॐ ह्रीं एकादशम विजयार्द्ध जिनसमुदाय अर्घं॥ ११॥
वप्रकावती क्षेत्रमैं, विजयारध जिन धाम।
जिन प्रतिमा तापरि नमौं, पाऊं भव मन काम॥
ॐ ह्रीं द्वादशम विजयार्द्ध जिनसमुदाय अर्घं॥ १२॥
गन्धा क्षेत्र लसैं अधिक, तह विजयारध विशाल।
तापरि जिनगृह जानिकैं, पूजैं दे दे ताल॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशम विजयार्द्धस्थित जिनसमुदाय अर्घम्॥ १३॥
नाम सुगन्धा क्षेत्र हैं, चउदशमौं तह जान।
रूप्याचल जिन भवन जिन, जजे हर्ष अति आन॥
ॐ ह्रीं चतुर्दशम विजयार्द्धस्थित जिनसमुदाय अर्घम्॥ १४॥
नाम गन्धिला क्षेत्र हैं, दक्षिण सीतोदान।
तामधि रूप्याचल लसैं, जिनगृह तहाय जान॥
ॐ ह्रीं पंचदशम विजयार्द्धस्थित जिनसमुदाय अ ॥ १५॥

गन्ध मालिनी क्षेत्र है, भूतारण्य समीप।
विजयारध जिन भवन जिन, पूजौं त्रिभुवन दीप॥

ॐ ह्रीं षोडशम विजयार्द्धस्थित जिनसमुदाय अर्घम् ॥ १६॥

जम्बूद्वीप सुमेरतैं, पश्चिम दिशा मांह जानी।
रूपाचल षोडश भवन, जिनके पूजौं मानि॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे मेरुतै पश्चिमदिशास्थित षोडशविजयार्द्ध जिनगृह जिनसमुदाय पूर्णार्घं ॥ १७॥

प्रतिमा षोडश भवनकी, सतरासैं लखि नित्य।
अष्टाविंशति अधिक सब, पूजौं होय पवित्त॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुमेरोपश्चिमदिशिषोडश विजयार्द्धस्थित सतरासै अठाईस सर्वजिनबिम्बेभ्यः पूर्णार्घं ॥ १८॥

अथ जयमाला।

जम्बूद्वीप सु पश्चिमे, षोडश रूप्य गिरीश।
तिनप्रति षोडश जिन भवन, जयमाला यह दीश॥१॥

तोटक छन्द।

जय जम्बू सु द्वीप सु पश्चिममैं, जय षोडश विरूप्य गिरि जिनमैं। निति ध्यावन हौं सु तुमकौं जिनजी, हमरी अरजी निति हो सुनजी॥ २॥ जय षोडश क्षेत्र विदेह महा, सुर अद्रिप पश्चिम भाग रहा। अरु सीतवदा नदि उत्तरमैं, अरु दक्षिण भाग विषं सु रमैं॥ ३॥ यह षोडश क्षेत्र विदेह

सही, जह नाहि गई तिथ भांति कही। दुरभिक्ष अकालय वृष्टि नहि, मरि नाहि जहां वरसे कब-ही ॥ ४ ॥ नहि होत कुदेव कुलिंगि जहां, न तथा कुमतं धरत जु तहां। तह त्रेसठि तीर्थंकरादि रहै, नहि काल विवतन रूप वहै ॥ ५ ॥

श्रुतकेवलि केवलि नित्य लसै, अवधी मन पर्जय ज्ञानि वसै। जह काल चतुर्थम आदि यहां, निति होत समान सुरीति वहां ॥ ६ ॥ तिन बीचि सु षोडश रूप्य गिरि, इक माहि एक निति हैं सुरी रीतिनपैं इक उपरि एक गृहं, जिनराज देव करि राजतु है ॥ ७ ॥ गृह माहि सु बिंब मनोहर हैं, इकमैं इकसौं अठ नित्य कहैं। धनु पच शत तनु तुंग लसे, यम बिम्ब सदा जिनराज वसैं ॥ ८ ॥ जिनराज अबै हम दीननपैं, करियो शुभ दृष्टि जु हिननपैं। तुम चरण तने हम सेवक हैं, तुम छांडि हमैं नहि सेव कहैं ॥ ९ ॥ हमकौं भवसागर पार करो, दुख दारिद्र रोग सबैं हि हरो। यह जाचत हैं महचन्द्र तुमैं, जिनराज तुमैं पद देहु हमैं ॥ १० ॥

घत्ता छन्द।

षोडश विजयारध पश्चिम मारध, तिनप षोडश जिन गेहा। तिनकौं निति बन्दौ पाप निकंदौ, तार तार अब धरि नेहा ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे पश्चिम विदेह स्थित षोडश विजयार्ध जिनगृह जिनसमूहाय अर्घम् ॥ ११ ॥

सोरठा।

जो पूजैं मन लाय, पश्चिम विजयारध गृहं।
सो सबकौं सुखदाय, होय अनुक्रम शिव लहैं ॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री पश्चिम विजयार्ध जिनगृह पूजा समाप्त।

अथ भरतक्षेत्र विजयार्द्ध जिनगृह पूजा।

रथोद्धता छन्द।

मेरुत शुभहि दक्षिणे लसे, क्षेत्र है भरत नामतैं वसै।
रूप पर्वत तहां जिनालयं, सो जिन अबहु अत्र थालयं॥

ॐ ह्रीं भरतक्षेत्र विजयार्द्ध जिनसमूह अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननम् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधापनं।

मोतीदाम छन्द।

भरौं शुभ कंचन झारि बनाय, मनोहर नीर सु उत्तम लाय। जिजौं जिन भरतक्षेत्र सु माहि, तहां विजयारधपैं जु रहाहि॥

ॐ ह्रीं भरतक्षेत्र विजयार्द्ध जिनसमूहाय जलं ॥ १ ॥

सु कुंकुम चन्दन मेलि घसाय, सुगंधित पात्र विषैं शुभ लाय। जिजौं जिन०, तहां० ॥

ॐ ह्रीं भरतक्षेत्र विजयार्द्ध जिनसमूहाय चन्दनं ॥ २ ॥

सु उज्जल तन्दुल मन्दुल लेय, अखण्डित कुन्द समान जगेय। जिजौं०, तहां०॥

ॐ ह्रीं भरतक्षेत्र विजयार्द्ध जिनसमूहाय अक्षतं ॥ ३ ॥

सु मालति केतकी लेय सुगन्ध, मनोभव नाशन माहि अमन्द। जिजौं०, तहां० ॥

ॐ ह्रीं भरतक्षेत्र विजयार्द्ध जिनसमूहाय पुष्पं ॥ ४ ॥

मनोहर व्यञ्जक मोदक सार, क्षुधा हर लेय सुख पात्र मझार। जिजौं०, तहां० ॥

ॐ ह्रीं भरतक्षेत्र विजयार्द्ध जिनसमूहाय नैवेद्यं ॥ ५ ॥

सु दीपक दीपक लेय मनोग्य, महा तम मोह प्रनाशन जोग्य। जिजौं०, तहां० ॥

ॐ ह्रीं भरतक्षेत्र विजयार्द्ध जिनसमूहाय दीपं ॥ ६ ॥

सु धूप दशांग सुगन्धित लेय, जिन पद अग्र धूपायन षेय। जिजौं०, तहां० ॥

ॐ ह्रीं भरतक्षेत्र विजयार्द्ध जिनसमूहाय धूपं ॥ ७ ॥

सु दाडिम नींबू सु पुग अनूप, मनो नयनं सुख कारण रूप। जिजौं०, तहां० ॥

ॐ ह्रीं भरतक्षेत्र विजयार्द्ध जिनसमूहाय फलं ॥ ८ ॥

जलादि फलांत मिलाय सु पात्रं, विच धरि अर्घ बनाय सु गात्र। जिजौं०, तहां० ॥

भुजंगप्रयात छन्द।

सुमेरु दिशा दक्षिणे भर्त सोहै, तहां नामतै रूप्य पिर्वत होहै। गृहं तत्र जैनं सदा सार रूपं, जिजौं मैं जिनं सर्व लोकैक भूपं ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शनमेरौ दक्षिण दिशि भरतक्षेत्र स्थित विजयार्द्ध जिनगृहाय अर्घम् ॥ १ ॥

सबै बिंब हैं एकसो आठ तत्र, जिनानां सदा शोभते हैं पवित्र। तिनैं मैं समर्चों सु अर्घ समेतं, सदा मोहि संसार पार जु देत ॥

ॐ ह्रीं भरतक्षेत्र स्थित विजयार्द्ध जिनगृह मध्ये एकसौ आठ सर्व जिनबिंबेभ्यः पूर्णार्घं ॥ २ ॥

अथ जयमाला।

नाराच छन्द।

नमौं सदा सु जम्बुद्वीप, माही भरतक्षेत्रमैं, तहां सु मध्य होत हैं, सु रूप्य पर्वतत्रमैं। तिनैं सु उपरैं जिनं, गृहं सदा मनोहरं ॥ जिनेन्द्र बिंब राजते मनोज्ञ पाप कन्दरं ॥ १ ॥ सदा चतुर्थ काल आदि, अन्त हानि वृद्धि हैं, सु आय कायतैं यही, सु रीति नित्य गृद्ध है। गिरी सु रूप्य माहि एह, नित्य काल जानिये, तथा ही म्लेछ पांचमैं चतुर्थ काल मानिये ॥ २ ॥ रहै

गिरि सु रूपमैं जितेषु जीव जानिये, अकाश गामिनी सु विद्य सीखते प्रमानिये। यहां सु उत्तरे सु साठि हैं पुरी निरन्तर, सु दक्षिणे प्रभागमैं पचास होत हैं वरं ॥ ३ ॥ यहां सु दक्षिणे प्रभाग, भूमि अल्प जानिये, सु उत्तरे प्रभागमैं विशेष भूमि मानिये। विदेहक्षेत्र माहि भूमि, दोय भाग तुल्य हैं, पचावनं पचावनं, पुरी तहां अमूल्य हैं ॥ ४ ॥ गिरि परैं जिनेन्द्र गेह, नित्य राज है सही, तासमैं जिनेन्द्र बिंब, सर्व सौख्यकी मही। जिनेन्द्र देव सो हमैं अनन्त सौख्य दीजिये, समुद्र माहितैं महा सु, चन्द्र पार कीजिये ॥ ५ ॥

मालिनी छन्द।

इति प्रथमसुमेरौ दक्षिणे भरतक्षेत्रं, विजयगिरि पवित्रं तास मध्ये विराजैं। तिस परि जिन गेहं बिंब संजुक्त सोहैं, जजत सकल सौख्यं दुःख दूरी सु होहैं ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शनमेरौ दक्षिण दिशि भरतक्षेत्र विजयार्द्ध स्थित जिनगृह जिनसमूहाय महार्घं ॥ ६ ॥

दोहा।

भरतक्षेत्र विजयार्द्धपै, जिनगृहकी जयमाल।
जो बांचै मन लायकैं, ताकी शिवपुर चाल ॥

इत्याशीर्वादः।

इति श्री भरतक्षेत्र स्थित विजयार्द्ध जिनगृह पूजा समाप्ता।

अथ जम्बूद्वीपे षटकुलाचल स्थित जिनगृह पूजा।

सवैया ३१।

जम्बूद्वीप माहीं लसैं कुलाचल षट बसैं, हेममय रूपमय तपनीय वर्ण है। वैडूर्य रजतमय हेम मय वर्ण इम, सो जोजन दूणा दूणा उन्नत ही सर्ण हैं॥ हिमवन महाहिमवन निषध सुमन, नीलरुक्मी शिखरि नाम ये ही जानिकैं। इन परि जिन गेह एक, परि एक तेह, तिनमैं जिनेंद्र जेह, आवो थापौं मानिकै॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे षट् कुलाचल स्थित जिनगृह जिनसमूह अत्रावत०॥ अत्र तिष्ठ०। अत्रमम०॥

त्रिभंग छन्द।

गंगादिक नीरं शुद्ध गहीरं, जिन पद तीरं ले आयो। दीनो त्रय धारा कंचन झारा, मन सुखकारा सुख पायो॥ निति जम्बूद्वीपे प्रथम सबी पे, सार अनीपे जिनदेवा। सुकुलाचल माही नित्य रहाही, पूजौं ताही करिसेवा॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे षट् कुलाचल स्थित जिनगृह जिन समुदाय॥ जलं॥ १॥

घनसार मंगाऊ कुंकुमल्याऊं, संग घसाऊं सुख-

पाऊ। जिन चरण चढ़ाऊँ ताप नसाऊं, निजपद पाऊ जिनध्याऊ॥ नितिजम्बू०। सुकुला०॥

ॐ ह्रीं षट्कुलाचल स्थित जिनसमूहाय चंदनं॥ २॥

शुभशाली अखंडित उज्जल मन्डित, नाहि विहंडित ले आयो। जिनचरनन अग्रं पुज समग्रं, देत अविघ्र शिव पायो॥नितिजम्बू०॥ सुकुलाचल०॥

ॐ ह्रीं षट्कुलाचल स्थित जिनसमूहाय अक्षतं॥ ३॥

शुभ बेलि चम्पेलि गंधित लेला, पुष्प अमेली शुभ सेली। जिनवर पद ध्याऊं काम नसाऊ, शिव सुख पाऊँ सुख केलि। निति जम्बू० सुकुलाचल०॥

ॐ ह्रीं षट्कुलाचल स्थित जिनसमूहाय पुष्पम्॥ ४॥

शुभ खाजा ताजा मिष्ट समाजा, मोदक साजा ले आयो। जिन चरण चढ़ाऊ क्षुधा नशाऊं, निज सुखपाऊ गुन गायो। नितिजम्बु०॥ सुकुलाचल०॥

ॐ ह्रीं षट्कुलाचल स्थित जिनसमूहाय नैवेद्यम्॥ ५॥

शुभ दीपक जोऊ घृतमय बोऊ, पातिसमोऊं तुम पदप। तम मोह नशाऊं निज सुख जोऊं। शिव-सुख होऊ गत मद पै। नितजम्बु०। सुकुला०॥

ॐ ह्रीं षटकुलाचल स्थित जिनसमूहाय दीपम्॥ ६॥

कृष्नागुरु धूपं धूपनरूपम्, लेप अनूपम् सारवरं। जिनवर पद सेउ कर्म नसेउं, सब सुख बेउं रिद्धि-भरं। नितिजम्बू०॥ सुकुला०॥

ॐ ह्रीं षट्कुलाचल स्थित जिनसमुदाय धूपम् ॥ ७ ॥

नारिंग सवारं आम अनार, पूँग फलारं फल सारं। जिनपाद चढ़ाऊँ शिवफल पाऊँ, निति गुन गाऊँ सुखकारं ॥ निति जम्बू० ॥ सुकुलाचल० ॥

ॐ ह्रीं षट्कुलाचल स्थित जिनसमुदाय फलम् ॥ ८ ॥

जल आदि संवारे फल सब सारे, वसु द्रव्य धारे जिन आगैं। करि अर्घ सवारं। शिव पद कारं, भव-सुख सारं सुख पागे। निति जम्बु० ॥ सुकुलाचल० ॥

ॐ ह्रीं षट्कुलाचल स्थित जिनसमुदाय अर्घम् ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येक अर्घं ।

लक्ष्मीधरा छन्द।

दक्षिणे मेरुतैं आद्य है पर्वतं, भरतके अन्तमैं सर्वमं सर्वतं। तासपैं गेह जैनं लसैं शास्वतं, ताहि पूजौं करौं अर्घ मैं भास्वतं ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शनमेरो दक्षिण दिशि भरतक्षेत्र विभागस्थित हिमवान् नाम प्रथम कुलाचल स्थित जिनगृह जिनसमुदायार्घम् ॥ १ ॥

होत दूजो महापूर्व हेमन्त है, हेमवन्तेषु क्षेत्रे विभागं तहै। तासप मन्दिरं जैन सम्बन्ध हैं, ताहि विंबं जिजौं दुःख निकन्द हैं ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शनमेरो दक्षिणदिशि महाहिमवन नाम हैमवत क्षेत्र विभागस्थित द्वितीय कुलाचल जिनगृह जिन-समुदायार्घम् ॥ २ ॥

तासरो मेरुनैं दक्षिण भागमैं, नित्य राजैं महा सुन्दर पागमैं। तासपैं गेह राजै मनोहारकं, जन विम्ब जजौं अर्घनैं तारकं ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शनमेरौ दक्षिणदिशि निषध नाम तृतीय कुलाचलस्थित जिनगृह जिनसमूहायार्घं ॥ ३ ॥

छन्द चौपाई।

मेरुसुदर्शन उत्तर जानौं, नील कुलाचल जिनगृह मानौं। क्षेत्र विदेह विभाग विराजै, जिनवर पूजौं निज हित काजैं ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शनमेरोरुत्तर दिशि विदेह विभाग स्थित नील कुलाचल जिनगृह जिनसमूहाय अर्घम् ॥ ४ ॥

रुक्मि नाम पंचमगिरि जानौं, कुल पर्वत रम्यक परमानौं। तापैं जिनगृह जिनवर राजैं, मैं पूजौं निति भव भय भाजैं ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शनमेरोरुत्तर दिशि रम्यक क्षेत्र विभाग स्थित रुक्मि नाम पंचम कुलाचल स्थित जिनगृह जिनसमूहायार्घं ॥५॥

षष्टम है सुकुलाचल सारं, शिखरी नाम महा-सुखकार। हैरण्यवत क्षेत्रके अन्तै, जिनगृह जिनपूजौं निति सन्तै ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे सुदर्शनमेरोरुत्तर दिशि हैरण्यवत क्षेत्र विभाग स्थित शिखरि कुलाचल स्थित जिनगृह जिनसमूहायार्घं ६

मेरु सुदक्षिण उत्तर माहिं, षट् कुल पर्वत

तिसपर हो होत तिन पैं षट् जिनमन्दिर राजैं, तिन सबकौं जजि हौं निज काजैं ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे षट् कुलाचल स्थित षट् जिनगृह जिन समुदाय अर्घ्यं ०॥

इनमें जिन बिम्ब लखि लेया, छसै अडतालिस अधे गनेया। तिन जिन प्रतिमा कौं करि नेहा, अर्घ चढ़ाय जिजौ सुख गेहा ॥

ॐ ह्रीं षट् कुलाचल स्थित छसै अडतालीस सर्व जिन बिंबेभ्यः पूर्णार्घ ॥ ८ ॥

अथ जयमाला।

दोहा।

षट् कुल पर्वत उपरै, षट् जिनगेह विशाल।
राजत सुरपति पूज्य हैं, तिनकी अब जयमाल ॥ १ ॥

मोतीदाम छन्द।

कुलाचल उपरि जे जिन मन्दिर, नमौ तुम पाद पंकज सुख कन्द। सुमेरु दक्षिणमें त्रयराज, सउत्तर मैं त्रय हीन समाज ॥ जिन। अकृत्रिम नाश विहीन विराजैं, समुद्र सु पूरब पश्चिम साजैं। कुलाचल नित्य लसैं इस भांति, अनोपम देखत ही दुख जात ॥ २ ॥

पद्धड़ी छन्द।

दक्षिणमैं सुरगिरिसैं लसंतहि, भवन महा हिम-वत निषध सन्त। उत्तरमैं नील सुनील आदि, रुचि-

मध शिखरी यह है अनादि ॥४॥ हिमवन उन्नत सो जोजनाहि, मह हिमवन द्वै से जोजनाहि, निषधाचल उन्नत च्यारि सै हि ष्रष, च्यारि दोय इक सोलसैहि ॥५॥ हिमवनको व्यास हजार जान, बावन ऊपरि द्वादश कलान। महहिमवन बैयालीस सैहि, दश जोजन दशहि कला बसैहि ॥ ६ ॥ निषधाचल व्यासमु सोल सहंस, सत आठ बाईस दुकला अंस। दक्षिण वत उत्तर व्यास होत, पूरब पश्चिम आयाम दोत ॥ ७ ॥ यह षट् कुल पर्वत जम्बूद्वीप, षट् जिनमन्दिर इन पैं प्रतिप। प्रतिमा इकसो अरु एक माहि, रत्नन मय उन्नत पूर्वमाहि ॥ ८ ॥ जिन देव कुलाचल माही जेह, विनती हमरी सुनियौ जु तेह, हमकैं यह कर्म करंत दुःख, भव भव मैं कबहु नाहि सौख्य ॥ ९ ॥ तुम कारण गही अब आय देव, कर्मनको बन्ध निवारि एव। बुध महाचन्द्र निज दास जानि, कर्मनको बन्ध सु वेगि भान ॥ १० ॥

घत्ता छन्द ।

यह षट् कुलजिनवर भव दुख हरवर, तिनकी यह जयमाल पढी । निति मद युग ध्याऊं शीश नवावौं, तातैं शिवपुर वेगि चढौं ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे षट्कुलाचल स्थित जिनगृह जिन-समूहाय महार्घं ॥ ११ ॥

अडिल्ल छन्द।

षट् कुल पर्वत ऊपरि षट् जिन गेह हैं, तिनकी पूजन जो नर धारैं नेह है। सो पावै सुख सार भवोद्भव नित्य ही, अनुक्रमतैं निर्वाण लहै सुपवित्र ही॥१

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री जम्बूद्वीपे षट् कुलाचल जिनगृह पूजा समाप्ता।

अथ जम्बूद्वीपे ऐरावत क्षेत्र मध्य विजयार्द्ध जिनगृह पूजा

दोहा।

जम्बूद्वीप सुमेरुतैं, उत्तर ऐरावत। विजयारध जिन भवन जिन, आवो थापौं अत्र॥

ॐ ह्रीं ऐरावत क्षेत्र स्थित विजयार्द्ध जिनगृह जिनसमूह अत्रावतरावतर॰॥ अत्र तिष्ठ॰॥ अत्र मम॰॥

अथाष्टक।

सोरठा।

नीर सु उत्तम लाय कंचन झारीमैं, भरौं ऐरावत मधि जाय, विजयारध परिजिनजी जौं॥

ॐ ह्रीं ऐरावत विजयार्द्ध स्थित जिनसमूहाय जलम॰॥ १॥

कुंकुम चन्दन लाय घसि,
सुगन्ध मधुकर भ्रमैं। ऐरावत॰॥

ॐ ह्रीं ऐरावत विजयार्द्ध स्थित जिनसमूहाय चंदनम् ॥ २ ॥

तन्दुल उज्वल लाय,

पुंज धरौं जिनपद आगैं ॥ऐरावत०॥

ॐ ह्रीं ऐरावत विजयार्द्ध स्थित जिनसमूहाय अक्षतम् ॥३॥

कमल केतकी लाय,

गन्ध सुगन्धि पुष्प ले ॥ ऐरावत० ॥

ॐ ह्रीं ऐरावत विजयार्द्ध स्थित जिनसमूहाय पुष्पम् ॥ ४ ॥

नाना नेवज लाय,

खाजा फोणि आदि दे । ऐरावत०॥

ॐ ह्रीं ऐरावत विजयार्द्ध स्थित जिनसमूहाय नैवेद्यम् ॥ ५॥

दीपक जोति जगाय,

आरति जिनपदकी करौं॥ ऐरावत०॥

ॐ ह्रीं ऐरावत विजयार्द्ध स्थित जिनसमूहाय दीपम् ॥ ६ ॥

अगर कपूर सु लाय,

खेऊ जिनपद अग्रमैं ॥ ऐरावत० ॥

ॐ ह्रीं ऐरावत विजयार्द्ध स्थित जिनसमूहाय धूपम ॥ ७ ॥

आम्र सु दाडिम लाय,

फल जिन अग्र चढाय हौं ॥ऐरावत०॥

ॐ ह्रीं ऐरावत विजयार्द्ध स्थित जिनसमूहाय फलम् ॥ ८॥

जल फल अर्घ बनाय,

कनक पात्रमैं अर्घ करि ॥ऐरावत०॥

ॐ ह्रीं ऐरावत विजयार्द्ध स्थित जिनसमूहाय अर्घम् ॥ ९ ॥

पाईता छन्द।

जम्बू ऐरावत राजै, नामधि विजयार्द्ध विराजै।
होता परि जिनमन्दिर सोहैं, पूजौं मैं निज हित होहै॥

ॐ ह्रीं ऐरावत विजयार्द्ध स्थित जिनसमुदाय पूर्णार्घम॥१०॥

प्रतिमा शत आठ लसै हैं, ता मन्दिर माहि बसे हैं।
तिनकौं निति पूजौं ध्याऊं, पूजेतैं निज पद पाऊं॥

ॐ ह्रीं ऐरावत विजयार्द्ध स्थित एकसौ आठ सर्व जिन-बिंबेभ्यः पूर्णार्घं॥ २॥

जयमाला।

सोरठा।

जम्बूद्वीप मझार, ऐरावत उत्तर दिशा।
विजयार्द्ध जिन सार, तिनकी अब जयमाल है॥ १॥

भुजंगप्रयात छन्द।

जयत्वं जिनेन्द्रं प्रमोदं धरानं, सु क्षेत्रे महैरावतें तिष्ठ मानं। तहां रूप्य अद्रौ लसैं रूप्य रूपं, सुविद्या धरा जत्र राजैस भूपं॥२॥ सु पंचासतथा संसदा रूप्य अद्रि, तथार्द्ध सु ऊर्द्ध लसं सुरक दद्रि। सु शीर्षे लसै मन्दिरं सार सोभं, सु रत्नौं मई बिंब सोहै अक्षोभं॥३॥ सुनौं ते जिना बीनतीया हमैं हैं, करो कर्म निर्मूल यह दुख दे हैं। सदा मोही दीन कीयो दुःख देवै, गतीच्यारि माही भ्रमावे सदेवै॥ ४॥ नहीं और

कोई इनोनै बच्यो है, तुमैंहो इनौंकौं निमूल खइयो है। अबै मोह्रो कीजे ईनोतैं उबारो, करे बीनती या महाचन्द्र थारो ॥ ८ ॥

घत्ता छन्द।

इति क्षेत्रैरावत विजय सुहावन,
तापरि जिनगृह राजत हैं।
तामैं जिन बिंब शत अठ कम्बं,
पूजत भव अघ भाजत हैं॥
ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपे ऐरावत विजयार्द्धस्थित जिनमन्दिरेभ्यो महार्घं ॥ ९ ॥

अडिल्ल छन्द।

जम्बूद्वीप सुमेरु सु उत्तरमैं लसैं,
ऐरावत विजयार्द्ध जिनगृह शुभ बसैं।
ताको यह जयमाल सदा जो नर पढ़ै,
भव भवके सुख भोगो अनुक्रम शिवचढ़ै॥ १०॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री जम्बूद्वीपे ऐरावत विजयार्द्ध जिनगृह पूजा समाप्ता॥

अथ धातकीखंडद्वीपे पूर्वभागे विजय-मेरु सम्बन्धी पूजा तथा मेरुके षोडश चैत्यालय पूजा।

स्थापना।

मत्तगयंद छन्द।

धातकी खण्ड द्विभाग सु द्वीप सु पूरब भाग विषैं अति सोहै। मेरु विजैं तिसके वन चारि विषैं जिनगेह सदा मनमोहै। तामधि. बिंब लसैं अति सुन्दर तै जिन आय बिराजै हु अत्र, द्रव्य सु आठ सवारि धरैं करहु तुम पूजन भार हि तत्र॥

ॐ ह्रीं धातकीखंडस्य पूर्व भागे विजयमेरु वन स्थित षोडश जिनगृह जिनसमूहाय अत्रावतर०, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः अत्र मम सन्निहितो सन्निधीकरणं।

अथाष्टकं-संस्कृतम्।

इन्द्रवज्रा छन्द।

गंगादिनीरैः शुभ गन्ध सारैः, भृंगार संस्थै भव नाशनैश्च। मेरु द्विभागस्थ जिनालयांश्च, यजे मुदा षोडश संख्यकांश्च॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु स्थित जिनगृह जिनसमूहाय जलं। १॥

काश्मीर श्यामा गुरु चन्दनैश्च, कर्पूरमिश्रैर्भव-तापनाशैः ॥ मेरु द्वितीय० ॥ यजे० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु स्थित जिनगृह जिनसमुदाय चन्दनं ॥२॥

शालेय मुख्यैर्वर गन्ध गन्धैः, क्षिपेऽक्षित्त स्थानक कारकैश्च। मेरु द्वितीं०, यजे० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरुस्थित जिनगृह जिनसमुदाय अक्षतं ॥ ३ ॥

जातिपयोज प्रमुखैः प्रसूनैः, काम प्रनाशैः शुभ गन्ध युक्तैः। मेरु द्वितीं०, यजे० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु स्थित जिनगृह जिनसमुदाय पुष्पम् ॥ ४ ॥

नाना रसैर्मिष्ठ सुगन्ध पुष्टैः, कृत्वा निवेद्य शुभ भाजनस्थं। मेरु द्वितीं०, यजे० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु वनस्थित जिनगृह जिनसमुदाय नैवेद्यम् ॥५॥

कर्पूर जातैर्घृत सम्भवैश्च, दीपैर्महो द्योतन कारकैश्च। मेरु द्वितीं०, यजे० ।

ॐ ह्रीं विजयमेरु वनस्थित जिनसमुदाय दीपम् ॥ ६ ॥

धूपैः सुगन्धिकृत दिग्मुखैश्च, श्रीखण्ड कृष्णागुरु सम्भवैश्च। मेरु द्वितीं०, यजे० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु वनस्थित जिनसमुदाय धूपम् ॥ ७ ॥

नारिंग पूगैरमलैर्मनोज्ञैः, सुगन्ध युक्तैः सुखकारकैश्च। मेरु द्वितीं०, यजे० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु वनस्थित जिनसमुदाय फलम् ॥ ८ ॥

नील: फलौघै: शुभसार युक्तै:, कृत्वार्घ सारं शुभ भाजनस्थं। मेरु द्वितीय०, यजे० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु वनस्थित जिनसमुदाय अर्घम् ॥ १ ॥

अथ प्रत्येक अर्घं।

छंद।

वन भद्रशाल मधि जानौं, पूरब दिशि ताहि बखानौं।
जिनमन्दिर तह अति सोहै, ले अर्घ जिजौं सुख होहै ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु भद्रशाल वन पूर्वदिशि स्थित जिनगृहाय अर्घम् ॥ १ ॥

दिशि दक्षिणमाहि इमोही, जिनमन्दिर तामधि होही।
ताकौं निति पूजौं सार, करि अघ करं सुखकारं ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु भद्रशाल वन दक्षिणदिशि स्थित जिनगृहाय अर्घं ॥ २ ॥

मेरु विजयोवन आदी, ताकी पश्चिम दिश साधी।
जिनमन्दिर उन्नत सोहै, ले अर्घ जिजौं सुख होहै ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु भद्रशाल वन पश्चिमदिशि स्थित जिनगृहाय अर्घं ॥ ३ ॥

उन्नत पीण शनं राजै, आयाम इतो अघ भाजै।
उत्तर दिशि मन्दिर राजै, पूजत ही सब अघ भाजै ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु भद्रशाल वन उत्तरदिशि स्थित जिनगृहाय अर्घं ॥ ४ ॥

नन्दन वन पूरब सोहै, जिनमन्दिर सुर नर मोहै।

ताकौं निति पूजौं सारं, करि अर्घ महा सुखकार ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु नन्दनवन पूर्वदिशि स्थित जिनगृहाय अर्घं ॥ ५ ॥

दूजो गिरि वनतह दूजो, दक्षिणदिशि जिनगृह पूजौं।
करि अर्घ मनो सुखकारं, नाचो गावो स्वर धारं ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु द्वितीय नन्दनवन दक्षिणदिशि स्थित जिनगृहाय अर्घं ॥ ६ ॥

पश्चिम दिशि नन्दनवन केरि, जिनमन्दिर राजत नेरी।
पूजौं निति जिनवर सारं, भव भव माही सुखकारं ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु नन्दनवन पश्चिमदिशि स्थित जिनगृहाय अर्घं ॥ ७ ॥

वन नन्दन उत्तर जानौं, जिनमन्दिर सब सुख खानौं।
ले अर्घ जिजौं जिन नाथ, गहिये भव डूबत हाथं ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु नन्दनवन उत्तरदिशि स्थित जिनगृहाय अर्घं ॥ ८ ॥

दूजो गिरि विजय विराजैं, तीजो वन सोमन साजै।
तह पूर्व दिशा जिन गेहं, जिन पूजौं मन धरि नेहं ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु तृतीय सोमनस वन पूर्वदिशि स्थित जिनगृहाय अर्घं ॥ ९ ॥

तीजो वन हैं सोमनसं, ताकी दक्षिण दिश मनसं।
जिनमन्दिर दशमौं राजैं, पूजतैं भव भव भाजै ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु तृतीय सोमनवन दक्षिणदिशि स्थित जिनगृहाय अर्घं ॥ १० ॥

पश्चिम दिशिमैं जिन गेहं, सुर पूजत हैं धरि नेहं।
हम जावन शक्ति नहीं हैं, यहां अघ जजौं यो सही है ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु तृतीय सोमनस वन पश्चिमदिशि स्थित जिनगृहाय अर्घं ॥ ११ ॥

धातकी पूरबगिरि दूजो, ताको वन तीजो हूजो।
ताकी उत्तर जिन सद्मं, पूजौं जिनवर पद पद्मं ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु तृतीय सोमनवन उत्तरदिशि स्थित जिनगृहाय अर्घं ॥ १२ ॥

पांडुक वन चौथो राजै, ताकी दिशि पूरब साजैं।
तामधि जिनमन्दिर रूपं, तिन पूजौं तिहु जग भूपं ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पांडुक वन पूर्वदिशि स्थित जिनगृहाय अर्घम् । १३ ॥

दूजो गिरि धातकीखण्डे, तिन पूर्व भाग सुख मण्डे।
पांडुक वन दक्षिण धारं, जिनमन्दिर पूजौं सार ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पांडुकवन दक्षिणदिशि स्थित जिनगृहाय अर्घम् ॥ १४ ॥

पश्चिम चोथा वनकेरी, पांडुक नाम सुख हेरी।
जिनगेह जिजौं धरि नेहा, जिनराज हमैं सुधि लेहा ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु चतुर्थ वन पांडुक पश्चिमदिशि स्थित जिनगृहायार्घम् ॥ १५ ॥

उत्तर दिशिमैं जिनगेह, राजत पूजौं धरि नेहं।
त्रिभुवनपति तिहुजगस्वामी, तुम पाद सराज नमामी॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पांडुक वन उत्तरदिशिस्थित जिन-गृहार्घम्। १६॥

चउ वन चउदिशि जिनगेहा, षोडशनिति हैं सुख देहा। तिनमैं सत आठ जिनरूपं, षोडश गृह जजिहू अनूपं॥

ॐ ह्रीं धातकीखण्ड पूर्वभागे विजयमेरु चतुर्वनस्थित षोडश जिनगृहेभ्यः पूर्णार्घम्॥ १७॥

जिनमूरति इन सब माहिं, सत्तरासै नित्य रहा ही।
अष्टाविंशति अधिकाई, निति पूजौं अर्घ चढ़ाई॥

ॐ ह्रीं धातकीखण्डद्वीपे पूर्वभागे विजयमेरु चतुर्थवन-स्थित सतरासै अठाईस सर्वजिनबिम्बेभ्यः पूर्णार्घम्॥ १८॥

अथ जयमाला।

दोहा।

विजयमेरु वन च्यारिमधि, षोडश गेह विशाल।
जिनवरके निति ही लसैं, तिनकी अब जयमाल॥१॥

पद्धड़ी-छन्द।

जय विजयमेरु जिनराज गेह, वन च्यारि माहि षोड़श सनेह। जय नित्य अकृत्रिम तहां थान, तुम नित्य विराजत हो महान॥ २॥ जय भद्रशाल वन च्यारि गेह, वन नन्दनमैं जय च्यारि सेह। सोमनस

माहि निति चयारि होइं, पांडुक वन चयारि लसें अछोह ॥ ३ ॥ ऐसें षोडश जिनगेह सार, तीनमैं जय ऊनशत आठ धार। धनु पंच शतक उन्नत विशाल, जय रत्नमई तुम बिंब माल ॥४॥ जय खण्ड धातकी पूर्व भाग, तह मेरु विजयगिरि होत पाग। उन्नत जोजन चोरासी सहस, इकसहं सहु जोजन कन्द अरं ॥ ५ ॥

इक मूल वज्र मणिमध्य होय, ऊपरि कंचनमय नित्य जोय। यह नित्य अचल अविनाश रूप, जिन जन्म महोत्सव करि अनूप ॥ ६॥ जिन जन्म समयमैं चतुर काय, सुर नाचत गावत गान भाय। जिन ऊपरि कलश सु सहंस आठ, सुरपति ढारत कर कर कराठ ॥ ७ ॥ धुनि होत घघघघघघघघाट, जलढरत-भभभभभभभभाट। कननननननननननूपुरझकार, घनघनघनघनघनघंटकार ॥८॥ सटसटसटअटकटपटन-टंन,रमरमरमरमरमरमहाखतंत्र। छमछमछमछमचन्द्रघट, द्रुमदुमदंमिरदंगनंट ॥ ९ ॥ कटकटकटटरटरटरटअटन, ऊटऊटऊटहटनटसटपटंन, सननननननननसंमर मान, ननननननननतानगान ॥ १० ॥

द्रुमद्रुमद्रुमद्रुमद्रुम होत ध्यान, थेइथेइथेइथेइथेइ मुखरटान। इत्यादिमेरु बिजयोपरान, जिन जन्म कल्याणकमाहि गान ॥ ११ ॥ सुर चतुरणीकायक आय

सन्त, जिनदेव तुमैं अभिषेक करन्त। तुम दया धुरन्धर जगत धार, तुम ही भवसागर सेतु धार॥ १२॥ तुमकौं मैं हिरदामे विचारि, अब वन्दत हौं मम दुख निवारि। मम कर्मसु पर्वत चूरचूर, मनवांछितकारिज पूरपूर॥ १३॥ मति हिल करो जिन नाथ अबै, बुध चन्द्र शुद्धि लेहु सबै। करि अरिसु अन्त दीजे शिवं, हम वार वार चरणौं नमंत॥ १४॥

घत्ता छन्द।

इति धातकीखण्डं पूरबखन्दं,
विजयमेरु जिनगेह नमौं।
निति अर्घ चढाऊँ पूज रचाऊँ,
भक्ति बढाऊँ दुःख गमौं॥

ॐ ह्रीं धातकीखण्डे पूरबभागे विजयमेरुस्थित षोडश जिनालयेभ्यो महार्घं॥ १५॥

भुजंगप्रयात छन्द।

पढ़ै नित्य पाठ जपैं नित्य नाम, द्वितीयस्थ मेरु-जिनानां सदा जो। लहै सौख्य संसारको साररूपं, सु जावै क्रमं मोक्ष पुह्रोन भूप॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री धातुकी खण्ड पूर्वभाग स्थित विजयमेरु जिनालय पूजा समाप्ता।

अथ विजयमेरु गजदन्त जिनगृहपूजा

मन्दावलिप्त कपोल छन्द ।

विजयमेरुके पास कौंण गजदन्त विराजैं, आदि कौंण ईशान अग्नि नैऋत पवनाजे । तिनपरि जिनगृह चार सदा मनमोहन पाजैं, तिनमैं जिन इत आय विराजहु पूजन काजे ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु गजदन्त स्थित जिनगृह अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननम् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधापनं ।

अथाष्टकम् ।

गीता छन्द

शुभ नीर सुर सरितादिको भरि, कनक झारी लाय हौं ।
भव मरण दुःख निवारण कारण, जिनचरण ढराय हौं ॥
गजदन्त विजय समीपकौं, नमैं चतुर्निति हो लसैं ।
तीनपैं चतुर्जिन गेह तिन, जिनचरण मम मनमैं बसैं ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु गजदन्त स्थित जिनसमुदाय जलं ॥ १ ॥

केशरि कपूर मिलाय सुन्दर, घसौं चन्दन बावना ।
भवताप सब दुःख थाप नाशन, जिनचरण पुजावना ॥
गजदन्त० । तिनपैं० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु गजदन्त स्थित जिनसमुदाय चन्दनं ॥ २ ॥

तंदुल अखंड अनूप उज्ज्वल, धोय जिन ढिग लाय हौं ।

पद अखय कारण पुञ्ज सुन्दर, पुण्य रूप कराय हौं ॥
गजदन्त० जिनपँ० ॥
ॐ ह्रीं विजयमेरु गजदन्तस्थित जिनसमुदाय अक्षतं ॥ ३ ॥
कमल केतकी जाइ मालती, मोंगरो शुभ लेयकै ।
मन मथ विदारण हेत पूजौं, जिन पदांबुज सेयकैं ॥
गजदन्त० । जिनपँ० ॥
ॐ ह्रीं विजयमेरु गजदन्त स्थित जिनसमुदाय पुष्पम् । ४ ॥
रस मेलि सुन्दर करि सु खाजा, और मोदक मोदनं ।
नैवेद्यतं जिन चरण पूजौं, क्षुधा रोग निमोदनं ॥
गजदन्त० । जिनपँ० ॥
ॐ ह्रीं विजयमेरु गजदन्त स्थित जिनसमुदाय नैवेद्यम् । ५ ॥
दीपक कपूरमई जगाऊँ, घृतमई बर्ति धरौं ।
जिन चरण परि उद्योत करि हौं, मोहतिमिर सबै हरौं ॥
गजदन्त० । जिनपँ० ॥
ॐ ह्रीं विजयमेरु गजदन्त स्थित जिनसमुदाय दीपम् । ६ ॥
श्रीखण्ड कृष्नागुरु मनोहर, अगर तगर मगायकै ।
ले चरण जिनके अग्र खेऊँ, अष्ट कर्म नशायकैं ॥
गजदन्त० । जिनपँ० ॥
ॐ ह्रीं विजयमेरु गजदन्त स्थित जिनसमुदाय धूपम् ॥ ७ ॥
नारिंग दाडिम आम पुङ्गी, फल मनोहर लायकैं ।
फल मोक्ष कारण जिन पदांबुज, पूजि हौं मन लायकैं ॥
गजदन्त० । जिनपँ० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु गजदन्त स्थित जिनसमूहाय फलं ॥ ८ ॥

जल गन्ध अक्षत पुष्प चरु अर, दीप धूप मगायकैं।
फल लेय अर्घ बनाय जिनपद, पूजि हौं सु मनायकैं ॥
गजदन्त० । तिनपैं० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु गजदन्त स्थित जिनसमूहाय अर्घं ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येक अर्घं।

पाईता छन्द।

शुभ विजयमेरु ईशानं, कोना पूरब नह जानं।
गजदन्त माल्यव नामं, जिनगेह तहां निति ध्यामं ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु ईशान कौंण स्थित माल्यवान गजदंत स्थित जिनसमूहाय अर्घम् ॥ १ ॥

अग्नि कोणं गजदन्तं, मह सोमनसं सुख सन्तं।
तिनपैं जिन मन्दिर सोहैं, जिनराज जिजौं सुख होहैं ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु अग्नि कौंण स्थित महासोमनस गजदन्त स्थित जिनसमूहाय अर्घं ॥ २ ॥

नैऋतमैं है गजदन्तं, विद्युत्प्रभ सब सुखवन्तं।
जिन धाम ताम परी सोहै, जिनदेव जिजौं सुख होहैं ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु नैऋत्यकौंण स्थित विद्युत्प्रभ गजदन्त स्थित जिनसमूहाय अर्घं ॥ ३ ॥

गजदन्त चतुर्थम राजैं, वायवमैं सब सुख साजैं।
गन्ध मादन नाम अनूपं, जिन गेह जिजौं जिन भूपं ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु वायवकौंण गजदन्द स्थित जिनसमुदाय अर्घं ॥ ४ ॥

गजदन्त च्यारि जिन गेहं, विजयमेरु प्रति नेहं।
तिन च्यारिनकौं करि अर्घ, जजिहौं पद होय अनर्घ ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु सम्बन्धी च्यारि गजदन्त स्थित च्यारि जिनगृह जिनसमुदाय पूर्णार्घं ॥ ५ ॥

सब गेहनमैं जिनदेवं, चउसैं बत्तीस अभेव।
तिनकौं मैं अर्घ चढ़ाऊँ, तातैं निज पदई पाऊँ ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु च्यारि गजदन्त स्थित च्यारिसैं बत्तीस सर्व जिनबिंबेभ्यः महार्घं ॥ ६ ॥

अथ जयमाला ।

दोहा।

विजयमेरु चउकौंणमैं, चउ गजदन्त अनूप।
तिन परि जिनगृह जिननकी, जयमाला जपा भूप ॥१॥

त्रोटक छन्द।

जय मेरु द्वितीय सु हस्तिरदं, परिराजित नित्य जिनेन्द्रसदं। तुमकौं निति पूजत इन्द्रगणं, बहु आनन्दसौं थुति एम भणं ॥ २ ॥ जय कर्म घनाघन मारुतभं, जय मोह महातम सूर्य निभं। जय नाथ अनाथनाके पति हो, तुम ही सब जीवनके हित हो। ३॥ तुम ही भव संकट नाशक हो, तुम हो भविकौं सुख-दायक हौं। तुम ही सब विघ्न विनायक हो, तुम ही

शिवके सुखदायक हौं ॥ ४ ॥ तुम ही दुःख मेटन लायक हो, तुम ही शिव भेटन लायक हो। तुम ही हमरे सर नायक हो, तुम ही हमकों जु सहायक हो ॥ ५ ॥

तुम ही अरिकर्म पलायक हो, तुम ही मद मन्मथ घायक हो। तुमकों हम नित्य रटैं छिनसों, हमकों तुम थानक द्यो तिनसों ॥ ६ ॥ सुरराज हमैं जिनराज जपैं, निज दुःख विदारण काज धपैं। हम हौं तुमकों जिन ध्यावत हैं, हम कर्मरिपू दुख पावत हैं ॥ ७ ॥ दुःख मेटहु नाथ अनाथपनो, सुख देहु सबैं सुखदाय जनो। हम जाचत हैं मह चन्द्र सदा, जनराज जपैं दिन रैनी मुदा ॥ ८ ॥

रथोद्धता छन्द।

मेरुके विजय नाम धारिकै, च्यारि हैं सु गजदन्त सारके। तासपै जिनगृहं जपौं सदा, पूजतैं सु सब विघ्नकै विदा ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु गजदन्त स्थित जिनसमुदाय महार्घं।

सोरठा।

विजयमेरु गजदन्त, जिनगृहकों यह पूज है।
जो पूजे निति सन्त, भव सुख लहि शिवसुख लहै ॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री विजयमेरु गजदन्त जिनालय पूजा समाप्त।

अथ विजयमेरु जम्बूवृक्ष चैत्यालय पूजा

दोहा।

विजयमेरु ईसानमैं, जम्बूवृक्ष महान।
तामैं जिनगृह जिनवरा, आवो पूजुं मानि ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु जम्बूवृक्षस्थ जिनसमूह अत्रावत० अत्र-तिष्ठ० अत्रमम० ।

अथाष्टकं ।

सोरठा।

कंचनझारी आन, तामैं निर्मल नीर ले।
विजयमेरु ईशान, जम्बूतरु जिनवर जिजे ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु जम्बूवृक्षस्थ जिनसमूहाय जलं ॥ १ ॥

चन्दन कुकुंम लाय घसिकैं, पात्र सुधारिकैं।
॥ विजय० ॥ जम्बू० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु जम्बूवृक्षस्थ जिनसमूहाय चन्दनं ॥ २ ॥

तन्दुल उज्वल आन, खण्ड विवर्जित गन्ध जुत।
॥ विजय० ॥ जम्बू० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूवृक्षस्थ जिनगृहाय अक्षतं ॥ ३ ॥

कमल केतकी जान, अर गुलाबके पुष्प ले।
॥ विजय० ॥ जम्बू० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूवृक्षस्थ जिनसमूहाय पुष्पं ॥ ४ ॥

नाना रस पकवान, खाजा मोदक आनिकै।
॥ विजय० ॥ जम्बू० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूवृक्षस्थ जिनसमूहाय नैवेद्यम् ॥ ५ ॥

दीपक जोति जगाय, घृतमय दीपक जोयकैं।
॥ विजय० ॥ जम्बू० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूवृक्षस्थ जिनसमूहाय दीपम् ॥ ६ ॥

श्रीखण्डादिक आन, अगर जिनाग्र सु खेयकैं।
॥ विजय० ॥ जम्बू० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूवृक्षस्थ जिनसमूहाय धूपम् ॥ ७ ॥

दाडिम आम सु जानि, ल्याऊँ कंचन पात्रमैं।
॥ विजय० ॥ जम्बू० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूवृक्षस्थ जिनसमूहाय फलम् ॥ ८ ॥

जल फल अर्घ बनाय, श्री जिन अग्र चढ़ाय हौं।
॥ विजय० ॥ जम्बू० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूवृक्षस्थ जिनसमूहाय अर्घं ॥ ९ ॥

मालनी छन्द।

विजय द्वितीय मेरो, कौंण ईशान माहि। तरु शुभ अति जम्बू, नाम राजै समाही॥ नदी शुभ जल सीता पूर्व उत्तर कुरुमैं। जिनगृह जिन तामैं, तास पूजा करूं मैं॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु जम्बूवृक्षस्थ जिनगृहाय पूर्णार्घं ॥ १ ॥

दोहा।

सब प्रतिमा शत आठ, परिराजत है दिन रैनि।
जम्बू वृक्ष विषैं सदा, पूजुं सब सुख दैन॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु जम्बूवृक्षस्थ सर्वजिनबिंबेभ्यः पूर्णार्घं।

अथ जयमाला।

सोरठा।

विजयमेरु ईशान, जम्बूवृक्ष सदा रहैं।
तामैं जिनगृह जानि, ध्यावौं जिन जयमाल जपि ॥१॥

पद्धड़ी-छन्द।

जय विजय मेरु तरु जम्बू मध्य, जिनराज तुमैं पूजौं समृद्ध। जय जय सीता तट पूर्व माहि, तुम राजत हो निति ही जिनाहि ॥ २॥ जय उत्तर कुरु सुखकर लसन्त, तामैं तरु जम्बू तुमैं बसन्त। तरु जम्बू उत्तर साख माहि, जय तामैं तुम गृह अति सुखाहि ॥ ३ ॥ जय तुम गृह तामैं है उतंग, यातैं अध व्यास सदा लसन्त। जय तुम तामैं निनिहि बसन्त ॥ ४ ॥ तुम करुणासागर जानि नाथ, शरण आयो मुझि गहो हाथ। तुम बिन नहीं दया निधान और, तातैं विनवौं कर जोर जोर ॥ ५ ॥

अरजी हमरी उर धारी धारी, भवसागरतैं करि पार पार। सुख देहु जग त्रय सार सार। मती ढील करो जिनवर लगार ॥ ६ ॥ तह पौंणकोश इक कोस लम्ब, यह कर्म अरी मुझो मारिमारी मनवांछित कारिज सारिसारि, यह विघ्न मूल तरु जारिजारि, बुध महाचन्द्र भव तारितारि ॥ ७ ॥

घत्ता छन्द।

यह जिन जयमाला जम्बूसाला, परम विशाला गिनि गाऊं। मम विघ्न मिटाउ जिन पद ध्याऊं, तातैं निज पद लहु पाऊं॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु जम्बूवृक्षस्थ जिनसमूहाय महार्घं।

दोहा।

विजयमेरु तरु जम्बु जिन, ताकी यह जयमाल।
जो नर बांचैं भावतैं, पावैं सब सुख हाल॥

इत्याशीर्वादः।

इति श्री विजयमेरु जम्बूवृक्षस्थ जिनगृहपूजा समाप्ता।

अथ शाल्मली वृक्षस्थ जिनगृह पूजा।

चौपाई।

विजयमेरु नैऋत्य विदिशान, सीतोदा पश्चिमतट जानि।
शाल्मली वृक्ष तहां जिनगेह, जिन आवौं पूजौं धरिनेह॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु शाल्मलि वृक्षस्थ जिनसमूहाय अत्रावतरा०, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो सन्निधीकरणं।

अथाष्टकम्।

दोहा।

सुर सरितादिक नीर ले, भरी झारी निरधारि।
तरु शाल्मलि जिनधाम, जिन पूजौं सुख दातार॥

ॐ ह्रीं शाल्मली वृक्षस्थ जिनसमूहाय जलं॥ १॥

केशरि चन्दन बावना,
ले घसि गन्ध अपार। तरु० ॥ पूजौं० ॥
ॐ ह्रीं शाल्मली वृक्षस्थ जिनसमुदाय चन्दनं ॥ २ ॥
तन्दुल उज्वल लायकैं,
पूज करौं चरणार। तरु० ॥ पूजौं० ॥
ॐ ह्रीं शाल्मली वृक्षस्थ जिनसमुदाय अक्षतं ॥ ३ ॥
कमल केतकी केवडा,
पुष्प गुलाब सवारि। तरु० ॥ पूजौं० ॥
ॐ ह्रीं शाल्मली वृक्षस्थ जिनसमुदाय पुष्पं ॥ ४ ॥
खाजा फेणी सेव पुनि,
मोदक मोहन सार। तरु० ॥ पूजौं० ॥
ॐ ह्रीं शाल्मली वृक्षस्थ जिनसमुदाय नैवेद्यं ॥ ५ ॥
दीपक तम नाशक महा,
निज पर देखनहार। तरु० ॥ पूजौं० ॥
ॐ ह्रीं शाल्मली वृक्षस्थ जिनसमुदाय दीपं ॥ ६ ॥
कृष्नागुरु करि धूपवर,
सेऊँ जिन पद सार। तरु० ॥ पूजौं० ॥
ॐ ह्रीं शाल्मली वृक्षस्थ जिनसमुदाय धूपं ॥ ७ ॥
दाडिम दाख रु आम शुभ,
ले फल उत्तम धार। तरु० ॥ पूजौं० ॥
ॐ ह्रीं शाल्मली वृक्षस्थ जिनसमुदाय फलं ॥ ८ ॥

जल चन्दन कौं आदि ले,

फल ले अर्घ मझार । तरु० ॥ पूजौं० ॥

ॐ ह्रीं शाल्मली वृक्षस्थ जिनसमुदाय अर्घ ॥ ९ ॥

छन्द चौपाई ।

तरु शाल्मली विजयाचल केरो, ताकी दक्षिण साख सुहेरो । जिन मन्दिर सोहैं अधिकाई, अर्घ लेय पूजौं सिर नाई ॥

ॐ ह्रीं विजय मेरु शाल्मली वृक्षस्थ जिनगृहागार्घ ॥ १ ॥

जिन प्रतिमा इकसो अठ राजै, शाल्मली तरु मन्दिर माजैं । पूजौं मैं सब प्रतिमा आजं, वसु विधि द्रव्य अर्घ सु समाजँ ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु शाल्मली वृक्षस्थ एकसो आठ सर्व जिन बिंबेभ्यो पूर्णार्घम् ॥ २ ॥

अथ जयमाला ।

सोरठा ।

शाल्मली धातकी खण्ड, पूरव मेरु विजय तनौं ।
तामैं जिन गृह मेरु, पूजौं जपि जयमाल शुभ ॥ १ ॥

टप्पाकी चाल ।

हम तारो हो देवा, तरु शाल्मली विजय मेरुके । हम० ॥ धातकी खण्ड पूर्वमैं मेरु, सु विजय नाम कही एवा, ताकी नऋत कौंण माहि । तुम राजत हो सुर सेवा, सदा हम तारो हो देवा, तरु शाल्मली

विजय सुमेरुके। हम० ॥ ३ ॥ शाल्मली तरु दक्षिण शाखा, मैं पौणकोश ऊँचे था, कोश लम्ब अर अर्द्ध व्यास। तामैं राजैं जिन देवा, सदा हम० ॥ ४ ॥ बिंब धनुष सतपंच सु उन्नत, रत्नमई तहां लेवा। सत अष्टोत्तर संख्य लसै, जिन पूजत दुःख नशेवा ॥ सदा हम० ॥ ५ ॥ ऐसे देव जानि हम पूजैं, और हमैं नहीं देवा हम तुम सेवक। भव भवमैं रह यह बांछा पूरेवा सदा। हम० ॥ ६ ॥ कर्म रिपु हमकौं दुख देवैं, इनकौं दुरि करेवा। बुध महाचन्द्र चरणको चेरो, यो भव भव तुम सेवा, सदा हम० ॥ ७ ॥

घत्ता छन्द।

द्विनीये शुभ द्वीपे विजय समीपे, तरु शाल्मली जिन गेह लसै। ताके जिन ध्यावौं, निति गुण गाउं निज पद पाउं मन हुलसैं ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु शाल्मली वृक्षस्थ जिनसमूहाय महार्घम् ॥८॥

आर्या छन्द।

विजय शाल्मली वृक्ष, तामैं जिन गेह नित्य सुख दक्षं। जो पूजं करि हर्ष सो, पावै मोक्ष सुखपक्ष ॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री विजयमेरु शाल्मली वृक्षस्थ जिनगृह पूजा समाप्त ॥

अथ विजयमेरु पूर्वविदेह विभागे अष्ट वक्षारगिरि जिनगृह पूजा

शंकर छन्द।

शुभ विजयमेरु सुपूर्वमैं, सुविदेह क्षेत्र लसंत।
षोडश सुमंडय तिनैं विभाग, वक्षारगिरि अठ संत॥
तिनऐं जिनगृह आठविराजै, तिनामैं जिनदेवते आय-
तिष्ठो। अत्र मैं अब पूजाहौं करि सेव॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पूर्व विदेह विभाग स्थित वक्षारगिरि जिनसमूह अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधापनं।

अथाष्टकं-संस्कृतम्।

तोटक छन्द।

जलमध्य सुगंधित भाण्यवरं, जननादि निवारक मजधरं। विजयस्य सुपूर्व विदेह गतं, सुविभाग गिरिस्थ जिनं प्रयजे॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पूर्वविदेहस्थ वक्षारगिरि जिनसमूहाय जलं॥१॥

शुभ चन्दनभाण्ड सुगन्ध भरं, भवताप विनाशन सार तरं। विजयस्य० सुविभा०॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पूर्वविदेहस्थ वक्षारगिरि जिनसमूहाय चन्दनम्॥ २॥

शुभ तन्दुल संयम वाद्य वरं, क्षय हीनपद कारणे सु परं। विजयस्य०, सुवि भा० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु वक्षारगिरि जिनगृहायाक्षतम् ॥ ३ ॥

कमलादिक पुष्पमवाद्य घनं, मदनान्मथने शुभ सार तरं। विजयस्य०, सुवि भा० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पूर्वविदेहस्थ वक्षारगिरि जिनगृहाय पुष्पम् ॥४॥

घृत दुग्ध कृतं सु निवेद्य वरं, परमं परमाद्य मनोज्ञ तरं। विजयस्य०, सुवि भा० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पूर्वविदेहस्थ वक्षारगिरि जिनसमूहाय नैवेद्यम् ॥ ५ ॥

तम मोह समूह विनाश करं, शुभ दीप मवाद्य मनोज्ञ तरं। विजयस्य०, सुवि भा० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पूर्वविदेह वक्षारस्थ जिनसमूहाय दीपम् ॥६॥

शुभ धूप मवाद्य सु धूपनकं, विधि करि गणस्य सुगन्ध भरं। विजय सुवि भा० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पूर्वविदेह वक्षारगिरि जिनसमूहाय धूपम्।

फलआम्र सु दाडिम मुख्य फलं, शुभ माद्य सुगन्ध धरं परमं। विजय०, सुवि भा० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पूर्वविदेह वक्षारगिरि जिनसमूहाय फलम् ॥

जल मुख्य फलांत्यमवाद्य वरं, पद मोक्ष विधायिकमर्घधरं। विजयस्य०, सुवि भा० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पूर्वविदेह वक्षारस्थ जिनसमूहायार्घम् ॥९॥

अथ प्रत्येकार्घाणि ।

॥ संस्कृतं ॥

मौक्तिकदाम छन्द ।

सुमेरु सु पूर्वविदेह गतं च, सु नील विनिर्गत पर्वतकं च ।
सु भद्र वनस्य समीपवरं च, यजे जिन गेहवरं गिरिगं च ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरो पूर्वविदेह भद्रशालस्योपकण्ठे सीतोदातट स्थप्रथमवक्षारगिरिस्थ जिनगृहायार्घं ॥ १ ॥

पद्धड़ी छन्द भाषा ।

विजयाचल पूर्वविदेह माहिं, सीता उत्तर तटमैं रहा ही ।
वक्षार सु दूजो हेम रूप, तापरि जिनगेह जिजौं अनूप ॥

ॐ ह्रीं द्वितीय वक्षारस्थ जिनगृहाय अर्घं ॥ २ ॥

नीलाचलतैं निकस्यो पवित्र, सीता सरीता तट उतरंत ।
तीजो वक्षार लसैं अनूप, तापैं जजि हौं सु जिनेंद्रभूप ॥

ॐ ह्रीं तृतीय वक्षारस्थ जिनगृहाय अर्घं ॥ ३ ॥

च्यारिहि शत जोजन उद्ध रूप, नीलाचल पासि लसैं सु रूप । सीता नद्दी पासि सतं सु पंच, जोजन ऊँचो जिन गेह संच ॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ वक्षारस्थ जिनगृहाय अर्घं ॥ ४ ॥

पंचमगिरी सीता दक्षिणव बन, भद्रशालके निकट जान । निसधाचलसैं निकस्यो प्रमान, जिनगेह जिजौं तिसपैं प्रमान ॥

ॐ ह्रीं सीता दक्षिणतटस्थ पंचमवक्षारस्थ जिनगृहायार्घम् ॥५॥

षष्टमगिरि जिनगृह सार जानि, करि अर्घ मनोहर सुख निधान। सुर नर खग वन्दित जानि जानि, पूजौं मन वच तन मानि मानि ॥

ॐ ह्रीं षष्टम वक्षारगिरिस्थ जिनगृहायार्घ्यं ॥ ६ ॥

निसधाचलपैं शत चारि तुंग, सीतापैं पंच शतं उतंग। सीतापै जिनगृह नित्य होत, जिनराज जिजौं करि अर्घ सन्त ॥

ॐ ह्रीं सप्तम वक्षारगिरिस्थ जिनगृहायार्घं ॥ ७ ॥

अष्टमगिरि देवारण्य पास, निति राजत हेममई सुर वास। तापैं जिनगेह अनूप होय, करि अर्घ जिजौं जिन गेह सोय ॥

ॐ ह्रीं अष्टम वक्षारस्थ जिनगृहायार्घ्यं ॥ ८ ॥

मेरु विजयके शुभ पूर्व माहीं, वक्षार सु परबत अठारहा हीं। तिनपैं जिन गेह सु आठ होत, तिन सबकौं पूजौं करि उद्योत ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पूर्वविदेहस्थ अष्टवक्षारन सम्बन्धी अष्ट जिनगृहेभ्यः अर्घं ॥ ९ ॥

प्रतिमा अठसत चौसठो जानि, गिरि वक्षार तनी यौ मानि। तिनकौं पूजौं मन वच काय, ते जिनराज हरो दुःख लाइ ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पूर्वविदेह अष्टवक्षारस्थ आठसै चौसठी सर्व जिनबिंबेभ्यः पूर्णार्घ ॥ १० ॥

अथ जयमाला।

वेसरी छन्द।

मेरुके विजय नाम सु ताके, पूर्वमैं गिरिवक्षार सु जाके। तापैं जिनगृह अघ चाला, ते जिजौं सुपठिके जयमाला॥१॥

दोधक छन्द।

नाथ जिनेश नमौं तुम पाई, पर्वत आठ पूर्व विजयाई। नाम वक्षार कहैं जिन केरा, तापरि तुम राजत सुख डेरा॥ २॥ सीत नदी उत्तरे तट च्यारं, दक्षिणमैं चउ हैं सुखकारं। कंचन रूप सदा यह सोहै, देखत सुर नरकौं मन मोहैं। ३॥ गोल आकार सदा यह राजै, च्यारि शतक उन्नत लखि साजै। नील निषद्गाचलके पासैं, सीत नदी तट पंच शतासं॥४॥ पंच शतं उच्चता जह राजै, जैन सु गेह तहां छवि छाजै। जैन विंब शतं आठ सोहै, रत्नमई सबके मन मोहै॥ ५॥ पंच शत धनु उन्नत जानौं, विंब सबैं इस रूप बखानौं। विंबनकौं हम पूजत ध्यावैं, बारहि बार शिव निज नावै॥ ६॥ हे जिन देव हमैं नट देखो, कर्मनको हमको करि लेखा। दूषनकौं मिटवो जिन स्वामी, साचनकौ करिये शिवगामि॥ ७॥ हे जिन-देव नमौं तुमकौं मैं, नाथ तुमैं पद देहियसो। मैं पंडित माहसुचन्द्र हां ध्यावै, कर्मन छूटि शिवं थल चावै॥ ८॥

दोहा।

पूर्व विदेह विभाग मधि, अठ वक्षार जिनगेह।
त्रिजयमेरुके लखि सदा, पूजौं भवि धरि नेह॥ १॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पूर्व विदेह वक्षारस्थ जिनगृह समुदाय महार्घं॥

आर्या छन्द।

जो बांचै यह पाठ अठ वक्षारन जिनेन्द्र बहुवारं, सो पावै शिवं द्वारं नहि दुःख जामैं, अनन्त सुख धारं॥ १॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री विजयमेरु पूर्व विदेह अष्टवक्षारगिरि जिनगृह पूजा समाप्ता॥

अथ विजय मेरु पूर्व विदेह विजयार्द्ध षोडश जिनगृह पूजा

अडिल्ल छन्द।

विजयमेरुके पूर्व विदेहम जानिकै,
षोडश है विजयार्द्ध सु मनमैं मानिकै।
तिनपै जिनगृह षोडश जिन शत अठ सही,
ते जिन आय विराजो थापत हो नहीं॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पूर्वविदेह विजयार्द्ध स्थित षोडश जिनगृह जिनसमूह अत्रावतरा०, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो सन्निधीकरणं।

अथाष्टकं।

चाल—शांति करो जग शांतिजिका मैं।

सुरसरिता शुभ नीर ले, कंचन पात्र भराय।
धार तीन तुम चरण द्यौं, जन्म मरण सु हराय॥
विजयारध जिन दुख हरो०॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पूर्व विदेह विजयार्द्धस्थ जिनगृहेभ्यो जलं॥१॥

चन्दन कुम्कुम मेलिकै, घसि शुभ पात्र समाय।
चरण कमल तुम पूजि हौं, भव तप वेगा मिटाय॥
॥ विजयारध०॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पूर्व विदेह विजयार्द्धस्थ जिनगृहेभ्यो चन्दनं॥२॥

तन्दुल उज्वल लेय कै, धोय नीर शुभ नानि।
पूंज धरौं तुम चरण पैं, अक्षय पद कर जानि॥
॥ विजयारध०॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पूर्व विदेह विजयार्द्धस्थ जिनगृहेभ्यो अक्षतं॥३॥

पद्म सुगन्ध सु पद्म ले, केतकी चम्प गुलाब।
ले तुम चरण चढ़ाय हौं, काम बाण हरि आप॥
॥ विजयारध०॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पूर्व विदेह विजयार्द्धस्थ जिनगृहेभ्यो पुष्पम्॥४॥

मोदक मोदन लायकैं, खाजा फीणि कराय।
तुम चरणन जिन अग्र है, हरिये क्षुधा दुखदाय॥
॥ विजयारध०॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पूर्व विदेह विजयार्द्धस्थ जिनगृहेभ्यो नैवेद्यम्॥५॥

दीपक जग दीपक लह्यो, बर्नि कपूर जगाय।
तुम चरणन उद्योत हौं, तिमिर मोह मिट जाय ॥
॥ विजयारध० ॥
ॐ ह्रीं विजयमेरु पूर्व विदेह विजयार्द्धस्थ जिनगृहेभ्यो दीपम् ॥६॥
श्री खण्डादिक द्रव्य ले, होत सुगन्ध महान।
खेऊँ तुम पद अग्र मैं, अष्ट कर्म हर मानि ॥
॥ विजयारध० ॥
ॐ ह्रीं विजयमेरु पूर्व विदेह विजयार्द्धस्थ जिनगृहेभ्यो धूपम् ॥७॥
आम्र सु दाडिम आदि दे, ले फल उत्तम सार।
चरण चढ़ावत हौं तुमे, द्यो शिव फल सुखकार ॥
॥ विजयारध० ॥
ॐ ह्रीं विजयमेरु पूर्व विदेह विजयार्द्धस्थ जिनगृहेभ्यो फलं ॥८॥
जल फल आठ मिलायकैं, अर्घ करौं सुखदाय।
तुम पद पूजौं भावलैं, अनघ पद सुख पाय ॥
॥ विजयारध० ॥
ॐ ह्रीं विजयमेरु पूर्व विदेह विजयार्द्धस्थ जिनगृहेभ्यो अर्घ ॥९॥

अथ प्रत्येक अर्घ।

चाल—निरख छवि नाथकी मैं

अरज सुनिनाथ हम, जय विजयारध जिनराय० ॥अर०॥
कक्षा देश सुहावनौं, सीता उत्तर माही।
विजयारध जिनगेह जिनजी, पूजौं तुम द्रुय पाय ॥
अरज सुनिनाथ हम, जय विजयारध जिनराय। अरु०॥

ॐ ह्रीं कक्षादेश विजयार्द्ध स्थित जिनगृहायार्घं ॥ १ ॥

देश सु कक्षा जानिकै,

साधधि विजय समाय । विजया० ॥अर०॥

ॐ ह्रीं सु कक्षादेश विजयार्द्ध स्थित जिनगृहाय अर्घं ॥ २ ॥

महाकक्ष शुभ देश है,

षट्खण्डनको राय । विजया० ॥ अर० ॥

ॐ ह्रीं महाकक्षादेश विजयार्द्धस्थित जिनगृहायार्घम् ॥ ३ ॥

कक्षकावती देश हैं,

सीता उत्तर थाय । विजया० ॥ अर० ॥

ॐ ह्रीं कक्षावतीदेश विजयार्द्धस्थित जिनगृहायार्घम् ॥ ४ ॥

आवर्ता शुभ देशमैं,

सहस नदी द्वय राय । विजयार० ॥अर०॥

ॐ ह्रीं आवर्तादेश विजयार्द्धस्थित जिनगृहाय अर्घं ॥ ५ ॥

देश जांगलावर्त हैं,

सुन्दर सब सुखदाय । विजया० ॥अर०॥

ॐ ह्रीं जांगलावर्त्तदेश विजयार्द्धस्थित जिनगृहायार्घम् ।६॥

देश पुष्कला नाम है, सब जीवन हितदाय ।

विजयार्द्ध जिनभवनकौं, जो पूजूं मन वच काय ॥अर्जं०॥

ॐ ह्रीं पुष्कलादेशस्थित विजयार्द्ध जिनगृहाय अर्घं ॥ ७ ॥

पुष्कलावती देश है,

देवारण्य बनाय । विजयार० ॥ अर० ॥

ॐ ह्रीं पुष्कलावतीदेश विजयार्द्धस्थित जिनगृहाय अर्घं ॥८॥

भद्रशाल वन पासि है,

वक्षा देश मनाय। विजयार० ॥ अर० ॥

ॐ ह्रीं वक्षादेश विजयार्द्धस्थित जिनगृहाय अर्घं ॥ ९ ॥

सीता दक्षिण तट विषैं,

देश सु वक्षा थाय। विजया० ॥ अर० ॥

ॐ ह्रीं सुवक्षादेश विजयार्द्ध जिनगृहायार्घं ॥ १० ॥

देश महावक्षा लसै,

तामधि सुन्दर थाय। विजया० ॥अर०॥

ॐ ह्रीं महावक्षा विजयार्ध जिनगृहायार्घम ॥ ११ ॥

वक्षकावती देशमैं,

राजत अध सुखदाय। विजया० ॥अर०॥

ॐ ह्रीं वक्षकावती विजयार्ध जिनगृहायार्घं ॥ १२ ॥

रम्या देश सुहावनौं,

षट्खण्डन सुखदाय। विजया० ॥अर०॥

ॐ ह्रीं रम्यादेश विजयार्ध जिनगृहायार्घम ॥ १३ ॥

देश सु रम्या जानिकै,

तामधि अघ सुखदाय। विजया० ॥अर०॥

ॐ ह्रीं सुरम्यादेश विजयारध जिनगृहायार्घम्। १४ ॥

रमणीया शुभ देश है,

काल चतुर्थ सदाय। विजया० ॥ अर० ॥

ॐ ह्रीं रमणीयदेश विजयार्ध जिन० अर्घम ॥ १५ ॥

मङ्गलावती देश है,

नामधि मन हरखाय। विजया० ॥अर०॥

ॐ ह्रीं मङ्गलावतीदेश विजयारध जिन० अर्घम् ॥ १६ ॥

विजया मेरु पूर्व विषैं,

षोडश संख्य मनाय। विजया० ।अर०॥

ॐ ह्रीं षोडशपूर्व विजयारध जिनगृहसमूहाय पूर्णार्घं ॥१७॥

विम्ब जु सतरा शत लसैं,

अधिक अठाई साय। विजया० ॥अर०॥

ॐ ह्रीं सतरासैं अठाईसा सर्वजिनविंबेभ्यः पूर्णार्घं ॥ १८ ॥

अथ जयमाला।

दोहा।

पूर्व विदेह विषै सदा, षोडश विजय लसन्त।
विजयारध षोडश महाँ, जिनगृह षोडश सन्त ॥ १ ॥

चाल त्रिभुवन गुरुस्वामकी।

जय विजय मेरु जिनजी, विजयारधपै गनजी।
नहि आदि नहि अन्तजी, अरज सुन लीजियेजी ॥२॥
तुम हो शिव नायकजी, तुम सब सुखदायकजी।
तुम हो सब लायक, मानैं सब देखियेजी ॥ ३ ॥
तुमको निति पूजैंजी, खग आपन दूजैजी।
करि रूप सुखहू हूजै, ध्यावैं भावनैंजी ॥ ४ ॥
वसु द्रव्य सुल्यावैंजी, कनक थाल मगावैंजी।
तुम गेह मधि जावैं, पूजै भावतैंजी ॥ ५ ॥

फुनि तुम गृहमाहींजी, शुभ नृत्य कराहींजी ।
स्वर तान समाही, सब सुखदाय है जी ॥ ६ ॥
तन नन नन तानंजी, घन नन नन ध्यानजी ।
सम मम सम साऊ, नाचत भावनैंजी ॥ ७ ॥
दम दम दम मुरजञ्जी, झन नन नन सुरञ्जजी ।
थेई थेई थेई करजं, करण सुहावनौंजी ॥ ८ ॥
इन आदि अपारंजी, विद्याधर कारञ्जी ।
नहि पाव कछु पारं, तुमरे गुण तणौंजी ॥ ९ ॥
अब अरज हमारीजी, सुनिये भवतारीजी ।
महाचन्द्र सुखकारी, भव भव तुम मिलौजी ॥ १० ॥

घत्ता छन्द ।

इति विजय सुमेरु पूरव हेरं, षोडश रूपगिरि राजैं ।
तिनपैं जिनगेह षोडश लेहा पूजौं निनि निजहित काजैं॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पूर्व विजयार्द्ध षोडश जिनगृह जिन-समुदाय महार्घम् ॥

सोरठा ।

विजयमेरु विजयार्द्ध, जिनगृह पूजै भावतैं ।
सो पावैं सुसमृद्ध, अनुक्रमतैं शिव तिय लहै ॥

इत्याशीर्वादः ।

इतिश्री विजयमेरु पूर्वविदेह विजयार्द्ध जिनगृह पूजा समाप्ता ।

अथ विजयमेरु पश्चिमविदेह विभाग स्थित वक्षारगिरि पूजा।

दोहा।

विजयमेरु पश्चिम दिशा, गिरि वक्षार सु अष्ट।
तिनिपै जिनगृह अष्ट जिन, थापो तिष्ठ हि तिष्ठ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पश्चिमविदेह विभाग स्थित वक्षारगिरि स्थित जिनगृह जिनसमूह अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधापनं।

अथाष्टकम्।

त्रोटक छन्द।

भरी नीर मनोहर गंग तनौं, धरि कञ्चन पात्र मनोग्य घनौं। विजयं प्रति पश्चिम भाग विषैं, जिन गेह वक्षार जिजौं हुलसैं॥

ॐ ह्रीं पश्चिम वक्षारगिरि जिनगृह जिनसमूहाय जलं॥१॥

घसि बावन चन्दन कुंकुमकं, भव ताप प्रताप विनाशनकं विजयं प्रति पश्चिम भाग विषैं, जिनगेह वक्षार जिजौं हुलसैं॥

ॐ ह्रीं पश्चिम वक्षारगिरि जिनगृह जिनसमूहाय चन्दनं॥२॥

सित शालि अखण्ड सुमण्डनकं, करि पुंज सु पाप विहंडनकं। विजयं० ॥

ॐ ह्रीं पश्चिम वक्षारगिरि जिनगृह जिनसमूहाय अक्षतं ॥ ३ ॥

शुभ केतकी चम्पक पद्म मही, लही पुष्प मनोहर सुन्दर ही। विजयं० ॥

ॐ ह्रीं पश्चिम वक्षारगिरि जिनगृह जिनसमूहाय पुष्पं ॥ ४ ॥

रस नव्य मिलाय सुगन्ध ननौं, करि नेवज रोग क्षुधादि हनौं। विजयं० ॥

ॐ ह्रीं पश्चिम वक्षारगिरि जिनगृह जिनसमूहाय नैवेद्य ॥ ५ ॥

करी दीपक दीपन लोक यहैं, घृत रूप तथा कर्पूर चहै। विजयं० ॥

ॐ ह्रीं पश्चिम वक्षारगिरि जिनगृह जिनसमूहाय दीपं ॥ ६ ॥

करि धूप सुगन्धित द्रव्यनको, अहि सेय पदांबुज श्री जिनको। विजयं० ॥

ॐ ह्रीं पश्चिम वक्षारगिरि जिनगृह जिनसमूहाय धूप ॥ ७ ॥

फल आम्र सु दाड़िम शुद्ध घने, लहि नेत्र प्रसन्न करंत घने। विजयं० ॥

ॐ ह्रीं पश्चिम वक्षारगिरि जिनगृह जिनसमूहाय फलम् ॥ ८ ॥

जल चन्दन अक्षत पुष्प चरु, वर दीप सु धूप फलार्घ करुं। विजयं० ॥

ॐ ह्रीं पश्चिम वक्षारगिरि जिनगृह जिनसमूहाय अर्घं ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येक अर्घं।

चाल—लावनी।

जिजौं जिनराज चरण सरणं, विजयमेरु पश्चिम

वक्षार। परिशोभत भव हरणं, जिजौं० ॥ टेक ॥

सीतोदा नदी उत्तर तटमैं, गिरि वक्षार धरणं। तापरि जिनगृह गृहमधि निति प्रति, जिन शत अठ वरणं। जिजौं० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पश्चिम प्रथमवक्षार स्थित जिनगृहायार्घं ॥१॥

धातकीखण्ड भाग पूरवमहि, विजयमेरु करणं। ताकी पश्चिम दिश वक्षार, गिरि जिनगृह हरि मरणं। जिजौं० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पश्चिमदिश स्थित वक्षार जिन० अर्घं ॥२॥

जिनगृह सुन्दर विजयमेरु, पश्चिम दिश चित धरणं। तीजो गिरि वक्षार तास परि, हेर हेर वरणं। जिजौं० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पश्चिमविभाग वक्षार स्थित जिन० अर्घं ॥३॥

भूतारण्य अरण्य पास गिरि, चौथो वक्षरणं। तापरि जिनगृह सब मन मोहन, जिनवर भवतरणं॥ जिजौं० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पश्चिम वक्षार स्थित जिन० अर्घम् ॥४॥

सीतोदा नदी निषध कुलाचल, तैं निकसि परणं। ताके दक्षिण भागमांहि गिर, वक्षारन परणं ॥ जिजौं० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पश्चिम वक्षार स्थित जिन० अर्घम् ॥ ५ ॥

षष्टमगिरि वक्षार तासपरि, जिन गृह दुःख

हरणं तामैं शत अठ बिंब रत्न मय, देखत सुख
टरणं ॥ जिजौं० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पश्चिम वक्षार स्थित जिन० अर्घम् ॥ ६ ॥

कञ्चन मय सीतोदा निषध, कुलाचल अन्तरणं।
गिरिवक्षार सप्तमौं तापरि, जिनगृह सुख करणं ॥
॥ जिजौं० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पश्चिम वक्षार स्थित जिनगृहायार्घम ॥ ७ ॥

अष्टमगिरि वक्षार विजय, पश्चिम दिश महि
करणं। गिरि पैं जिनगृह जिनवर सुखका, सब जीवन
शरणं ॥ जिजौं० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पश्चिम वक्षार स्थित जिन० अर्घम् ॥ ८ ॥

धातकी खण्ड पूर्वमैं मेरु, विजय नामं अरणं,
ताकी पश्चिममैं वक्षार। अठ अघ जिनगृह गरणं ॥
॥ जिजौं० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पश्चिम वक्षार स्थित अष्ट जिनगृहेभ्यः
महार्घम् ॥ ९ ॥

जिन प्रतिमा शत आठ और, चौसठि ऊपरि
करण। तिन सबकौं करि अर्घ मनोहर, पूजौं सब
शरणं ॥ जिजौं० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पश्चिम वक्षार स्थित आठसै चौसठी
सर्व जिनबिंबेभ्यः पूर्णार्घं ॥

अथ जयमाला।

दोहा।

जय जिनवर त्रिभुवन धनी, धानकी खण्ड विशाल।
पूरव विजय सु पश्चिमे, गिरि वक्षार रसाल ॥१॥
तिन अष्टन परि अष्ट गृह, जिन तुमके सुखकार।
तिनमैं तुम निति एकमैं, एक शतक अठकार ॥२॥
आठ शतक चोसठि अधिक, सब प्रतिमा गिनिसार।
पंच शतक धनु तुङ्ग तनु, रत्नमई भवतार ॥३॥
ते सब जिन प्रतिमा अबै, जयवन्ते बरतान।
भव भव सुखकर दुखहरण, जय जय जय भगवान ॥४॥
जय त्रिभुवन पति बन्द्य पद, जय त्रिभुवनपति नाथ।
त्रिभुवन भ्रमण मिटाय अब, गहो हमारो हाथ ॥५॥
जगनायक जगदीश जिन, जगपति पूज्य महान।
त्रिभुवन जन्तु उधार जिन, हम दुख वेगहि हानि ॥६॥
बारबार वर बोधवर, बरबरि है यह देव।
भव भव तुम पद पद्मको, सेवक नाथ करेव ॥७॥
भव भव कुल श्रावक तनौं, भव भव जिनपद सेव।
भव भव शास्त्र अभ्यास हमैं, होऊ जगतपति देव ॥८॥
भव भव संगति आर्य, जिन भव भव चारित भार।
जब लौं शिवपद ना लहौं, तब लौं जोग निहार ॥९॥
यह विनती निति करत है, बुध महाचन्द्र विशाल।
सेवक अपनौं जानिकरि, दीजे शिवसुख हाल ॥१०॥

घत्ता छन्द।

इति धातकी खण्ड पूरब मण्डं, विजयमेरु पश्चिम धरणं। अठगिरि वक्षारं जिनगृह सारं, आठ जिजौं सब सुखकरणं ॥ महार्घ ॥ ११ ॥

सोरठा।

जिनगृह गिरि वक्षार, आठतनें शुभ आठ हैं।
तिनकौं जो नर सार, पूजैं शिवसुख थाट हैं ॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री विजयमेरु पश्चिम वक्षार जिनगृह पूजा समाप्त।

अथ विजयमेरु पश्चिम विजयार्द्ध जिनगृह पूजा।

वेसरि छन्द।

मेरुतैं सु द्विनिये नहि जानौं, पश्चिमे सु विजयारध मानौं, जिनगेह तिनपैं सुखदाई, ते जिना सु तिष्ठो इत आई।

ॐ ह्रीं विजयमेरु पश्चिमविदेह विजयार्द्धस्थित जिनगृह जिनसमूह अत्रावतरा० अत्रतिष्ठ० अत्रमम०।

अथाष्टकं।

दोधक छन्द।

ले शुभ नीर नदी सुर केरो, जन्मजरा हर कीजिये।

नेरो मेरु द्वितीय सु पश्चिम माहिं, षोडश सद्म जिजौं विजया ही ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पश्चिमविदेहस्थित षोडश विजयारंभ जिनगृह समूहाय जलं ॥ १ ॥

चन्दन कुंकुम मेलि घसावौं, ताप मिटे भवकी सुख पावौं। मेरुद्विती० ॥ षोडश० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पश्चिमविदेहस्थित षोडश विजयारंभ जिनगृह समूहाय चन्दनम् ॥ २ ॥

शालि अखण्ड सुमण्ड सुगन्धं, अक्षय थान सु कारण संधं ॥ मेरुद्विती० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पश्चिमविदेहस्थित षोडश विजयारंभ जिनगृह समूहाय अक्षतं ॥ ३ ॥

केतकी लेय गुलाब अनूपं, कामसरं नाशन शुभ रूप ॥ मेरुद्विती० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पश्चिमविदेहस्थित षोडश विजयारंभ जिन० समूहाय पुष्पं ॥ ४ ॥

नेवज लेय सु मोदक आदि, रोग हरै दुखदाय क्षुधादि। मेरुद्विती० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पश्चिमविदेहस्थित षोडश विजयारंभ जिन० समूहाय नैवेद्यम् ॥ ५ ॥

दीपक जोत अमन्द विराजै, मोहतमो न शकै सुख काजैं ॥ मेरुद्विती० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पश्चिमविदेहस्थित षोडश विजयारध जिन० समूहाय दीपम् ॥ ६ ॥

धूप सुगन्धित लेय मनोज्ञ, खेय पदांबुज अग्र सु जोग्य ॥ मेरुद्वितो० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पश्चिमविदेहस्थित षोडश विजयारध जिन० समूहाय धूपम् ॥ ७ ॥

दाडिम दाख सु धूँग फलादि, मोक्ष महाफल-कार अनादि ॥ मेरुद्वितो० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पश्चिमविदेहस्थित षोडश विजयारध जिन० समूहाय फलम् ॥ ८ ॥

लेय जलादि फलांत सु द्रव्यं, आठ प्रकार अनूपम सुजयं ॥ मेरुद्वितो० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पश्चिमविदेहस्थित षोडश विजयारध जिन० समूहाय अर्घं ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येकार्घं।

चौपाई।

धातकीखण्ड विजयगिरि राजे, ताके पश्चिम भाग विराजै। पद्मानाम रूपगिरि सोहै, तापरि जिनगृह जजि मन मोहै ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पश्चिमविदेह पद्मानाम तामैं प्रथम विज-यारधस्थित जिनगृहायार्घं ॥ १ ॥

देश सुपद्मा तामधि राजै, जिनगृह विजयारध

धरि साजे। मेरु विजय पश्चिम दिशि सांहै, क्षेत्रविदेह सब मन मोहै॥

ॐ ह्रीं सुपद्मादेश विजयारधस्थित जिनगृहायार्घम्॥ २॥

सीतोदा उत्तर तट माही, देश महापद्म लखि भाई। तामधि विजयारध गिरि जानौं, तापरि जिन-गृह पूजो मानौं॥

ॐ ह्रीं महापद्मा विजयारध स्थित जिनगृहायार्घं॥ ३॥

विजयमेरुतैं पश्चिम माहि, पद्मकावती देश तहाही। तामधि विजयारध जिन गेहा, जिन प्रतिमा पूजो धरि नेहा॥

ॐ ह्रीं पद्मकावती देश स्थित जिनगृहायार्घम्॥ ४॥

संचल देश विषै सुखकारी, रूपाचल रूपा मय धारि। तापरि जिनगृह सब मन मोहै, पूजत पाप सबैं क्षय होहैं॥

ॐ ह्रीं सचल देश विजयारधस्थित जिन० अर्घ॥ ५॥

देश सु नलिनि महा अनुपं, विजयारध जिन-गृह कूपं। पूजो भवि मन वचकरि शुद्धं, होय अनन्त महा सुख शुद्धं॥

ॐ ह्रीं नलिनिदेश स्थित विजयारध स्थित जिन०र्घम्॥ ६॥

विजय मेरुतैं पश्चिम माही, कुमुदा है शुभ देश तहा ही। तामधि विजयारध सुखकारी, तापरि जिनगृह जग आधारी॥

ॐ ह्रीं कुमुदा देश स्थित विजयारध जिन० अर्घम् ॥ ७ ॥

धातकी खण्ड सु पूर्व विभागे, विजयमेरु पश्चिम दिशि पागे। सीतोदा उत्तर तट माही, सरिता देश सु विजयगृह ही ॥

ॐ ह्रीं सरीता देश विजयार्द्धस्थित जिनगृहाय अर्घ ॥८॥

विजयमेरुतैं पश्चिम माहि, क्षेत्र विदेह देश वपपाही।
सीतोदा दक्षिण तट सोहै, रूप्पाचल जिनगृह पुज्योहैं॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पश्चिम विदेह शीतोदा दक्षिणतटस्थ वप्रादेश विजयार्द्ध जिनगृहायार्घं ॥ ९ ॥

सीतोदा दक्षिणतट माही, निषधाचल लगता सुखदाई।
देश सुवप्रा रूप्यगिरीशं, तापरि जिनगृह पूजौं ईशं ॥

ॐ ह्रीं सुवप्रादेश स्थित विजयार्द्ध जिनगृहायार्घम् ॥ १० ॥

देश महावप्रा सुखकारी, तामधि विजयारध लखि थारी। तापरि जिनगृह पूजौं सारं, ले वसु द्रव्य महा सुखकारं ॥

ॐ ह्रीं महावप्रादेश विजयार्द्ध स्थित जिनगृहायार्घम ॥११॥

वप्रकावती देश मझारं, विजयारध सोहै सुखकारं।
तापरिगेह जिनेन्द्र विराजैं, पूजेतैं भव भव दुःख भाजैं॥

ॐ ह्रीं वप्रकावतीदेश विजयारध जिनगृहायार्घ ॥ १२ ॥

गन्धा देश लखै मन मोहै, चोथो काल सदा जहं होहै।
तामधि रूप्याचल लखि लेवो, तापरि जिनगृह पूजो देवो ॥

ॐ ह्रीं गन्धादेश विजयारध स्थित जिनगृहायार्घम ॥१३॥

सीतोदा दक्षिण तट माहीं, देश सुगन्धामैं लखि भाई। विजयारध परि जिनगृह जानौं, पूजनतैं होवै अघ हानौं॥

ॐ ह्रीं सुगन्धादेश विजयारध जिन० अर्घम्॥ १४॥

देश गन्धिलामैं लखि लेवो, रूपमई रूपाचल सेवो। तापरि जिनगृहमधि जिनराई, जजिये शुद्ध करि मन वच काई॥

ॐ ह्रीं गन्धलादेश विजयारध जिनगृहायार्घम्। १५॥

विजयमेरुतैं पश्चिम माहीं, भूतारण्य समीप रहाहीं। गन्धमालिनी देश अनूप, विजयारध परि जजि जिन भूप॥

ॐ ह्रीं गन्धमालिनी देश विजयारधस्थ जिन० अर्घम्॥१६॥

विजयमेरु पश्चिम सु विदेहे, षोडश विजयारध लखि लेहै। षोडश जिनगृह पूजो सारं, पूरण अर्घ बनाय अपारं॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पश्चिमविदेह षोडश विजयारध जिन-गृहेभ्यः पूर्णार्घम्॥ १७॥

जिन प्रतिमा लखिये सुखकारि, सतरास अठ बीसधिकारी। तिन सबकों पूजो भविसारं, पूरण अर्घ बनाय सम्हारं॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु पश्चिम विदेह षोडश विजयारध स्थित सतरासै अठाईस सर्व जिनबिंबेभ्यः पूर्णार्घं॥

अथ जयमाला।

॥ संस्कृतं ॥

द्रुतविलंबित छंद।

जय जिनेश जगत्पति पूज्य है, विजयमेरु सु पश्चिमवेस्थ है। जय सु षोडश रूप्यगिरिस्थ है, जय सु षोडश जैन गृहस्थ है ॥ १ ॥ जय खगेश समूह सु सेव्य है, अचल पश्चिम देशग सेव्य है। जय सु दोष दशाष्टक हीनहै, जय दशातिशय गत जन्महै ॥ २ ॥ जय दशातिशयं गत केवले, जय चतुर्दश देवकृतावले। जय जय त्रिजगत्पति नाथ है, जय जय प्रतिबोधित साधहै ॥ ३ ॥

मौक्तिकदाम छन्द।

विमोह विरोग विजन्म विनाश, विदोष जय प्रतिबोधित धोस। जय प्रतिबोधित सद्बुध लोक, जय त्रिजगत्पति सेव्य विशोक ॥४॥ अनन्त सुखाधिप सार विमान, अनातन देव सुबोध निधान। सु शांत निरशक लंक विहीन, जय प्रतिरूप विलर्क विदीन ॥ ५ ॥ जय प्रतिबिंब विनिद्र वितंद्र, विकोपजयारि विमर्दनसांद्र। सु लोक विलोकन सार, विलद्ध विदूर भवोदधि पार ॥६॥ जवाद्य जयान विहीन विशोभ, सुरासुर खेचर पुज्य विलोभ। अनन्त सुखंकर लब्ध

भवांत, सर्वोदय लोक विबोधन शांत ॥७॥ शृणुस्वक भृत्यनतिं जिनदेव, कुरुस्व महेन्द्र मनन्त सु सेव। भवत्पद वार्द्धि विवर्द्धन मत्र, भवांवुधि तारकं शम्यहु यत्र ॥ ८ ॥

हरिणी छन्दः।

इति विजयमेरो, सन्तिप्रोद्भुन प्रतिबोधकाः। सकल सुखदे क्षेत्रे देहे, सदा स्थित पश्चिमे जिनगृह समूहाः॥ सत्संरुप्यकाद्रिषु षोडश, यजति नमति प्राज्ञोः य। सम्प्रगच्छति सत्पदम् ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरो पश्चिम विदेहे षोडश विजयार्द्धस्थ जिनगृहेभ्यो महार्घम् ॥

मालिनी छन्द।

विजयगिरि विदेहे पश्चिम मेरुप्यके सु, जिनवर गृह सार, सन्ति तेषां च पूजां। पठति जपति शुद्धां पाठयत्येव योसौ, भव सुख मनुभुक्त्वा, प्राप्यते मुक्तिसौख्यं ॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री विजयमेरु पश्चिम विदेहस्थित विजयार्द्ध जिनगृहपूजा समाप्त।

अथ विजयमेरु षटकुलाचल जिनगृह पूजा ।

चौपाई ।

धातकीखण्ड विजयगिरिराज,

षट्कुलाचल पर्वतको जु समाज ।

तिन परि षट जिन गेह जिनन्द,

आओ तिष्ठो अत्र अमन्द ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु षट्कुलाचलस्थ जिनसमूह अत्रावतरा० अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः । अत्र मम सन्निहितो सन्निधीकरणं ।

अथाष्टकम् ।

देश बिलोहाको नैकिया मैं ।

भजो भवि भाव लिया, विजयकुलाद्रि जिनया ।

भजो भवि० ॥ टेक ॥

सुर सरितादिक नीर लेयकैं, कनकपात्रमैं धार लिया ।

जन्ममरण दुख मेटन कारण, जिनपद अग्र दराय ॥

जनम दुख मेट दिया, विजयकुलाद्रि जिनया ।

भजो भवि भाव लिया ॥

ॐ ह्रीं षट्कुलाचलस्थ जिनगृह जिनसमूहाय जलं ॥ १ ॥

घसि घनसार सु शीतल भवतप, मेटनकाज समाज किया । जिनपद पूजते भाव भगतिनैं; भव तप दूरि नशाया ॥ सकल सुख होई भया, विजय० ॥

ॐ ह्रीं षट्कुलाचलस्थ जिनगृह जिनसमूहाय चन्दनं ॥ २ ॥

गन्ध सुगन्धे तन्दुल लेकैं, जिनपद आगैं पुञ्ज किया। पुण्य पुञ्ज सम दीसत नीका, अक्षय थान करया क्षय पद दूरि किया, विजय० ॥

ॐ ह्रीं षट्कुलाचलस्थ जिनगृह जिनसमूहाय अक्षतं ॥ ३ ॥

पङ्कज कुन्द गुलाब मुख्य बहु, पुष्प सुगन्धे गन्ध लया। काम बाण नाशक लखि जिनकौं, पूजो मन वच काय मदन मद मोह गया, विजय० ॥

ॐ ह्रीं षटकुलाचलस्थ जिनगृह जिनसमूहाय पुष्पं ॥ ४ ॥

नाना रस करि रुच्य सु खाजा, फीणि मोदक मोद नया वेदनी क्षुधा नसावन कारण, जिनपद अग्र चढ़ाया, अतुल सुख लालैं लया, विजय० ॥

ॐ ह्रीं षटकुलाचलस्थ जिनगृह जिनसमूहाय नैवेद्यं ॥ ५ ॥

दीपक जोति उद्योत होत सम, मोह नाश कर माहि थपा। जिनपद थोत नहीं सुख कारण, मोह तिमिर क्षय गया। मुक्ति सुख दान भया, विजय० ॥

ॐ ह्रीं षटकुलाचलस्थ जिनगृह जिनसमूहाय दीपं ॥ ६ ॥

अगर तगर श्रीखण्ड मनोहर, गन्ध सुगन्धित गंधि किया। जिनपद आगैं खेवत ही सब, कर्म कलङ्क दहया, सकल शिव सौख्य भया, विजय० ॥

ॐ ह्रीं षटकुलाचलस्थ जिनगृह जिनसमूहाय धूपं ॥ ७ ॥

आम नीबु कमरख शुचि लेकै, कनक पात्र महि

धार लिया। जिनपद पूजौं मोक्ष महा फल, कारण फल यह भया॥ सकल सुख पाय लया, विजया० ॥

ॐ ह्रीं षटकुलाचलस्थ जिनगृह जिनसमुदाय फलम्॥ ८॥

जल चन्दन अक्षत शुभ पुष्प सु, नेवज दीपक धूप दया। फल इनका करि अर्घ मनोहर, जिनपद अग्र चढ़ाय॥ अतुल पद पावैं थया, विजय० ॥

ॐ ह्रीं षटकुलाचलस्थ जिनगृह जिनसमुदाय अर्घं॥ ९॥

अथ प्रत्येकार्घं।

पाईता छन्द।

हिमवन गिरि दक्षिण जानौं, उन्नत शत योजन मानौं।
तापरि जिन गेह बिराजैं, जिनपद पूजौं सब सुख जाजैं॥

ॐ ह्रीं हिमवन कुलाचलस्थ जिनगृहायार्घं॥ १॥

दूजो महा हिम वन सोहैं, रूपा मय सब मन मोहै।
यापरि जिन सद्म अनूप, जिन पूजु तिहु जग भूपं॥

ॐ ह्रीं हिमवन कुलाचलस्थ जिन० अर्घं॥ २॥

निषधाचल मणि मय भासौं, तपनीय मई शुभ सासौं।
तापरि जिन गेह सुहाई, जिन सेवो त्रिभुवन राई॥

ॐ ह्रीं निषध कुलाचलस्थित जिनगृहायार्घम्॥ ३॥

विजयाद्रि सु उत्तर माही, नीलाचल होत तहाही।
जिनगेह मनोहर तापैं, जिन पूजौं त्रिभुवन जापैं॥

ॐ ह्रीं नीलकुलाचलस्थ जिनगृहायार्घम्॥ ४॥

रुक्मीगिरी रूप्यमई है द्वै शत जोजन ऊंचाई है।
जिनगेह तास परि जानौं, जिनपूजौं त्रिभुवन मानौं॥
ॐ ह्रीं रुक्मी कुलाचलस्थ जिनगृहाय अर्घं॥ ५॥
शिखरी शत योजन ऊँचो, सुवर्णमय शोभित सूचो।
जिन पद्म जजौं जिन देवा, जिनराज हमैं सुधि लेवा॥
ॐ ह्रीं शिखरी कुलाचलस्थ जिनगृहायार्घम्॥ ६॥
मेरु विजयारुप कहावै, कुल पर्वत षट तह पावै।
षट मन्दिर हैं जिनराई, ते पूजौं अर्घ बनाई॥
ॐ ह्रीं विजयमेरुके षटकुलाचलस्थ षट् जिनगृहेभ्यः पूर्णार्घं॥७॥
जिनबिम्ब सर्व लखि लजै, छसै अडतालं कहीजे।
हो तिनकौं पूजो मन भाई, यह पूरण अर्घ बनाई॥
ॐ ह्रीं षटकुलाचलस्थ छसै अडतालीस सर्वजिनबिम्बेभ्यः पूर्णार्घम्॥ ८॥

अथ जयमाला।

दोहा।

षटकुल पर्वत षट गृह, विजयमेरुके जानि अब।
तिनकी जयमाल हम, पढ़ै हर्ष अति आन॥१॥

चाल-मरहट लावणकी।

सुनौं जिनराज अरज मेरी,
विजयकुल पर्वतपै जेरी, सुनौं०। टेक॥
प्रथम हिमवन पर्वतराजैं, हेममय देखत दुख भाजं। मणिनकरि जटित पार्श्वपाज, सत हौ जोजन

उन्नत साजैं॥ तापरि तुम निति सोहते, गेह मनोहर मांही। जय जग जीवपाल करुणानिधि, जपौं तुमारे पाय, जगत जिय करुणाकी जेरा॥सुनौं० जिन०॥१॥

महा हिमवन पर्वत दूजो, दोयशत जोजन है ऊंचो। रूपमय राजत हैं, नोकोमणिन करि जडित पार्श्वनीको उपरि, तुम गृहराजहां तुम नित मन अरु, आव पञ्च सतक धनुतुङ्ग बिराजा। जय जिन त्रिभुवन ठाठ मिटावौ, हमैं जगतफेरी॥ सुनौं०॥ २॥

निषधकुल पर्वत तीजो हैं, तप्त सोनामय लाजो हैं। ऊँच शत च्यारि सु कीजो है॥ विदेहनके निकटि जो है, तापरि जय जिनराज तुमैं जय जय जय जयवन्त सुरनर वन्दित पादपद्म तुम पूजो शिवतिय कन्त, करो हमकौं अब तुम सेरा।सुनौं०॥३॥

नीलविजय इन्द्रि सु उत्तरमैं कह्यो जिनराज सु सुनरमें, चतुः शत जोजन ऊंचामैं वर्ण वैडूर्यमयी। इनमैं जय जिन तुम गृह, तासपैं राजत नित्य अनूप तुम॥ तामधि निति अचल विराजो, जय जय त्रिभुवन भूप नाथ। हमकौं विधि दुख देरी। सुनौं०॥ ४॥

रुक्मकुल अद्रि पंचमो है, रूपमय वर्ण सञ्च सोहैं। पूर्णतैं अर्द्ध ऊंच सौंहैं, मणिनतैं जटित अंच सौंहैं॥ तापरि जय तुम गेहमैं, तुम निति अविरलरूप

रत्नमई राजत हो। जय जिनसिंह पीठपरि भुप देव, हमकों तुम सुख देरी ॥ सुनौं० ॥ ५ ॥

शिखरिकुल पर्वत अन्तिम है, हेममयवर्ण अभंतिम है। ऊंच शत जोजन जंत्रमहै, क्षेत्र ऐरावत पंक्तिम है ॥ जिनगृह तुमरो तासपैं, सुर पूजन दिनरं- निनिव सु विधि द्रव्य मिलाय गायगुन जिजैं, तुमैं पद चैन करो हम करुनाथ जेरी ॥ सुनौं० ॥ ६ ॥

तुम ही सबके जिननायक हो, तुम ही जगमैं सब लायक हो। तुम ही सब विघ्न मिटायक हो, तुम ही शिवके सुखदायक हो ॥ जगपति जग प्रति- पालक हो, कर्म दुःख खयकार दुःखमय। भवसागरतैं पंडित महाचन्द्रकौं तार करो, शिवमाही मोही डेरी ॥ सुनौं० ॥ ७ ॥

सोरठा।

विजयमेरुके जानि, षट्कुल पर्वत है महा।
तिनपैं जिनगृह मानि पूजो, भवि बहु भावतैं ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु षट्कुलाचलस्थ जिनगृहेभ्यो महार्घम् ॥८॥

चौपाई।

षट्कुल पर्वत षट् जिन धाम, विजयमेरुके है अभिराम। जो नर बांचत है यह पाठ, सो अनुक्रम पावै शिवठाठ ॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री विजयमेरु षटकुलाचल जिनगृह पूजा समाप्त।

अथ विजयमेरु भरतक्षेत्र विजयार्द्ध जिनगृह पूजा।

दोहा।

विजय मेरु दक्षिण दिशा, भरत क्षेत्र मधि जानि।
विजयारध जिन भवन जिन, आवो पूजौं मानि॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु भरतक्षेत्र विजयार्द्ध जिनगृह जिनसमूह अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिस्थापनं।

चाल जादव कैसे चले।

नित पूजो हो भरत रूपगिरि देवा॥ टेक॥
सुर सरिताको जल भरि लेकैं, हो धार चरण ढिग हूजो।
॥ नित पूजो० ॥

ॐ ह्रीं भरत विजयार्द्ध स्थित जिनगृहाय जलं॥ १ ॥

चन्दन गन्धित कुम्कुमके संग, घसिकरि जिनपद जोजो।
॥ नित पूजो० ॥

ॐ ह्रीं भरत विजयार्द्ध स्थित जिनगृहाय चन्दनं॥ २ ॥

तन्दुल परिमल युत अतिसुन्दर, जिन पद आगैं पूजौं।
॥ नित पूजो० ॥

ॐ ह्रीं भरत विजयार्द्ध स्थित जिनगृहाय अक्षतं॥ ३ ॥

पुष्प सुगन्धित मधुकरकौं प्रिय, हरख्यो माधुलिह गुंजो।
॥ नित पूजो० ॥

ॐ ह्रीं भरत विजयार्द्ध स्थित जिनगृहाय पुष्पम् ॥ ४ ॥

नाना रस नैवेद्य बनाओ, मोदक मुख्य करूं जो।

॥ निति पूजो० ॥

ॐ ह्रीं भरत विजयार्द्ध स्थित जिनगृहाय नैवेद्यम् ॥ ५ ॥

घृत मय वा करपूर मई ले दीपक स्वं पर सूझो।

॥ निति पूजो० ॥

ॐ ह्रीं भरत विजयार्द्ध स्थित जिनगृहाय दीपम् ॥ ६ ॥

कृष्नागुरु श्री खण्ड धूप ले, जिनपद आगैं धूज्यो।

॥ निति पूजो० ॥

ॐ ह्रीं भरत विजयार्द्ध स्थित जिन० धूपम् ॥ ७ ॥

नाना फल करि कनक पात्रमैं, जिनपद अग्र समूजो।

॥ निति पूजो० ॥

ॐ ह्रीं भरत विजयार्द्ध स्थित जिन० फलम् ॥ ८ ॥

जल मुख अन्त फलं हम करिकें, जजिजिनपद नहीं दूजो।

॥ निति पूजो० ॥

ॐ ह्रीं भरत विजयार्द्ध स्थित जिन० अर्घं ॥ ९ ॥

दोहा।

विजय मेरुके दक्षिणे, भरत क्षेत्रके माहि।
बिजयारध जिन भवनकौं, पूजौं अर्घ चढ़ाहि॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु भरतक्षेत्र विजयार्द्ध जिनगृहायर्घं ॥ १ ॥

बिंब एक सौ आठ सब, रत्न मई गुन खान।
धनुष पंच शत तुंग तनु, पूर्ण अर्घ तैं मानि॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु भरतक्षेत्र विजयार्द्ध एक सौ आठ सर्व जिन बिंबेभ्यः पूर्णार्घं ॥ २ ॥

अथ जयमाला।

दोहा।

विजय मेरुके भरतमें, विजयारध जिनधाम।
ताकी अब जयमाल जपि, पूरैं वांछित काम ॥१॥

तोटक छन्द।

जय मेरु द्विनीय तनें गृहकं, तिस दक्षिण माहि भरतहकं। विजयारध तापरि गेह बसै, जय तामधि बिंब जिनेन्द्र लसैं ॥१॥ जय खेचर पूजित पाद तुमैं, निति राजत हो नहिं अन्य नमैं। तुमरो जस उज्जल गावत है, खग मोद अनन्द बढ़ावत है ॥ २ ॥ तुम दीन दयाल दया धरिये, हम दीननकौं भव उधरिये। हम हैं तुमरे पद दास सदा, हमरी सुधि लेहु जिनेन्द्र मुदा ॥४॥ हमरे नहीं और धनि जगमैं, तुम ही हम कीजिये स्वं मगमैं। महचन्द्र बुद्धी यह जाचत है, तुमरे पदमें मन राजत है ॥ ५ ॥

सोरठा।

विजय मेरु द्वय द्वीप, दक्षिण दिशामें भरत है।
तामधि रुपगिरिप जिनगृह, तापरि निति जिजौं ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु भरतक्षेत्र विजयार्द्ध जिनगृहाय महार्घं।

अडिल्ल छन्द।

विजयमेरुकी दक्षिण दिश सु प्रमानिये, भरत क्षेत्र विजयारध जिनगृह जानिये। तिनकी पूजा जो नर वाचैं भाव रलौं, सो भवके सुख भोगि मोक्ष लह चावसौं॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री विजयमेरु भरतक्षेत्र विजयार्द्ध जिनगृह पूजा समाप्त।

अथ विजयमेरु ऐरावत क्षेत्र विजयार्द्ध जिनगृह पूजा।

शालिनी छन्द।

दूजो मेरु तासके उत्तरे है, क्षेत्रं ऐरावत ता मध्य जे है। रूपताद्रि जैनं गृहन्ते जिनेन्द्रा, आवो तिष्ठो पूजिहौं मैं सुरेंद्रा॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु ऐरावत क्षेत्र विजयार्द्ध स्थित जिनगृह जिनसमूह अत्रावतरा० अत्रतिष्ठ० अत्रमम०।

अथाष्टकं।

सुन्दरी छन्द।

विमल नीर सु भृंग भरायके, जजत हौं जिन अग्र ढरायकैं। विजयमेरु सु उत्तरमें लसैं, विजय अर्घ गृहं जिनको वसैं॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु ऐरावत क्षेत्र विजयार्द्ध स्थित जिन-गृहाय जलम् ॥ १ ॥

अगर चन्दन कुम्कुम लेय कै, जजन हौं जिनके पद बेयकैं ॥ विजय० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु ऐरावत क्षेत्र विजयारध स्थित जिन-गृहाय चन्दनं।

अमल तन्दुल उज्जल ले धरौं, जिन पदाग्र सु पुंज अर्थे करौं। विजय० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु ऐरावतक्षेत्र विजयारध स्थित जिनगृहाय अक्षतं ॥ ३ ॥

कमल केतकी लेय सुगन्धितं,
जिनपदं जजि हौं सुख संधितं। विजय० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु ऐरावत क्षेत्र विजयारध स्थित जिन० पुष्पं ॥ ४ ॥

चरू रसाल रसं भवको करौं,
जिन पदाग्र क्षुधा दुःखको हरौं। विजय० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु ऐरावत क्षेत्र विजयारध स्थित जिन० नैवेद्यम् ॥ ५ ॥

विमल दीपक जोति जगायकै,
जजत हौं मम मोह नशायकैं। विजय० ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु ऐरावत क्षेत्र विजयार्द्ध स्थित जिनगृ० दीपम् ॥ ६ ॥

अगर धूप बनाय मनोहरं,
जिन पदांबुज खेवत हौं वरं। विजय० ॥
ॐ ह्रीं विजयमेरु ऐरावत क्षेत्र विजयार्द्धस्थ जिन० धूपम् ॥७॥
फल मनोहर आम्र सु दाड़िमं,
शिवकर जिनपाद जिजौं इमं। विजय० ॥
ॐ ह्रीं विजयमेरु ऐरावत क्षेत्र विजयार्द्धस्थ जिन० फलं ॥८॥
जल सुखं फल अन्न मिलायकैं,
जिन जजौं करि अर्घ बनायकैं। विजय० ॥
ॐ ह्रीं विजयमेरु ऐरावतक्षेत्र विजयार्द्धस्थ जिन० अर्घम् ॥९॥

सोरठा।

विजयमेरु उत्तरान, ऐरावत विजयार्द्धपैं।
जिनगृह तापरि जानि, पूजौं अर्घ चढ़ायकैं॥
ॐ ह्रीं विजयमेरु ऐरावतक्षेत्र विजयार्द्धस्थ जिन० अर्घम् ॥१॥
जिन प्रतिमा तिस माहि, इक सत आठ सबै लसैं।
तिन सबकौं नित चाहि, पूजौं पूरण अर्घतैं॥
ॐ ह्रीं विजयमेरु ऐरावत क्षेत्र स्थित विजयारध एकसौ आठ सर्व जिनबिंबेभ्यः पूर्णार्घम् ॥ २ ॥

अथ जयमाला।

दोहा।

ऐरावत विजयार्द्ध, जिन गृह सुन्दर सोहनो।
ताकी पूजा साधि, अब जयमाला जपत हौं ॥१॥

पद्धड़ी-छन्द।

जय विजयमेरुतैं उत्तरान, ऐरावत क्षेत्र विषैं महान।
जय विजयारध परि जिनगृहान, तिसमैं जय जिन त्रिभुवन प्रधान ॥२॥ जय तुम गृह उन्नत पौन कोश, आयाम सदा जह एक कोश। अध कोश व्यास निति होत सार, तामधि तुम जिन जय जग आधार ॥ ३॥ जय जय जग जीवदया निधान, जय जगतपाल जगनाथ मान। जय जय जग नायक दीन पाल, तुमकौ सुर नर खग नमत भाल॥४॥ तुम ही जगमैं जयवन्त सन्त, तुम ही शिवके पति ज्ञानवन्त। तुमकौ हम पूजत बार बार, विनती हमरी उर धार धार ॥ ५ ॥ हमकौं दुःख देत सु मोहराय, ताकौं तुम नाश करो जिनाय। यह पाप प्रचण्ड सु चूर चूर, मन चिंतित कारिज पूर पूर ॥ ६ ॥ मतो ढील करो अब जगतनाथ, पंडित महचन्द्र नमात माथ। घन घोर घटा अब टार टार, विधि नाशि करो सुख सार सार ॥७॥

घत्ता छन्द

इति विजय सुमेरं दूजो हेरं, उत्तरतैं जिनगेह।
ऐरावत राजै विजयार्द्धाजै, तापरि भाजै जजि नेह ॥

ॐ ह्रीं विजयमेरु ऐरावत क्षेत्र विजयार्द्ध जिनगृह जिनसमुदाय महार्घम् ॥ ८ ॥

सोरठा।

ऐरावत जिन गेह, जो नर पूजै भावतैं।
मनमें धरि अति नेह, सो नर सुर सुख भोगवैं॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री विजयमेरु ऐरावतक्षेत्र विजयार्द्ध जिनगृह पूजा समाप्त।

अथ धातकीखण्ड पश्चिमभागे अचल-मेरु पूजा तथा अचलमेरुके षोडश जिनगृह पूजा।

मत्तगयंद छन्द।

धातकी पश्चिम भाग विषैं, अचल मेरु विराजत है सुखकारी। तास चहूं वनमाहीं चहुदिश, षोडश गेह लसैं अघहारी। गेहनमैं शत आठ विराजत, बिम्ब जिनेन्द्र लसैं सुखदाई। ते जिन आय विराजहु अत्र, बुलावत हौं यह पुष्प चढ़ाई॥

ॐ ह्रीं अचलमेरुस्थ षोडश जिनगृह जिनसमूह अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

जोगीरासो छन्द।

सुर सरितादिक निर्मल जल ले, कञ्चन कुम्भ भराई।
जन्म मरण दुख नाशन कारण, जिनपद धार दराई॥

धातकी पश्चिम अचलमेरुके, षोडश जिनवर गेहा।
तिनमें जिनवर बिम्ब मनोहर, ले पूजौं धरि नेहा॥

ॐ ह्रीं धातकीखण्ड पश्चिमभागे अचलमेरु षोडश जिन-गृह जिनसमूहाय जलम्॥ १॥

केसरि चन्दन अगर तगर, करपूर मिलाय घसाऊं।
भव तप नाशन कारण लेकर, जिनपद पुंज रचाऊं॥
धातकी पश्चिम०॥

ॐ ह्रीं धातकीखण्ड पश्चिमभागे अचलमेरु षोडश जिन-गृह जिनसमूहाय चन्दनं॥ २॥

शालि अखंडित गन्ध सुमंडित, दीर्घ अनी जुत लीजे।
पुंज करो जिन पादपद्म ढिग, अक्षय पदकौं लहीजे॥
धातकी पश्चिम०॥

ॐ ह्रीं धातकी खण्ड पश्चिम भागे अचलमेरु षोडश जिनगृह जिनसमूहाय अक्षतं॥ ३॥

केतकी चम्पक वेलि चरण जिन, अग्र धरो शुभ ताजे।
मधुकर गुंजत पुष्प लेयके, काम महाभट भाजे॥
॥ धातकी०॥

ॐ ह्रीं धातकी खण्ड पश्चिम भागे अचलमेरुके षोडश जिनगृह जिनसमूहाय पुष्पं॥ ४॥

नानारस करि खाजा फेणी, मोदक मोदनकारी।
जिन पद अग्र चढ़ाओ हित सै, क्षुधारोग निरवारी॥
॥ धातकी०॥

ॐ ह्रीं धातकी खण्ड पश्चिम भागे अचलमेरु षोडश जिन० जिनसमूहाय नैवेद्यम् ॥ ५ ॥

घृतमय वा करपूर मई करो, दीपक जोति जगावो।
जिनपदकौं उद्योत करो ज्यों, मोह सुभट भगिजावो॥
॥ धातकी० ॥

ॐ ह्रीं धातकी खण्ड पश्चिम भागे अचलमेरु षोडश जिन० जिनसमूहाय दीपम् ॥ ६ ॥

अगर तगर कृष्नागुरु लेकैं, अमर जिह्वमें खेवो।
धूम चलैं जिम धूप माही तैं, कर्म धूम त्यौं खेवो॥
॥ धातकी० ॥

ॐ ह्रीं धातकी खण्ड पश्चिम भागे अचलमेरु षोडश जिनगृह जिनसमूहाय धूपं ॥ ७ ॥

दाडिम आम नारिंग जम्भीरी, नीबू दाख छिवारी।
ले फल उत्तम जिन पद धारौं, मोक्ष महा फलकारी॥
॥ धातकी० ॥

ॐ ह्रीं धातकी खण्ड पश्चिम भागे अचलमेरुके षोडश जिनगृह जिनसमूहाय फलम् ॥ ८ ॥

जल चन्दन अक्षत प्रसून चरु, नेवज दीप जगावो।
धूप महाफल अर्घ चढ़ावो, ज्यौं अनर्घ पद पावो॥
॥ धातकी० ॥

ॐ ह्रीं धातकी खण्ड पश्चिम भागे अचलमेरुके षोडश जिनगृह जिनसमूहाय अर्घं ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येकार्घं।

चाल-खोयोरे गवार मैं।

पूजो हो जिनंद, अचल मेरु परि पूजो पूजो०।टेक०॥

भद्रशाल वन पूर्व मैं हो, जिनगृह अमंद। सत अठ जिनवर, पूजो पूजो हो जिनं० ॥

ॐ ह्रीं भद्रशाल पूर्व दिश जिनगृहार्घं ॥ १ ॥

दक्षिणमें जिनगेह है हो, भद्रशाल वन संघ। सुर नर खग निति, पूज्यो पूजो हो० ॥

ॐ ह्रीं भद्रशाल दक्षिण जिन० अर्घं ॥ २ ॥

पश्चिममें जिन धाम है, हो शत योजन पौंण सु उपनन्द लक्ष सत हो हुज्यो, पूजो हो० ॥

ॐ ह्रीं भद्रशाल पश्चिम जिन० अर्घम् ॥ ३ ॥

भद्रशाल उत्तर दिशा हो, जिनगृह जग आनंद, जिन प्रतिमा नहिं दूजो, पूजो हो० ॥

ॐ ह्रीं भद्रशाल उत्तर जिन० अर्घम ॥ ४ ॥

नंदनवन ता ऊपरे हो, पूरब जिनगृह चन्द। पूजित हो जग रुडां, पूजो हो० ॥

ॐ ह्रीं नंदनवन पूर्व दिश जिन० अर्घम्।

अचल मेरु बन दूसरो हो, दक्षिण जिनगृह वंद्य। तीन लोक करि पूज्यो, पूजो हो० ॥

ॐ ह्रीं नंदनवन दक्षिण जिन० अर्घम् ॥ ६ ॥

पश्चिमनंदन वन विषैं हो, जिनवर धाम अद्वन्द्व।
जिन कौं तीन जग सूझो, पूजो हो० ॥

ॐ ह्रीं नन्दन वन पश्चिम जिन० अर्घम् ॥ ७ ॥

उत्तरमें जिन धाम है, हो नंदनवन वननंद।
पूजन सुरकरि शुद्धो, पूजो हो० ॥

ॐ ह्रीं नंदनवन उत्तर दिशि जिन० अर्घम् ॥ ८ ॥

रेषतमैं।

जिजौं जिनधाम सोमनसे, पूर्व दिश माहि चित्त हुलसैं।
अचल मेरु विर्षे राजैं, जजैं निति सुरकरि समाजैं ॥

ॐ ह्रीं अचल मेरु सोमनसवन पूर्वदिश जिन० अर्घम् ।९॥

तृतीय वन दक्षिणे राजै, गेह जिन देखि अघभाजैं।
॥ अचल मेरु० ॥

ॐ ह्रीं सोमनस दक्षिण जिन० अर्घम् ॥ १० ॥

धाम जिनको सुपश्चिममें, तृतीय वन देखी रविलाज।
॥ अचल मेरु० ॥

ॐ ह्रीं सोमनस पश्चिम जिन० अर्घम् ॥ ११ ॥

जजन जाकौं सुरेंद्र सदा, गेह जिन उत्तरे पाजैं।
॥ अचल मेरु० ॥

ॐ ह्रीं सोमनस उत्तर जिन० अर्घम् ॥ १२ ॥

पांडुक वनमें गेह जिनको, पूर्व दिशा माही अघहनको।
॥ अचल मेरु० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पांडुक वन पूर्व दिश जिनगृहायार्घ ॥ १३॥

चतुर्थ मही वन तामैं, दक्षिणे पूजि जिनधामं।
॥ अचल मेरु० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पांडुकवन दक्षिणदिश जिनगृहायार्घ ॥ १४॥

सु पश्चिममें सदा हो हैं, पांडुक जिनधाम मन मोहैं।
॥ अचल मेरु० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पांडुकवन पश्चिमदिश जिन० अर्घं ॥ १५॥

चतुर्थन पांडुक वन केरा, उत्तर जिनधाम सुख सेरा।
॥ अचल मेरु० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पांडुकवन उत्तरदिश जिन० अर्घं ॥ १६ ॥

दोहा।

अचल मेरुके च्यारि वन, चउ दिस षोडश गेह।
जिनवरके तिनकौं जजौं, पूर्ण अर्घ करि लेह ॥

ॐ ह्रीं धातकीखण्ड अचलमेरु षोडश जिनगृहेभ्य: पूर्णार्घं १७॥

अचल मेरु जिन गेहमें, सतरासै अठ बीस।
सब जिन प्रतिमा अर्घ ले, जिजौं हाथ धरि शीश॥

ॐ ह्रीं धातकीखण्ड अचलमेरुके षोडश जिनगृहनमें सतरासै अठाईस जिनबिम्बेभ्य: अर्घम् ॥ १८

अथ जयमाला।

वेसरी छन्द।

मेरुके गृह जिनन्द गुनीये, षोडश सु करि संकय कसीये। भद्रशाल वन नन्दन माहो जानि, सोम-

नस पांडुक छांहीं ॥ १ ॥ जैन बिम्ब इनमैं जे सारा, ते जिनेन्द्र जयमाल उचारा। पूजि हौं सकल मङ्गल करा, ते जिनेन्द्र हम कीजिय पारा ॥ २ ॥ हे जिनेन्द्र जय कर्म हनन्ता, हे जिनेन्द्र जय इन्द्र महंता। हे जिनेन्द्र जय दुःख निवारा, हे जिनेन्द्र जय जयशं सुखकारा ॥ ३ ॥ नाथ मोह भट भंजन हारा, मेटि मोह घन लेन हमारा। रोकी थानगढ ग्यारम सारा, वैथि जुद्ध निति कोप अपारा ॥ ४ ॥ अष्टविंश प्रकृति असधारा, मोक्ष थान मग रोकन हारा। एक मिश्र गुण मिश्र हि बैठो, मिश्र रूप करि हैं जिय जेठो ॥ ५ ॥

दूसरो समक मिश्र भटारी, तीज हीयु गुण मिश्र मिलारी। सम्यक प्रकृति मिश्र कहा है, वेदक सु करि है सम काहे ॥ ६ ॥ तिन दर्शन सु मोह सही है, रोका है विमल मोक्ष मही है। चोकडी प्रथम कोप मुखि हैं, रोकी है प्रथम थान लखि हैं ॥ ७ ॥ दूसरी प्रबल संयम रोकै, थान चौथ मही बैठी अघोखै। तीसरी सकल संयम रोकै, पंचमे सु गुण थान अलोकैं ॥ ८ ॥ चोकडि सु चउथी इस भांते, षष्टमैं शातम माहि इकातैं। एक अष्ट इकनो गुण थानैं, एक लोभ दशमैं गढ़ मानैं ॥ ९ ॥ हास्य आदि षट वेद त्रयं है, नोम ही निति रहै बलयं है। यो निरन्तर महा भट जोद्धा, मोहसेन करि रोकी अजोद्धा ॥ १० ॥

जान देत नहीं मोक्षपुरीमें, मोह वैरि सम नाही अरीमैं। सो अब हम निवारण कीजे, मोही सेवक निज लखि लीजे ॥ ११ ॥ विनती सु इतनी उर धारो, बारबार विनवौं पद धारौ। महा चन्द्र बुध जाचत याही, कीजिये हम ही आपसमाही ॥ १२ ॥

घत्ता छन्द।

यह धातकीखण्डे, पश्चिम मण्डे अचल मेरुके गेह नमौं। धनच्यारि सु माही, षोडश काही पूजत ही सब पाप वमौं ॥ १३ ॥

ॐ ह्रीं धातकी खण्डे पश्चिम अचलमेरु सम्बन्धी षोडश जिनगृहेभ्यो महार्घम् ॥

चौपाई।

धातकी खण्ड सु पश्चिम माही,
अचल मेरु षोडश गृह जाही।
तिनकी पूजन बाचै पढ़ै,
सो अनुक्रमतैं शिवपुर चढ़ै ॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री धातकीखण्डे पश्चिम भागे अचलमेरु षोडश जिनगृह पूजा समाप्ता।

अथ अचलमेरुके च्यारि गजदन्तके जिनगृह पूजा।

करखा छन्द।

गजदन्त तीजा मेरुके चउ कोंणमें,
चउ होत ईशान आदि सु जानिये।
तिनपैं जिनेन्द्र गृह होत तिन माहि,
इकशत आठ इकमें बिंब जिनके।
जानिसे करि कृपा इत आय,
तिष्ठौं पूजि हौं सुख खानि॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु गजदन्तस्थित जिनगृह जिनसमूह अत्रावतरा० अत्रतिष्ठ० अत्रमम०।

अथाष्टकं

रागबरवाकी ठुमरीमें।

गजदंत अचलमेरुके, जिनगृह जिनपद ध्यावोरे॥टेक॥
कञ्चन झारी जल भरी धारि, तीन धार जु पठावोरे।
जन्म जरा मृत नाशन कारन, जिनपद पूज रचाउं॥
जिनगृह जिनपद ध्यावोरे, गजदन्त अचलमेरुके।
॥ जिनगृह० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु गजदन्तस्थित जिनगृह - सुहाय जलं॥१॥

चन्दन गन्ध मनोहर लेकैं, केशरि सङ्ग घसावोरे।

भव आताप नशावन कारण, जिनपद पूज रचाओ ॥
॥ जिनगृह० ॥ गजदन्त० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु गजदन्तस्थित जिनगृहसमूहाय चन्दनं॥२॥

शालि अखण्डपुरी मल मण्डन, पुञ्ज सार करावोरे।
अक्षय पद पावनके कारण, जिनपद पूज रचाओ ॥
॥ जिनगृह० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु गजदन्तस्थित जिनगृह समूहाय अक्षतं ॥३॥

कंज कुन्द कुसुमनके पुञ्जन, अलिगन ऐसे ल्यावोरे।
मन्मथ मद नाशनके कारण, जिनपद पूज रचाओ ॥
॥ जिनगृह० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु गजदन्तस्थित जिन० समूहाय पुष्पं ॥ ४ ॥

नाना रस नैवेद्य मनोहर, खाजा फेणी करावोरे।
क्षुधा रोग नाशनके कारण, जिनपद पूज रचाओ ॥
॥ जिनगृह० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु गजदन्तस्थित जिनगृह समूहाय नैवेद्यं ॥५॥

घृत मय वा कर्पूर मई शुभ, दीपक जोति जगावोरे।
मोह तिमिर नाशनके कारण, जिनपद पूज रचाओ ॥
॥ जिनगृह० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु गजदन्तस्थित जिनगृह समूहाय दीपम् ।६॥

श्रीखण्डादिक द्रव्य लेयके, जिनपद सेव करावोरे।
अष्टकर्म नाशनके कारण, जिनपद पूज रचाओ ॥
॥ जिनगृह० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु गजदन्तस्थित जिनगृह समूहाय धूपम् ॥ ७॥

आम्रपुग नारिंग नीबू यह, फलतैं थाल भरावोरे।
मोक्ष महाफल चाखन कारण, जिनपद पूज रचावो ॥
॥ जिनगृह० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु गजदन्तस्थित जिनगृह समूहाय फलं॥ ८॥

जल फल आठौं द्रव्य मिलावो, इनको अर्घ बनावोरे।
पद अनर्घ पावनके कारण, जिनपद पूज रचावो ॥
॥ जिनगृह० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु गजदन्तस्थित जिनगृह समूहाय अर्घम् ॥९॥

अथ प्रत्येक अर्घं।

रूप चौपाई।

कौण कही ईशान प्रधाना, नाममाल्य वाना सुख खाना। तापरि जिनगृह त्रिभुवन सारा, पूजो ताही अर्घ करि धारा॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु ईशानकौण माल्यवान गजदन्तस्थ जिनगृहाय अर्घम् ॥ १ ॥

महसोमनस कौण अग्निमें, तापरि जिनगृह जिन कथनीमें। जिनपति पूजौं तामधि सारं, अर्घ लेय करमैं सुखकारं॥

ॐ ह्रीं अग्निकौण सोमनसगजदन्तस्थ जिन० अर्घम् ॥२॥

नैऋतमें गजदन्त बखाना, विद्युतप्रभ नामा

सुख माना । तापरि जिनगृह नित्य विराजै, जिनपति पूजेतैं अघ भाजैं ॥

ॐ ह्रीं नैऋतकौण विद्युत्प्रभ गजदन्तस्थ जिन० अर्घम् ॥३॥

वायवकौंण गन्धमादाना, है गजदन्त सकल परधाना । जिनगृह तापरि जिनपति सोहै, पूजेतैं वांछित फल होहैं ॥

ॐ ह्रीं वायवकौंण गन्धमादन गजदन्तस्थित जिनगृहाय अर्घम् ॥ ४ ॥

धातकीखण्ड अचल शुभ मेरु, ताके चउ गज-दन्त जु हेरु । तिनपैं च्यारि गेह जिनकेरा, तीन सबकौं पूरण अर्घेरा ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु चतुर्गजदन्तपरि चतुर्जिनगृहेभ्यः पूर्णार्घं ॥५॥

गजदन्तनपरि जिनगृह केरी, प्रतिमा च्यारि शतक गनी लेरी । और बतीस अधिक इम जानौं, तिनकौं पूरण अर्घ चढानौं ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु चतुर्गजदन्तस्थित च्यारिसै बतीस सर्व जिनबिंबेभ्यः पूर्णार्घम् ॥ ६ ॥

अथ जयमाला ।

दोहा ।

धातकी पश्चिममेरुके, गजदन्तन जिनगेह ।
तिनकी जयमाला अबैं, गाऊं मन धरि नेह ॥१॥

कामिनि मोहन छन्द ।

मेरु तीजो अचल नाम गजदन्तपैं,
चारि जिनगेह जिन सकल सुख कन्दसैं ।
होत जिनराज सुर शतकगन सेव हैं,
दोष अष्टा सु दश रहत जिनदेव हैं ॥२॥
नाहि जिनके क्षुधा फुनि जु निरमनाल ही,
राग नहीं होत फुनि द्वेष नाही कही जन्म नही ।
जर मरण नाहि जह पाईये, रोग अर सोग भय,
नाहि कछु पाईये ॥ ३ ॥
विस्मयं नाहि निद्रा नहिय जासकै,
खेद नहि खेद नही नाही मद नासकै ।
मोह नही अर तिन ही नाहि चिन्ता,
जहां अष्ट दश दोष यह नाहि जामैं जहां । ४॥
सो जिनदेव हम हाथ गहो लीजिये,
भव समुद्रगाध आन पार करि दीजिये ।
तुम ही जग जीव जग पार करतार हो,
जय तुम ही मोक्ष रमणी सु भरतार हो ॥५॥
नाथ गहो हाथ करि साथ भव पाथतैं,
नमत हौं पद पदम जोरिकर माथतैं ।
मोहि यह कर्म करि भर्म दुख देत हैं,
नाहि रक्षक जगत जेर करि लेत है ॥ ६ ॥

गांवपति एक ताके सरण होत है,
तुहतैं दुःख निरवारि सुख चोत हैं।
तुम ही जग तीनपति जानि सरणौं गयो,
कर्म अरितैं छुडावो अबैं वेगयो ॥ ७ ॥

जगतपति देव सुधि लेहु हम दीनकी,
कर्म अरि दुःख भयभीत दुःख लीनकी।
विबुध मह चन्द्र तुम पादकंज सेय हैं,
जन्म जन्मांतरे धर्म तुम लेय हैं ॥ ८ ॥

घत्ता छन्द।

यह तृतीय सुमेरु पश्चिम हेरु, अचल नाम ताके लखिये। गजदन्त च्यारि मही दुःखटार मही, जिन-गृह च्यारि जजौं सुखिये ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु चतुर्गजदन्तस्थ जिनगृहेभ्यो महार्घं ॥ ९ ॥

रथोद्धता छन्द।

मेरुके अचल नाम, केय है इसिनदन्त, नतने गृहं चहैं जो जजैं अमल भावतैं। सदा सोल है, अचल थान सम्पदा ॥ १ ॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री धातकीखण्डे पश्चिमभागे अचलमेरु गजदन्त जिनगृह पूजा समाप्त।

अथ अचलमेरु ईशान कौंणस्थ जम्बूवृक्ष जिनगृह पूजा।

मदावलिप्त कपोल छन्द।

अचलमेरु ईशान, कौंण जम्बू तरु सोहै।
ताके उत्तर शाख विषै, जिनगृह मन मोहै॥
तामैं इक शत आठ, बिम्ब जिनके सुखकारी।
ते जिन तिष्ठो आय सुनौं, अब अरज हमारी॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु जम्बूवृक्षस्थ जिनगृहः जिनसमूह अत्रावतरावतर। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव सन्निधीकरण।

अष्टकं।

दोधक छन्द।

नीर मनोहर लेय सुगन्धं, कञ्चन भृङ्ग भराय अमन्दं। पूजिये वृक्ष सु जम्बुव गेहं, बिंब जिनेन्द्र त्रिती गिरि केहं॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु जम्बूवृक्षस्थ जिनगृहाय जलं॥ १॥

चन्दन कुंकुम गन्ध अपारा, मेटन ताप बसौं करि सारा। पूजिय वृक्ष० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु जम्बूवृक्षस्थ जिनगृहाय चन्दनं॥ २॥

तन्दुल गन्ध मनोहर लेकैं, पुंज धरौं जिन अग्र सु देकै। पूजिय० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु जम्बूवृक्षस्थ जिनगृहाय अक्षतम् ॥ ३ ॥

केतकी चम्पक कुन्द गुलावै, काम विनाशन लेयर आवै। पूजिय० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु जम्बूवृक्षस्थ जिनगृहाय पुष्पम् ॥ ४ ॥

नेवज मोदक आदि मगावैं, थाल सुवर्णनमैं भरि ल्यावैं। पूजिय० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु जम्बूवृक्षस्थ जिनगृहाय नैवेद्यम् ॥ ५ ॥

दीपक जोति उद्योत करावैं, मोह तमो नसिये सुख पावैं। पूजिय० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु जम्बूवृक्षस्थ जिनगृहाय दीपम् ॥ ६ ॥

धूप सुगन्धित लेय मनोग्यं, खेय जिनं पद अग्र सु जोग्यं। पूजिय० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु जम्बूवृक्षस्थ जिन० धूपम् ॥ ७ ॥

आम्र सुखं फल लीजिय सारं, कंचन थाल भराय सु धारं। पूजिय० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु जम्बूवृक्षस्थ जिन० फलम् ॥ ८ ॥

नीर सुखं करि द्रव्य मिलावै, अर्घ करै जिनपाद चढ़ावै। पूजिय० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु जम्बूवृक्षस्थ जिन० अर्घं ॥ ९ ॥

सोरठा।

अचल मेरु ईशान, जम्बू वृक्ष सुहावनौं।
तापरि जिनगृह जानि, पूजौं पूरण अर्घतैं ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु जम्बूवृक्षस्थ जिन० अर्घम् ॥ १ ॥

प्रतिमा इकशत आठ, धनुष पंच शत तुंग तनु।
तिनकौं जजि करि ठाट, पूरण अर्घ बनायकैं ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु जम्बूवृक्षस्थ एक सौ आठ सर्व जिनबिंबेभ्यः पूर्णार्घ ॥ २ ॥

अथ जयमाला।

दोहा।

अचल मेरु जम्बू तरु, जिनगृह उत्तर साख।
ताकी अब जयमाल है, गावो शुभ करि भाख ॥१॥

लक्ष्मीधरा छन्द।

मेरु तीजातनी कौंण ईशानमैं, वृक्ष जम्बू लसैं भूमि रूपीनमैं। तासके उत्तरे साखमैं जानिकैं, पूजिये गेह जैनं सदा मानिकैं। २॥ गेह उत्तंगता कोश पौणं कही, होत आयाम कोसं सदा ही सही। व्यास अर्ध सदा जानिये गेहको, बिंब सो आठ पूजो सुधं नेहको ॥ ३ ॥ पंचसै तुंग देही धनु होत है, रत्न निर्मापिये नाहि कीनौं तहै। गेह पासै सु आठौं सदा संस्थिता, मङ्गलं द्रव्य राजैं अनूपं मिता ॥ ४ ॥ होत झारी तथा बाजना कुम्भ हो, केतु चोथो तथा साथियो शुभ हो। छत्र दर्पण तह चामरं आठ ए, नित्य तिष्टे मनोग्यं लसैं ठाठ ए। ५ ॥

श्री तथा और श्रुतदेव मूर्ति लसैं, जिक्ष मूर्ति शन कौमराकी बसैं। नित्य ए बिंबके पासि दिसैं शुभं,

नाहीं कृत्रिम कीजे नहिं ते कभं ॥ ६ ॥ ते जिना आजि मो विनती धारियो, पंडित महाचन्द्र सु उद्धारियो। कीजियो आप समं नहीं जाचना, स्वर्ग सौख्यादिकी दुःखदाई घना ॥ ७ ॥

घत्ता छन्द।

इति जम्बू वृक्षे जिनगृह लक्षे, मेरु अचलके पास बसै।
तामैं जिन गेहं पूज्य हरेहं, पूजो भवि धरी प्रिति लसैं ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु जम्बूवृक्षस्थ जिनगृहाय महार्घम्।

सोरठा।

जो बांचे यह पाठ, जम्बू तरु जिन गेहको।
सो पावे सुख ठाठ, अनुक्रमतैं शिवपद लहैं ॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री अचलमेरु जम्बूवृक्ष जिनगृह पूजा समाप्त।

अथ अचलमेरु शाल्मलि वृक्ष जिनगृह पूजा

सोरठा।

अचल शाल्मलि वृक्ष, नैऋत कौंण बखानिये।
तापरि जिनगृह लक्ष, ते जिन तिष्ठो आप इत ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु शाल्मली वृक्षस्थ जिनगृह जिनसमूह अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननम् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापन। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

चाल—होरीमैं।

तरु शाल्मली तीजो मेरु, ताके जिन जजौं तरु।
तप्त सोन मय भृंग लेयकर, नीर मनोहर लेय॥
जन्म मरण दुःख दूरि करनकौं, धार तीन शुभ गेर।
ताके जिन जिजौं तरु शाल्मली तीजो मेरु। ताके० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु शाल्मली वृक्षस्थ जिनगृहाय जलं॥ १ ॥

मलिया गुरु कृष्ना गुरु लेकर, कुंकुम संग घसेर।
भव तप हरण चरण जिनवरके, पूजो चन्दन लेर॥
॥ ताके जिन० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु शाल्मली वृक्षस्थ जिनगृहाय चंदनं॥ २ ॥

तन्दुल उज्जल गन्ध मनोहर, लेकर पुंज करेर।
अक्षय पदके हेत जानि पद, पूजो जिन सुख टेर॥
॥ ताके जिन० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु शाल्मली वृक्षस्थ जिनगृहाय अक्षतं॥ ३ ॥

कुन्द कुमुद मद मन्मथ नाशक, पुष्प मनोहर लेर।
जिन पद अग्रधरो सुख कारण, कामबाण दुख चेर॥
॥ ताके जिन० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु शाल्मली वृक्षस्थ जिनगृहाय पुष्पं॥ ४ ॥

नाना रस करि मोदक घृतवर, फीणी तुरत सबेर।
क्षुधा रोग निरमूलन कारण, पूजो निज पद घेर॥
॥ ताके जिन जिजो० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु शाल्मली वृक्षस्थ जिनगृहाय नैवेद्य॥ ५ ॥

दीपक ज्योति जगाय मनोहर, ले आवो सुखसेर।
मोह तिमिर नाशन जिनकौं, लखि पूजो पद जिन केर॥
॥ ताके जिन० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु शाल्मली वृक्षस्थ जिनगृहाय दीपम्। ६॥

श्रीखण्डादिक धूप लेय कर, खेवो जिनपद हेर।
अष्ट कर्मके नाशन कारण, पूजो जिन शिव नेर॥
॥ ताके जिन० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु शाल्मली वृक्षस्थ जिनगृहाय धूपम्॥ ७॥

आम्र पुंग नारिंग आदि फल, कंचन थाल भरेर।
मोक्ष महाफल होत मनोहर, जगमैं न आवे फेर॥
॥ ताके जिन० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु शाल्मली वृक्षस्थ जिनगृहाय फलं॥ ८॥

जल चंदन अक्षत प्रसून चरु, दीप धूप फल लेर।
अर्घ करो कंचन मय भाजन, पद अनर्घ है नवेर॥
॥ ताके जिन० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु शाल्मली वृक्षस्थ जिनगृहाय अर्घम्॥ ९॥

दोहा।

अचलमेरु नैऋत विषैं, शाल्मली वृक्ष महान।
ताको दक्षिण साखमैं, जिनगृह पूजो मानि॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु शाल्मली वृक्ष जिनगृहाय अर्घं॥ १॥

जिन प्रतिमा शत आठ सब, राजत है नितिरूप।
ते जिन पूजो भावतैं, पूर्ण अर्घकरि भूप॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु शाल्मली वृक्षस्थ एकसो आठ सर्व जिनबिंबेभ्यः पूर्णार्घम् ॥ २ ॥

अथ जयमाला।

सोरठा।

अचल शाल्मली जानि, ताके जिनगृहको अर्वै।
जयमाला जपि मान, पूजो मन वच तन सदा ॥ १ ॥

चाल टप्पामें।

मोहि तारो हो देवा, तरु शाल्मली तीजा मेरुके।
मोहि तारो० ॥ टेक० ॥
भवदुःख भञ्जन शिव मन रञ्जन, दुर्जन कर्म हरेवा।
सुर नर खग निति पूजि पूजि फूनि, चाहत तुमपद सेवा॥
मोहि तारो० ॥ २ ॥
जय जय जय जगजीव उधारन, सब सुखकारन एवा।
मोह महामद मर्दन हे जिन, भव्य सु दुःख हरेवा ॥
मोहि तारो० ॥ ३ ॥
दीनदयाल दया निधि भवहर, भवभवमैं सुख देवा।
सार शिरोमणि दुःख हरण तुम, मैं पूजौं बहु भेवा ॥
मोहि तारो० ॥ ४ ॥
तुम ही शंकर बुद्ध हरि तुम, तुम ब्रह्मा सब गेवा।
तुमकौं जे नर मन वच तन पूजैं, पावै शिव मेवा ॥
मोहि तारो० ॥ ५ ॥

भव भवमैं तुमरे पद सेवा, मिलो मोहि अघ छेवा।
बुद्ध महाचन्द्र जिजैं तुमरे पद, सुनौं अरज जग देवा ॥
मोहि तारो० ॥ ६ ॥

घत्ता छन्द।

यह शाल्मली वृक्षं नैऋत्य लक्षं, अचल मेरुतै निति राजैं।
ताके जिनदेवा सुर कुन सेवा, पूजो हितधारि सुख काजैं ॥

ॐ ह्रीं अचल मेरु शाल्मलि वृक्ष जिनगृहाय महार्घं।

दोहा।

शाल्मलि तरु जिन गेहकी, पूजा पढ़ै सु जान।
सो नर स्वर्गादिक लथा, अनुक्रम मोक्ष महान ॥ १ ॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री अचल मेरु शाल्मलि वृक्ष जिनगृह पूजा समाप्ता।

अथ अचल मेरु पूर्वविदेह वक्षार जिनगृह पूजा।

पद्धड़ी-छन्द।

तीजा मेरु पूर्व विदेह वक्षार, आठ सामध्य लेह।
तिनपैं जिनगेह सु आठ होत ते, जिन आवो पूजौं उद्योत॥

ॐ ह्रीं अचल मेरु पूर्व विदेह वक्षारस्य अष्ट जिनगृह जिनसमूह अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधापनं।

नाराच छन्द।

मनोज्ञ नीर लेयकै, सु कुम्भमैं भरेयकैं।
सु जन्म मृत्यु नाशनैं, सु तिन धार देयकैं॥
तृतीय मेरु पूर्व हेरु, क्षेत्र जु विदेहमैं।
वक्षार आठ गेह आठ, पूजिये गने हमैं॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पूर्वविदेह वक्षार जिनगृह समुदाय जलं॥१॥

सु कुंकुमादि गन्धकादि, लेय सर्व मेलिकैं।
चलायकैं भव पताप, घायकैं सु केलिकैं तृतीयमेरु०॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पूर्वविदेह वक्षार जिनगृह समुदाय चन्दनं॥२॥

सु इन्दुकुन्द हारतैं मनोज्ञ सार स्वेत ही। सु
शालि लेय शुद्ध हेय पूँज शुद्ध देत ही। तृतीयमेरु०॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पूर्वविदेह वक्षार जिनगृह समुदाय अक्षतं॥३॥

गुलाब कुन्द ले अमन्द पुष्पसार सोम ही। सु
कामबाण दुःख जानिकै जिजैं जिनेन्द्र ही। तृतीय०॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पूर्वविदेह वक्षार जिनगृह समुदाय पुष्पं॥४॥

सु मोदकादि घेवरादि सद्य स्वाद लाइये।
चढ़ाइये नशाइये क्षुधादि रोग जाइये॥ तृतीय०॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पूर्वविदेह वक्षार जिनगृह समुदाय नैवेद्यं॥५॥

सु दीप जोतिको उद्योत धूम हीन ना कदा।
जगाय पाय जिनराय मोह अन्ध ह्वै विदा तृतीय०॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पूर्वविदेह वक्षार जिनगृह समुदाय दीपम्॥६॥

चन्दनादि गन्ध सादि धूप सादि लाजिये।
सुखेप ये जिनेन्द्रचन्द्र पाद अग्र कीजिये॥ तृतीय० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पूर्वविदेह वक्षार जिनगृह समुदाय धूपम्॥ ७॥

आम्र पूग ले अरूण थाल माहि धारिये। चढ़ाइये
जिनेन्द्रचन्द्र मोक्षफल सारिये ॥ तृतीय० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पूर्वविदेह वक्षार जिनगृह समुदाय फलं ॥८॥

नीर आदि द्रव्यलादि अर्घसार कारिये। चढ़ाइये
जिनेन्द्रचन्द्र मोक्षपद धारिये ॥ तृतीय० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पूर्वविदेह वक्षार जिनगृह समुदाय अर्घं ९॥

अथ प्रत्येक अर्घं ।

पाईता छन्द।

तीजो गिरि अचल बखानौं, ताकी पूर्वदिशि जानौं।
सीता उत्तर तट माही, वक्षार जिजो जिनराई॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पूर्वविदेह सीता उत्तरतटे वक्षारस्थ
जिनगृहाय अर्घम् ॥ १ ॥

नीलाचलतैं निकसानौं, दूजो गिरि सीता आनौं।
तापरि जिनगृह अति सोहैं, पूजेतैं सब सुख होहैं ॥

ॐ ह्रीं द्वितीय वक्षारस्थ जिनगृहाय अर्घम ॥ २ ॥

शतच्यारि सु जोजन ऊचो, नीलाचलपैं जिन सूचो।
हों सीतापैं पंच सनानौं, जिनगेह तहां जजि जानौं ॥

ॐ ह्रीं तृतीय वक्षारस्य जिनगृहाय अर्घम् ॥ ३ ॥

देवारणी वनपैं सोहै, चोथो वक्षार सु होहै।
सीता उत्तर तट सारं, जिनगेह तहां सुखकारं॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ वक्षारस्थ जिनगृहाय अर्घं ॥ ४ ॥

वन भद्रशालकै पासै, सीता दक्षिण तट जासैं।
पंचम वक्षार विराजै, तापरि पूजौं जिनराजैं॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पूर्वविदेहे सीता दक्षिण तट वक्षारस्थ जिनगृहाय अर्घं ॥ ५ ॥

कंचनमय सुन्दर सोहै, थलयाकृत सब मन मोहै।
तापरि जिनगेह विराजै, जिन पूजत सब अघ भाजै॥

ॐ ह्रीं षष्ठम वक्षारस्थ जिन० अर्घं ॥ ६ ॥

निषधाचलतैं सीतापैं, आगो वक्षार सु आपैं।
जिनमन्दिर सोहैं तापैं, भवि पूजो नाशै पापैं॥

ॐ ह्रीं सप्तम वक्षारस्थ जिन० अर्घं ॥ ७ ॥

देवारण्य पास विराजैं, अष्टम वक्षार समाजैं।
जिनगेह तहां सुख काजै, पूजौं त्रिभुवन महाराजैं॥

ॐ ह्रीं अष्टम वक्षारस्थ जिन० अर्घं ॥ ८ ॥

आठौं वक्षारन माही, जिनगेह आठ बताई।
तिनकौं पूजौं मन लाई, कर पूरण अर्घ बनाई॥

ॐ ह्रीं धातकी खण्ड पश्चिम भागे अचल मेरु पूर्व दिशि विदेह विभागे अष्ट वक्षारस्थ अष्ट जिनगृहेभ्यः पूर्णार्घं ॥ ९ ॥

जिनबिंब सबैं इन माही, सत आठ रचो सविगाई।
तिन सबकौं पूजो भाई, निति पूरण अर्घ कराई॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पूर्वविदेह विभागस्थ वक्षार परि आठसै चोसठि सर्व जिनबिंबेभ्य पूर्णार्घं ॥ १० ॥

अथ जयमाला।

दोहा।

अचल मेरु पूरब विषैं, गिरि वक्षार विशाल।
आठ तिनैं जिन गेहकी, अब गाऊँ जयमाल ॥ १ ॥

त्रोटक छन्द।

जय मेरु तृतीय सु पूर्व विषैं, गिरि आठनवैं जिनराज लसैं। तुमकौं निति पूजत हौं जिनजी, अरजी हमरी इतनी सुनजी ॥ २ ॥ हमकौं इन थाननतैं उधरौ, चउ विसनतैं शिव माही धरो। गति च्यारिनत पण इन्द्रिनतैं, षट् कायनतैं दुःखदायनतैं ॥ ३ ॥ दशपंच सु जोग कहायनतैं, अप वेद सु खेद करायनतैं। पण बीस कसाय महा दुःखतैं, अठ ज्ञानन माही सु सातनतैं ॥ ४ ॥ इक केवलज्ञान मई सु करो, सत संजम थान सबैं सु हरो। त्रय दर्शन दूरि करो जिनजी, इक केवल दर्शन द्यो सुनजी ॥ ५ ॥

षट् लेस्यन लेस अलेश करो, भवि दोयनतैं मुझिकौं उधरो। पण सम्यकतैं नहीं काम हमैं, इक क्षायक सम्यक मोहि गमैं ॥ ६ ॥ हरिसणि असणि अहार हमैं, करिये अनहार जिनेन्द्र तुमैं। गुणथान चतुर्दश दूरि करो, उगनीस सु जीव समास हरो ॥ ७ ॥

परयाप्त छहौं हनि नाथ अबैं, दस प्राणनकौं जु उसाय सबैं। चउ संज्ञ ही नाशी जिनेन्द्र धनी, उपयोग दुषादश माहीं सुनी ॥ ८॥ करि केवल बोध रु दर्श सही, यह बीस प्ररूपण मेटि तुही। करि षोडश ध्यानन पार हमैं, सत पांच सु आश्रव मेटि हमैं ॥९॥ चतुसीति सु लक्षही जोनि हरो, सत कोडि निन्याणव अर्घ धरो। कुल कोटि यह हनिये निति ही, चउबीस मिटाय धरो तिन ही ॥१०॥ इतनी विनती हिरदे धरिये, सुख सम्पति सार सबै करिये। हम जाचत है जिनराज तुमैं, विबुधो महाचन्द्र शिवं सुखमैं ॥ ११ ॥

घत्ता छन्द।

इम मेरु तृतीये पूर्व समीपे, अठ वक्षारन माही लसैं।
जिनगेह अनूप तिहूं जग भूपं, पूजत हौं निति मन हुलसैं॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पूर्व वक्षारस्थ जिनगृहेभ्यो महार्घम् ॥ १२ ॥

दोहा।

अचल पूर्व वक्षारकी, पूजा अर जयमाल।
जो बांचै निति सरदहै, सो पावै शिवमाल ॥ १ ॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री अचलमेरु पूर्वविदेह वक्षारस्थ जिनगृह पूजा समाप्त।

अथ अचलमेरु पूर्वविदेह विजयार्द्ध जिनगृह पूजा।

अडिल्ल छन्द।

अचल मेरुके पूरव माहि सु जानिये, क्षेत्र विदेह महान् सु षोडश जिनगृह मानिये। तिनमैं षोडश रूपागिरी जिनगेह हैं, षोडश ले जिन आघौ पूजौं नेह हैं॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पूर्वविदेहस्थ षोडश जिनगृह जिनसमूह अत्रावतरावतर। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव सन्निधिकरणम्।

अथाष्टकं।

दोधक छन्द।

कञ्चन रत्न पवित्र सु झारी, ले जल पद्म पराग मिलारी।
मेरु तृतीय सु पूर्व विदेहे, पूजिह षोडश विजय सु गेहे॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पूर्वविदेहस्थ षोडश विजयार्द्ध जिनगृह समूहाय जलम्॥ १॥

कुंकुम चन्दन मेलि घसावो, गन्ध मनोहर आनन्द्यावो॥ मेरु तृती०॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पूर्वविदेहस्थ षोडश विजयार्ध जिन० समूहाय चन्दनम्॥ २॥

शालि अखण्डित गन्ध सु मण्डं, पुञ्ज करो जिनपद सु मंझं ॥ मेरु तृनी० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पूर्वविदेहस्थ षोडश विजयार्द्ध जिन० समूहाय अक्षतम् ॥ ३ ॥

पुष्प गुलाब कदंब कुरंडं, आदिक लेय जिनाग्र सु मण्डं ॥ मेरु तृनी० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पूर्वविदेहस्थ षोडश विजयार्द्ध जिन० समूहाय पुष्पम् । ४ ॥

मोदक मोदन आदि बनाबो, नैवजनैं जिनके पद ध्यावो ॥ मेरु तृनी० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पूर्वविदेहस्थ षोडश विजयार्द्ध जिनगृह समूहाय नैवेद्यम् ॥ ५ ॥

दीपक दीपित दिग्मुख ऐसो, आरति होत सु दीपक तैसो ॥ मेरु तृनी० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पूर्वविदेहस्थ षोडश विजयार्द्ध जिन० जिनसमूहाय दीपम् ॥ ६ ॥

धूप सुगन्ध दशांग बनाबो, खेय जिनाग्र सु कर्म नशाबो । मेरु तृनी० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पूर्वविदेहस्थ षोडश विजयार्द्ध जिनगृह जिनसमूहाय धूपं ॥ ७ ॥

श्रीफल आम्र सु दाडिम आदि, कञ्चन थाल भराय समाधि ॥ मेरु तृनी० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पूर्वविदेहस्थ षोडश विजयार्द्ध जिनगृह जिनसमूहाय फलं ॥ ८ ॥

नीर सुखं फल अतीव मनोज्ञं, अर्घं करो जिन पाद सु जोग्यं ॥ मेरु तृती० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पूर्वविदेहस्थ षोडश विजयार्द्ध जिन० जिनसमूहाय अर्घं ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येक अर्घं।

वेसरी छन्द।

मेरु भद्रवन पास विराजैं, शीत पार्श्व उत्तर दिशि छाजैं।
कच्छ देशके मध्य विराजैं, आदि गेह जजते अघ भाजैं॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पूर्वविदेहे कच्छा देशे प्रथम विजयार्द्धा स्थित जिनगृहायार्घं ॥ १ ॥

पूजि गेह द्वितीयो जिन केरो, दूज देशमधि राजत नेरो।
रूप्य अद्रि परि नित्य विराजैं, पूजतैं शुभवकौं अघ भाजैं॥

ॐ ह्रीं सुकच्छा देशे विजयार्द्ध स्थित जिन० अर्घं ॥ २ ॥

नील अद्रितैं दक्षिणमांही, उत्तरे सु नदितैं लखियाही।
रूप्य अद्रि जिनगेह मनोग्यं, पूजिये सु सुखकारण जोग्यं॥

ॐ ह्रीं महा कच्छा देश विजयार्द्ध स्थित जिन० अर्घम् ॥ ३ ॥

पूर्वमैं द्वितीय भंग नदीतैं, पश्चिममैं तृतीय वक्षगिरितै।
देश चोथ मही राजतनीको, रूप्य अद्रिगृह है जिनजीको॥

ॐ ह्रीं कच्छकावती देशस्थित चतुर्थ विजयार्द्ध जिन० अर्घं ॥४॥

पंचमे जन पद्दे विजयार्द्ध, होय आप गनतैं निति सार्द्ध।
होय कूंदर अकर्त्रिम होहै, तास गेह पूजो सुख होहै ॥
ॐ ह्रीं आवर्तादेश स्थित जिनगृहाय अर्घं ॥ ५ ॥
लांगलावर्तदेश सु माही, रूप्य आद्रि सुहवै सुखदाई।
तासपैं सु जिनगेह लखीजे, पूजतैं सकल पाप भगीजै ॥
ॐ ह्रीं लांगलावर्तदेशस्थित विजयार्द्ध जिन० अर्घं ॥ ६ ॥
व्यास दक्षिण सु उत्तर होहै, लंब पूर्व शुभ पश्चिम सोहै।
सप्तमं सु विजयारध ऐसो, तास गेह जिनको जजि तैसो ॥
ॐ ह्रीं पुष्कलादेश स्थित विजयार्द्ध जिनगृहाय अर्घं ॥७॥
भूत नाम वन पास विराजैं, अष्टमं सु विजयारध छाजैं।
तासको जिनगृह सुखकारी, पूजतैं सकल ही अघहारी ॥
ॐ ह्रीं अष्टम पुष्कलावर्ती देश विजयार्द्ध जिनगृहाय अर्घं ॥८॥
भद्रशाल वन पास कहीजे, सीततैं उत्तरमाहि मनीजे।
रूप्य आद्रि तिसपैं जिनगेहं, नित्यपूजि भवि मोद करेहं ॥
ॐ ह्रीं वक्षादेश विजयार्द्ध स्थित जिन० अर्घम् ॥ ९ ॥
देशमाही सु सुवक्षही माही, रूप्य अद्रि लखिये सुखदाई।
जैनगेह तिसपैं भवतारी, पूजिये सकलपाप विदारी ॥
ॐ ह्रीं सुवक्षादेश विजयारध स्थित जिन० अर्घम् ॥ १० ॥

निषधाचल ही नाम तही जानौं, उतरे सु सरिता दक्षिण मानो। रूप्य अद्रि तिसपै जिन पद्मं, पूजिये भवि जिनं पद पद्मं ॥

ॐ ह्रीं महावक्षा देश स्थित विजयारध जिन० अर्घम् ॥११॥

वक्षकावतीय देश सु माही, द्वादश जिनगृह लखि नाही। इन्द्र नागपति पूजित जानौं, पूजतैं सफल सौख्य समानौं ॥

ॐ ह्रीं कक्षकावती देश विजयार्द्ध स्थित जिनगृहाय अर्घम् ॥ १२ ॥

रूप्य अद्रिनैं उपरि मिलानौं, गेह जैनपतिको सुख खानौं। नित्य पूजि जिनपं सुखकारी, और नाही जगमैं दुखहारी ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशम देश विजयारध स्थित जिन० अर्घम् ॥ १३ ॥

रूप्य अद्रि लखि रूप्य मई है, देश च्यारि दश माही लई हैं। तासपैं जिनगृह लखिये हैं, पूजतैं सकल पाप दहै हैं ॥

ॐ ह्रीं चतुर्दशम देश स्थित विजयारध जिन० अर्घम् ॥ १४॥

देश माहि नहीं अन्य कुलिंगी, तिन लिंग निति हैं जिन लिंगी। तास माही विजयार्द्ध सोहै, तासपै जिनगृह जजियो हैं ॥

ॐ ह्रीं पंचदशम विजयार्द्ध स्थित जिनगृहाय अर्घं ॥१५॥

देव नाम वनतैं निकटे हैं, षोडशो जिनगृहं लखिये है। पूजिये सकल सार पिछानौं, अर्घ लेय करिकैं हित जानौ ॥

ॐ ह्रीं षोडशम देश विजयारध जिन० अर्घम् ॥ १६ ॥

मेरु तीसर द्वी पूर्व विदेहे, षोडशं जिनगृह धरि नेहे। पूर्ण अर्घ करि पूजि जिनेन्द्रं, सार सम्पति त्रिधायन सान्द्रं ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पूर्व विदेह षोडश विजयारथ जिनगृहेभ्यो पूर्णार्घम ॥ १७ ॥

बिम्ब सप्त दशसै अठबीसा, सर्व संख्य ऐसो जगदीसा। पूण अर्घ करि पूजौं स्वामी, मोहि तारो त्रिभुवन नामी ॥

ॐ ह्रीं धातकीखण्डे पश्चिमभागे अचलमेरु पूर्वदिशि षोडश विदेह विजयारथ जिनगृह स्थित सतरासै अठाईस सर्व जिनबिम्बेभ्यः पूर्णार्घम ॥ १८ ॥

अथ जयमाला।

दोहा।

अचल मेरुकी पूर्वमें, विजयार्द्ध जिन गेह।
तिनकी अब जयमाल है, सुनौं भव्य धरि नेह ॥ १॥

पद्धड़ी-छन्द।

जय अचल मेरुके पूर्व माहि, तुम क्षेत्र विदेह नमें रहा हि। जय षोडश विजयारथ जिनेन्द्र, तुमकौं निति ध्यावत हैं सुरेन्द्र ॥ २ ॥ जय जगपति तुम अतिशय लसन्त, चउतीस सदा सुखकर महन्त।

जय स्वेद रहत तुम तनु कहाय, पुनि मल नहीं रुधिर सु दुग्ध छाय ॥ ३ ॥ जय तुम तनु सहनन प्रथम होत, जय प्रथम होत संस्थान द्योत। जय रूप अनूपम तुम लसन्त, तुम तनु जय गन्ध सुगन्ध वन्त ॥ ४ ॥ जय लक्षण तुम तनु सहस आठ, बल अतुल तुमैं जन्मतहि ठाठ। जय हितमित वचन सदा बहोत, यह दश अतिशय तुम जन्म होत ॥ ५ ॥

शत जोजनमें सुभिक्ष सार, जय गगन गमन तुमरो समार। जय प्राणि बध नहि होत तत्र, उपसर्ग नहीं नहि हार यत्र ॥ ६ ॥ जय तुम मुख चउ दिसमें लखाय, सब वियापति तुम नाम पाय। छाया वर्जित तुम तनु लसन्त, नहीं नेत्र पलक तुम माहि सन्त ॥ ७ ॥ नहि बढ़त केश नख तुम जगीश, यह दश अतिशय केवल गरीश। जय मागधि भाषा कोश च्यारि, जय सब जिय मैत्रि भाव सार ॥ ८ ॥ सब ऋतुके फल अर फूल दीस, जय दर्पण समभूमि जगीस। जय मन्द वाय वाजत सुगन्ध, जय सबकौं होत परम अनन्द ॥ ९ ॥ जोजन मित उज्ज्वल भूमि होत, गन्धोदक वर्षा गन्ध द्योत। जय कमल रचैं सुर पाद हेठ, जय जय जय जय सुर शब्द जेठ ॥ १० ॥

जय निर्मल दिश अर गगन होत, फुनि धर्म

चक्र आगैं उद्योत। जय आठ सु मंगल होत सार। यह चौदह अतिशय देव कार ॥ ११ ॥ जय ऐसैं अतिशय हैं महान, चौंतीस लसैं अघ करत हानि। जय इन करि निति राजत जिनेन्द्र, तुम चरण कमल पूजैं सुरेन्द्र ॥१२॥ अब अरज हमारी मानि मानि, बुध महाचन्द्र भव भानि भानि। संसार कष्ट चकचूर चूर, आनन्द सार सुख पूर पूर ॥ १३ ॥

घत्ता छन्द।

यह जिन गुणमाला परम रसाला,
अचल मेरु दिश पूर्व मही।
विजयारध जिनकी है निति तिनकी,
पूजौं भक्ति यहाय सही ॥ १४ ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पूर्वविदेह विजयार्द्ध जिनगृहेभ्यो महार्घं।

सोरठा।

जो बांचैं यह पाठ, मन वच तन सुध करि सही।
सो पावै सुख ठाठ, अनुक्रमतैं शिव पद लहै ॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री अचलमेरु पूर्वविदेह विजयार्द्ध जिनगृह पूजा समाप्त।

अथ अचलमेरु पश्चिमविदेह विभाग वक्षार जिनगृह पूजा।

दोहा।

अचलमेरु पश्चिम विषैं, विजयारध जिन गेह।
तिनके जिन आवौ अबैं, पूजौं हितकरि नेह॥ १॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पश्चिम वक्षारस्थ जिनगृह जिनसमूह अत्रावतरावतर। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

अथाष्टकं।

सुन्दरी छन्द।

विमल नीर सु कंचन पात्रकं, भरि मनोहर धार सु दे त्रिकं। अचल पश्चिम गेह जजौं सदा, गिर वक्षार विषैं लखिकैं मुदा॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पश्चिम वक्षार जिनगृह समूहाय जलम्॥ १॥

अगर कुंकुम मेलि घसाइकैं, जिन पदांवुज प्रीति चढ़ाइकैं। अचल०॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पश्चिम वक्षार जिनगृह समूहाय चन्दनं॥ २॥

अमल तन्दुल उज्जल पावनें, जिन पदाग्र सु पुंज रचावनें। अचल०॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पश्चिम वक्षार जिनगृह समूहाय अक्षतं॥३॥

कमल कुन्द सुगन्धित पुष्पकं, कनक पात्र गृहो मन पुष्पकं। अचल०॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पश्चिम वक्षार जिनगृह समूहाय पुष्पं ॥ ४ ॥

रस मिलाय सु भक्ष्य बनाइकैं, करि निवेद्य क्षुधा दुःख घापकैं। अचल० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पश्चिम वक्षार जिन० समूहाय नैवेद्यं ॥ ५ ॥

विमल जोति सु दीप जगाइकैं, तिमिर मोह मिटावन लाइकैं। अचल० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पश्चिमवक्षार जिन० समूहाय दीपम् ॥ ६ ॥

अगर आदि सुगन्धित द्रव्यक, जिन पदांबुज खेय सु नव्यक। अचल० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पश्चिम वक्षार जिन० समूहाय धूपम् ॥ ७ ॥

फल मनोहर दाडिम आदिकं, कनक भाजन लेय समाधिकं। अचल० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पश्चिम वक्षार जिन० समूहाय फलं ॥ ८ ॥

जल फलादि सु द्रव्य मिलाइकैं, करि सु अर्घ सदा चित्त लाइकैं। अचल० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पश्चिम वक्षार जिन० समूहाय अर्घम् ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येक अर्घं।

अडिल छन्द।

मेरु अचलतैं पश्चिम गिरि वक्षार हैं, सीतोदा उत्तर तटमैं सुखकार हैं। तापरि जिनगृह होत सदा सुखकार हैं, पूजौं मैं जिन प्रतिमा जग आधार हैं ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पश्चिम सीतोदा उत्तरतटस्थ प्रथमवक्षार जिनगृहाय अर्घम् ॥ १ ॥

दूजो गिरि वक्षार तहां लखी लीजिये, सीतोदा उत्तर तट माही जपीजिये। तापरि० ॥

ॐ ह्रीं द्वितीय वक्षारस्थ जिनगृहाय अर्घम् ॥ २ ॥

तीजो गिरि वक्षार सोनमय जानिये, चऊ शत जोजन उन्नत नील चल मानिये। सरिता पसि सु उन्नत जोजन पंचसैं, तहां गेह जिन केरो पूजत अघ नशैं ॥

ॐ ह्रीं तृतीय वक्षारस्थ जिनगृहाय अर्घम् ॥ ३ ॥

सीतोदा उत्तर तट गिरि वक्षार हैं, तापरि जिन-गृह सुन्दर जग आधार हैं। पूजो मन वच काय मनाय सु अर्घतैं, पूजेतैं शिव पाय घटे नही स्वर्गतैं ॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ वक्षारस्थ जिन० अर्घं ॥ ४ ॥

भद्रशाल वन पासि देशके भागमैं, सीतोदा दक्षिण तट जिनगृह लागमैं। गिरि वक्षार सु पंचम सो लखि लीजिये, जिनगृह तापरि होन सदा ही नमीजिये।

ॐ ह्रीं सीतोदा दक्षिण तटस्थ पंचम वक्षार जिनगृहाय अर्घम् ॥ ५ ॥

नाहि जहां अतिवृष्टि आदि ईति कदा, ऐसो देश विदेह मनोहर है सदा। तास विभाग सु माही वक्षार सदा लसैं, तापरि जिनगृह पूजत ही स्वर्गो बसैं ॥

ॐ ह्रीं षष्टम वक्षारस्थ जिन० अर्घम् ॥ ६ ॥

सोन मई निषधाचल सीतोदा नदैं, गिरि वक्षार विराजत जिनगृह शुभ घटैं। जिनवर नामधि पूजत, दुःख भजि सुख ह्वै, तातैं भविकरि अर्घ जजो जिन भव दहै ॥

ॐ ह्रीं सप्तम वक्षारस्थ जिन० अर्घम् ॥ ७ ॥

अष्टम गिरि वक्षार अचल पश्चिम विष, धातकी खण्ड सुपश्चिम भाग विषैं लसैं ता परि जिनगृह जिन प्रतिमा सत आठ हैं, पूजत ही दुःख जाय होय बहु थाट है ॥

ॐ ह्रीं अष्टम वक्षारस्थ जिन० अर्घम् ॥ ८ ॥

धातकी खण्ड मही दुय मेरु सदा लसैं, पश्चिम भागैं अचल तास पश्चिम विषैं, गिरि वक्षार सु आठ गेह जिनके सदा, पूर्ण अर्घ बनाय जजौं निश दिन मुदा ॥

ॐ ह्रीं नवम वक्षारस्थ जिन० अर्घं ॥ ९ ॥

बिम्ब आठसौ चौसठि रत्नमई महां, गिरि वक्षारन मांही गेह जिनके जहां। रत्न मई भनु तनु शत पंच सु उन्नतं, पूर्ण अर्घं बनाय जिजौं जिनपद द्विनं ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पश्चिम वक्षारस्थ आठसै चौसठि सर्व जिनबिंबेभ्यः पूर्णार्घं ॥ १० ॥

अथ जयमाला।

सोरठा।

अचल मेरु तैं जानि, पश्चिम गिरि वक्षार है।
तिनपैं जिनगृह मानि, अब जय माला जपत हौं॥ १॥

तोटक छन्द।

जय मेरु तृतीय सुपश्चिममें, जिनराज बसो गिरि अष्टममें। प्रतिहार्य सु आठ सदा जुत हो, सु अनन्त चतुष्टय संजुत हो॥ २॥ जय वृक्ष अशोक अशोक करैं, सुर पुष्प सु वृष्टि सुगन्ध झरैं। जयवाणी तुमैं सुखदायक हैं, शुभ चामर उज्जल ढारत हैं।३॥ जयसिंह सुपीठ आदित्यप्रभ, लखि कुण्डल मंडित नाथ विभं। जग दुंदुभि होत सुमत्त धनं, शुभ छत्र सु तीन प्रभा करनं। ४ प्रतिहार्य यहैं तुम रै जिनजी, सुर कारत हैं तुम पैं सुनजी। सु अनन्त सुदर्शन नाथ तुमैं, शुभ ज्ञान अनन्त लसैं तुममें ५॥ सुख है जु अनन्त तुमैं नितिहिं, सु अनन्त वीर्य जिनेंद्र तुही। यह नन्त चतुष्टय राजत हो, सुखसागर माहि विराजत हो। ६ तुमकौं हम वंदत हैं जिनजी, अरजी हमरी इतनी सुनजी। नहीं जाचत वासव वास हमैं, निति होहु पदांबुज भक्ति तुमैं। ७॥ तुमरे पद में मन राचत हैं, निति हो तुम सेवत पाद

चढ़ै। महचन्द्र सु पन्डित बीनतरी, सुनिये जिनजी दुःख दीन तरी ॥ ८ ॥

घत्ता।

यह मेरु तृतये पश्चिम कोये,
गिरिवक्षार जिनं प्रणमौं।
भव दुःख मिटाओ तुम पद ध्याओ,
तुम पद पद्म सदा विनमौं ॥

ॐ ह्रीं अचल मेरु पश्चिम वक्षार स्थित जिनगृहेभ्यो महार्घम् ॥ ९ ॥

आर्या छन्द।

मेरु अचल पश्चिममें, गिरि वक्षारन जिनेंद्र गृह पूजा।
जो नर थाचैं श्रद्धै, ता सम जगमें न सुखि दूजा ॥१०॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री अचलमेरु पश्चिम वक्षार जिनगृह पूजा समाप्ता।

अथ अचलमेरुपश्चिमविदेहविजयार्द्ध जिनगृह पूजा।

दोधक छन्द।

मेरु तृतीय सु पश्चिम मांही, क्षेत्र विदेह सु षोडश थाहा। ता मधि रूप गिरि जिन गेहा, ते जिन आग विराज सनेहा ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पश्चिम विदेह विजयार्द्ध स्थित जिन-

समूह अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधापनं।

अथाष्टकम्।

लक्ष्मीधरा छन्द।

नीर निर्मल्य गंगादिको लेयकै, पात्रमें धारि-धारा महादेयकैं। पूजिये मेरुके पश्चिम मेरुपके, जैन गेहं सदा नित्य ही भूपके॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पश्चिम विदेह विजयार्द्ध जिनगृह समुदाय जलं॥ १॥

चन्दनं कुंकुमं मेलिशारं घनं।
गन्धसंजुक्त आलापकौं संहने॥ पूजिये०॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पश्चिम विदेह विजयारध जिनगृह समूदाय चंदनं॥ २॥

सालि आमोद सम्मोदि सम्मोदितं।
लेय पुंजं करो पश्च सन्शोधतं॥ पूजिये०॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पश्चिम विदेय विजयारध जिनगृह समूदाय अक्षतम्॥ ३॥

केतकी चंपकं पद्मकं सार हैं।
लेय सुगन्ध गन्धी कृतं धार हैं॥ पूजिये०॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पश्चिम विदेह विजयारध जिनगृह समूदाय पुष्पम्॥ ४॥

घेवरं बावरं मोदकं लीजिये।
कंचने पात्रके थापनं कीजिये ॥ पूजिये० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पश्चिम विदेह विजयारध जिनगृह समुदाय नैवेद्यम् ॥ ५ ॥

दीपकं ज्योति संदीप्त ऐसो महो।
आरतीनाथकी मोहमोदं रहो ॥ पूजिये० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पश्चिम विदेह विजयारध जिनगृह समुदाय दीपम् ॥ ६ ॥

धूपसंधूपीनं कर्मकाष्टादिकं।
खेइये जैन पादाग्र खण्डादिकं ॥ पूजिये० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पश्चिम विदेह विजयारध जिनगृह समुदाय धूपम् ॥ ७ ॥

आम्रकं दाडिमं पूगकं श्रीफलं।
लीजिये नेत्र नाशाहरं तं फलं ॥ पूजिये० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पश्चिम विदेह विजयारध जिनगृह समुदाय फलम् ॥ ८ ॥

नीरमुख्यं फलांतं सबैं लेयकैं।
अर्घ कीजे सबैं द्रव्यकौं लेयकैं ॥ पूजिये० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पश्चिम विदेह विजयारध जिनगृह समुदाय अर्घं ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येक अर्घं।

दोहा।

अतिवृष्टि जामैं नहि, ऐसो देश विदेह।
विजयारध जिनगेहकौं, पूजो निति धरि नेह॥

ॐ ह्रीं अचलदेश विदेहे पद्मानाम्नि विजयारध जिनगृहाय अर्घं॥१॥

अनावृष्टि नहि पाईये, देश सु पद्मानाम।
तामधि विजियारध विषैं, जिनगृह पूजो ताम॥

ॐ ह्रीं द्वितीय विजयारध जिन० अर्घं॥ २॥

मूषक इति नहीं जहां, देश महापद्मा ही।
तामधि विजयारध विषैं, जिनगृह पूजो ताही॥

ॐ ह्रीं महापद्मादेश विजयारध जिन० अर्घम्॥ ३॥

टाडिनामा इति नही, पद्मकावती देश।
तामधि विजयारध विषैं, जिनगृह पूजौं तेश॥

ॐ ह्रीं पद्मकावतीदेश विजयारध जिन० अर्घम्॥ ४॥

सूवा इनि न पाइये, देश संचला नाम।
तामधि विजयारध उपरि, जिनगृह पूजो ताम॥

ॐ ह्रीं संचलनामदेश विजयारध जिन० अर्घम्॥ ५॥

निज नृप सेना नाहि जहां, नलिनी देश विशाल।
तामधि रूपगिरि विषैं, जिनगृह पूजि रसाल॥

ॐ ह्रीं नलिनिदेश विजयारध जिन० अर्घम्॥ ६॥

नाहिसेन पर नृपतनी, कुमुदा देश मझारी।
विजयारध जिनगेह जिन, पूजो भवदधि सार॥

ॐ ह्रीं कुमुदादेश विजयारध जिन० अर्घम् ॥ ७ ॥

मारी नाहि जहां कदा, सरिता देश मनोज्ञ।
विजयारध जिनगेह जिन, पूजो जिन दुःख जोग्य॥

ॐ ह्रीं सरितादेश विजयारध जिन० अर्घम् ॥ ८ ॥

सीतोदा दक्षिण विषैं, वपा देश विशाल।
जिनगृह रूपागिरि उपरि, पूजौं अर्घ करपाल॥

ॐ ह्रीं वप्रादेश विजयारध जिन० अर्घम् ॥ ९ ॥

नाहि कदा दुर्भिक्ष जह, देश सुवप्रा नाम।
विजयारध जिन सद्म जिन, पूजौं आठौं जाम॥

ॐ ह्रीं सुवप्रादेश विजयारध जिन० अर्घम ॥ १० ॥

सदा रहै इक काल जह, महावप्र है देश।
तामधि रूपाचल भवन, पूजो पूज्य सुरेश॥

ॐ ह्रीं महावप्रा देश विजयार्द्ध जिन० अर्घं॥ ११ ॥

कोटि पूर्व उत्कृष्ट थिति, वप्रकावती देश।
रुपाचल जिन आयतन, पूजत होत सुरेश॥

ॐ ह्रीं वप्रकावतीदेश विजयार्द्ध जिन० अर्घ ॥१२॥

पञ्चशतक धनु तुङ्ग तन, गन्धा देश मझार।
रूपाचल जिनगेह जिन, पूजो सब सुखकार॥

ॐ ह्रीं गन्धादेश विजयार्द्ध जिनगृहाय अर्घं ॥१३॥

काल चतुर्थम आदि जह, देश सुगन्धा माही।
रुपाचल जिन भवन जिन, पूजो परम सुखाही॥

ॐ ह्रीं सुगन्धादेश विजयार्द्ध जिन० अर्घं ॥ १४ ॥

रहत सु वर्षाकाल मही, देश गन्धिला माही।
विजयारध जिनगेह जिन, पूजो परम समाही॥

ॐ ह्रीं गन्धिलादेश विजयार्द्ध जिन० अर्घं॥ १५॥

भव्यनके निति मुक्ति जह, गन्धमालिनी देश।
विजयारध जिन भवन जिन, पूजत जात कलेश॥

ॐ ह्रीं गन्धमालिनी देश विजयार्द्ध जिनगृहाय अर्घं॥ १६॥

अचलमेरु पश्चिम विषैं, विजयारध जिनगेह।
षोडश हैं तिन मध्य जिन, पूंजो निति धरि नेह॥

ॐ ह्रीं धातकी खण्डे अचलमेरु पश्चिम भागे षोडश विजयार्द्ध जिनगृहाय अर्घम्॥ १७॥

बिंब सर्व लखि लीजिये, सतरासै अठवीस।
सम्पूर्ण अर्घ बनाय करि, पूजो ते जगदीस॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पश्चिम विजयार्द्ध जिनगृह समूह मध्ये सतरासे अठाईस सर्व जिनबिम्बेभ्यः पूर्णार्घम्॥ १८॥

अथ जयमाला।

दोहा।

अचलमेरु पश्चिम विषैं, जिनगृह गिरि विजयारध।
अब जयमाला जपत हौं, सुनौं भव्य सुखशार्द्ध॥१॥

राग-दीपचन्दी तथा कालिंगड़ो मिश्रित।

जय जय जय जिनराई, गिरि अचल रूप अपराई।
जय जय०॥ टेक॥

जय तुम पंचकल्याणक माही, सुरपति पूजत पाई।
गर्भ माही षट्मास प्रथम ही, रत्न वृष्टि छवि छाई॥
जय जय० ॥ गिरि० ॥ २ ॥

तुम जननी पद सेवत निति प्रति, रुचिक वासिनी आई।
केई नाचत मान प्रसन्नके, ईश्वर धरि गाई॥
जय जय० ॥ गिरि० ॥ ३ ॥

सनन सनन सन सन सन सन सन, होत मनोज्ञ सु खाई। तनन तनन तनन ननननननन, तान तान तननाई ॥ जय जय० ॥ गिरि० ॥ ४ ॥

झनन झनन झनन ननननननन नूपुर बाजत पाई।
द्रुम द्रुम द्रुम द्रुम द्रुम द्रुम द्रुम द्रुम द्रुम होत मृदंग बजाई॥
जय जय० ॥ गिरि० ॥ ५ ॥

छम छम छम छम छम छम छम छम घुघरु नाद कराई।
घनन घनन घनन ननननननन घण्ट घना घन काई॥
जय जय० ॥ गिरि० ॥ ६ ॥

इम निति उत्सव होत गर्भ सम, तदिही सुरपति आई।
गर्भ कल्याणका पूजन करि करि, तुम पद पद्म जपाई॥
जय जय० ॥ गिरि० ॥ ७ ॥

करिकरि उत्सव अतिमनोज्ञ जह, गर्भकल्याणक माही।
निज थल सुरपति गये सुर संजुत, उत्सव करि सुखदाई॥
जय जय० ॥ गिरि० ॥ ८ ॥

ऐसी महिमा है तुमरी जिन, और कहीं नहीं पाई।
तुमकौं नित्य जपैं सुर सुरपति, पर भव नर भव माई॥
जय जय० ॥ गिरि० ॥ ९ ॥

अब तुमकौं निति ध्यावत पंडित, महाचन्द्र सुखदाई।
और कछु नहि चाहि हमारै, तुम पद सेव मिलाई॥
जय जय० ॥ गिरि० ॥ १० ॥

मालिनी छन्द।

इति अचल सु मेरो, पश्चिम भाग माही।
विजय अरध गेहे, षोडशं तत्र थाही॥
तिन मधि जिन नाथं, भव्य पूजो सदा ही।
भव भव सुखदाई, जन्म दुःखं हराई॥११॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु पश्चिम विजयार्द्ध जिनगृहेभ्यो महार्घं।

सोरठा।

अचल मेरु विजयारध, पश्चिममें जिन गेह हैं।
जो पूजो सुख साधं, तातैं शिव तिय नेह हैं॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री अचलमेरु पश्चिम विजयार्द्ध जिनगृह पूजा समाप्ता।

अथ अचलमेरु षट्कुलाचलस्थ जिनगृह पूजा।

मत्तगयंद छन्द।

मेरु तृतीय सु दक्षिण उत्तर, माही कुलाचल नित्य विराजैं। षट तिन ऊपरि षट् जिन मन्दिर, माही सु बिंब मनोहर राजैं॥ एक मही शत आठ प्रमाण जु, रत्न मई सब सार समाजैं। ते जिन आप विराजहु अत्र सु पूजन हौं शिवके सुख काजैं॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु षट्कुलाचलस्थ जिनगृह समूह अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधापनं।

अथाष्टकं।

॥ संस्कृतं॥

हरिणी छन्दः।

विमल तरंग शुद्धं, नीरं समादाय मनोहरं।
जननमरणादिनां, नाशार्थमत्र ददाम्यहं॥
अचल गिरि जातं, षट् संख्यं कुलाद्रि।
समुद्भवं जिनगृहमहं नित्यं, शारं यजाम्यघनाशकं॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु षटकुलाचलस्थ जिनगृह जिनसमूह जलम्॥ १॥

मलय गिरिजं सद्गंधं सारमादाय सुगन्धितं।

भवतपहरार्थं, संघष्यं प्रमोदकरं परं ॥

॥ अचल गिरि० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु षटकुलाचलस्थ जिनगृह जिन समूदाय चंदनं ॥ २ ॥

परिमल लदा लेपौ, यंतर छवि सन्निभं।

शुभतर महा पूंजान्, पुण्यानिव प्रकरोम्यहं ॥

॥ अचल गिरि० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु षटकुलाचलस्थ जिनगृह जिनसमूदाय अक्षतम् ॥ ३ ॥

कुमुद सुखसत् पुष्पं, पुष्पजनं घन गन्धकं

परिमलमिलालिझङ्कारं, सुमनस्थ सन्मथं ॥

॥ अचल गिरि० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु षटकुलाचलस्थ जिनगृह जिन समूदाय पुष्पम् । ४ ॥

घृतसुखरसोत्पन्नं, नंदन्निवेद्यमथाप्य च।

सुखहर महाक्षुन्निर्नाशं, करोमि जिनाग्रके ॥

॥ अचल गिरि० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु षटकुलाचलस्थ जिन० समूदाय नैवेद्यं ॥ ५ ॥

घृतभवमथो कर्पूराज्जं, सुदिपित दिग्मुखं।

भवभव तमोमोहोत्पन्नांतमाप्य सुदीपकं ॥

॥ अचल गिरि० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु षटकुलाचलस्थ जिन० समूदाय दीपम् ॥ ६ ॥

अगरु मुखजं धूपं, ग्राह्य प्रधूपित स्वर्गृहं।
सुखकरमनर्घ्यं, संसारं जिनेन्द्रपदद्वयं॥
॥ अचल गिरि० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु षटकुलाचलस्थ जिन० समूहाय धूपम् ॥ ७॥

फलमलमनोपक्वं, आम्राद्रिकं हृदिमोद कृत कनक-
मय पात्रे सम्नीय, नयामि लयांत्यके॥ अचल गिरि०॥
ॐ ह्रीं अचलमेरु षटकुलाचलस्थ जिन० समूहाय फलं॥ ८॥

जल मुख फलांतं, संप्राप्याष्ट संख्य-
मनर्घ्यं कृत् भवरद्व हरं, चार्घं जिनेन्द्र पद्र द्वयं॥
॥ अचल गिरि० ॥
ॐ ह्रीं अचलमेरु षटकुलाचलस्थ जिन० समूहाय अर्घम् ॥९॥

अथ प्रत्येकार्घाणि।

॥ संस्कृतं ॥

वंशस्थं छन्दः।

तृतीय मेरोः शुभ, दक्षिणे दिशि कुलाचले।
आदिगते च संस्थितं, यजामि चैत्यालयकेणवै॥
जगद्धितं नाथ जिनेन्द्र संयुतं॥
ॐ ह्रीं अचलमेरु दक्षिण दिशि हिमवन कुलाचलस्थ
जिनगृहाय अर्घं॥ १॥
द्वितीय केथो कुल पर्वते स्थितं।
जिनेन्द्र सद्म प्रथित जगत्त्रये॥ यजामि चैत्या०॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु दक्षिण दिशि हिमवन कुलाचलस्थ जिन० अर्घं ॥ २ ॥

कुलाचले सन्निषधे तृतीयके स्थितं।
चतुर्योजनसद्धतोन्नते ॥ यजामि चैत्या० ॥

ॐ ह्रीं निषधकुलाचलस्थ जिनगृहाय अर्घम् ॥ ३ ॥

तृतीय मेरो दिशि चोत्तर स्थिते।
कुलाद्रि नीले चल रूर संस्थितं ॥ यजामि चैत्या० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरोत्तर दिशि नीलकुलाचलस्थ जिन० अर्घम् ॥ ४ ॥

कुलाचले रूप्यमये च रुक्मिके।
तृतीय मेरोत्तरगे च संस्थितं ॥ यजामि चैत्या० ॥

ॐ ह्रीं रुक्मिकुलाचलस्थ जिनगृहाय अर्घं ॥ ५ ॥

ऐरावतक्षेत्र समीप संस्थिते स्थितं।
कुलाद्रौ शिखरीति नामके ॥ यजामि चैत्या० ॥

ॐ ह्रीं शिखरी कुलाचलस्थ जिनगृहाय अर्घम् ॥ ६ ॥

मेरो तृतीयाचलकस्य षण्मिता जिनालयैः संयुतकाः कुलाद्रयः तेषां जिनागार घनान्, समर्चये जलाद्विकार्घेण सु पूर्णकेन च ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरो षट्कुलाचलस्थ जिन० पूर्णार्घम् ॥७॥

कुलाचलानां जिनबिंब संघकं, यजे सदा षट्स्थान संमितं। तथा युतं तथाष्टपष्टचतुः प्रमेन हि जलादि सारैः शुभकारकाष्टकैः ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु षटकुलाचलस्थ शताष्ट चत्वारिंशमित सर्व जिनविम्बेभ्यः पूर्णार्घम् ॥ ८ ॥

अथ जयमाला ।

॥ संस्कृतं ॥

आर्या छन्द ।

मेरु तृतीय कल्पाचल नाम, षट्कुलाचलानां च ।
जिनगृह संघ जिनानां, भणामि जयमालिकां श्रृणुत॥१॥

स्रग्विणी छन्द ।

नाथ नन्दस्य चर्द्धस्यसं कारभो, विद्धि मांद्रिन मुख्यं सदास्त्वं विभो । ज्ञानकावर्ण मथ दर्शनावर्णकं, नाशयाय प्रकृत्या मह्रा पंचकं ॥ २ ॥ दर्शनावर्ण मष्टांक मानं घनं, वेदनीयं द्विधाच प्रकित्यास्थितं । मोहनीयं द्विधादर्श चारित्रकं, दर्शनं च त्रिधा चाष्ट चारित्रकं ॥ ३ ॥ पंचविंशत्यनं ताद्विषंधादिकं, नाश याय प्रभो मे महादुःखिनः । आयुरत्र प्रहत्य प्रदुःख प्रदं, संकुरुस्व प्रसौख्य चतुःसरुपकं ॥ ४ ॥ नाम कर्म द्विचत्वारि स्वरुपं द्विधा, पिंडगं तच्चा पिंडगं रुपकं । पिंडगं तत्प्रकृत्यात्रयोद्विशमितं, एककोनं तु त्रिशांत्व पिंडोद्भवं ॥ ५ ॥

पिंडगं तत्प्रकृत्यात्रिषष्टिप्रभं, नासयै तत्सदा नाम कर्म प्रभो, गोत्र कर्म द्विधं चोच्चनीचोद्भवं, नास-

घायप्रकुष्मो च गोत्रोच्छिनं ॥६॥ अन्तरायं सदा पंच संख्यं मम, नाशय प्रोच्यदानन्दके स्थापय, एतदष्ट प्रमं कर्म संघं विभो, संयुतं तत्प्रकृत्यादि भिर्नाशयः ॥७॥ कर्म हीनं कुरु प्राप्त बोधं तथा, दर्शने केवले मां सदा संस्थितं, देव पुत्कार मेनं श्रृणुत्वं सदा, पंडिताद्रि महाचन्द्र नाम्न प्रभो ॥ ८ ॥

मालिनी छन्द।

अचल विमलमेरो षट्कुलेष्वद्रिकेषु, जिनगृह मथ षट्कं संस्थितं तत्र नित्यं। सकल सुखकरं तत्पूजयामि प्रयत्नात्कुलयजन विधानोहं शिवप्राप्ति हेतोः ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु षट्कुलाचलस्थ जिनगृहसमूहाय महार्घम् ॥९॥

शालिनी छन्द।

मेरोवर्णाशत्रुनीघस्थ गेहान्, जैनान्नित्यान्। येयजंति प्रभक्त्या ऐंद्रं, सौख्यं ते प्रभुक्त्वा क्रमेण। मुक्ति यांति प्राप्त जन्मादि दुःखं ॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री अचलमेरु षट्कुलाचलस्थ जिनगृह पूजा संस्कृतरूपा समाप्ता।

अथ अचलमेरु भरतक्षेत्र विजयार्द्ध जिनगृह पूजा।

दोहा।

अचलमेरु दक्षिण विषै, भरतक्षेत्र विजयारध।
ता परि जिनगृह जिन बिम्बो, थापो ते सब सार्द्ध ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु भरतक्षेत्र विजयारधस्थित जिनगृह जिनसमूह अत्रावतरावतर। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

चाल लावणी में।

करो भव फेरी मम जेरी, अचल भरत विजयार्द्ध जिनगृह
पूजो पद तेरी। करो० ॥ टेक ॥

कञ्चन कुम्भ भराय नीरतैं, करमाही लेरी।
जन्म मरण नाशक तुमकौं लखि, धार करौं नेरी ॥ करो भव० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु भरतक्षेत्र विजयारध जिनगृहाय जलम् ॥ १ ॥

केशरि चन्दन मेलि मनोहर, घसि करि गंधेरी।
भव तप नाशक तुम लखि पूजौं, चरणकमल ढेरी ॥ करो० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु भरतक्षेत्र विजारध जिनगृहाय चन्दनं ॥ २ ॥

शालि अखण्डित परिमल मण्डित, इन्दुकरण सेरी।
अक्षयपद करता तुमकौं लखि, पुञ्ज करो देरी ॥ करो भव० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु भरतक्षेत्र विजयारध जिनगृहाय अक्षतं ॥ ३ ॥

कमल कुन्द मन्दार मालती, चम्प गुलाबेरी।
ऐसे पुष्पन तुम पद पूजौं, काम बाण घेरी ॥करो भव०॥
ॐ ह्रीं अचलमेरु भरतक्षेत्र विजयारध जिनगृहाय पुष्पं ॥ ४ ॥
नाना रस नैवेद्य बनावौं, खाजा फिणेरी।
रोगक्षुधा नाशनके कारण, तुम पद पूजेरी ॥करो भव०॥
ॐ ह्रीं अचलमेरु भरतक्षेत्र विजयारध जिनगृहाय नैवेद्यम् ॥५॥
घृतमय दीपक वा कपूर मय, जोवौं पद पैरी।
मोह महातम मेटो जिन मम, पूजौं पद हेरी ॥करो०॥
ॐ ह्रीं अचलमेरु भरतक्षेत्र विजयारध जिनगृहाय दीपम् ॥६॥
श्रीखण्डादिक द्रव्य धूप करि, खेऊं तुम पैरी।
अष्ट कर्म ततकार जरै ज्यौं, धूप धन जरी ॥ करो० ॥
ॐ ह्रीं अचलमेरु भरतक्षेत्र विजयारध जिनगृहाय धूपम् ॥ ७ ॥
आम नीबू नारिंग झंभिरि, उत्तम फल थहरी।
कनक पात्रमैं ले पद पूजौं, मोक्ष सु फल देरी ॥करो०॥
ॐ ह्रीं अचलमेरु भरतक्षेत्र विजयारध जिन० फलम् ॥ ८ ॥
नीर गन्ध तन्दुल प्रसून चरु, दीप धूप हैरी।
ले फल अर्घ जिजैं तुमरे पद, पद अनर्घ केरी ॥करो०॥
ॐ ह्रीं अचलमेरु भरतक्षेत्र विजयारध जिनगृहाय अर्घं ॥९॥

पद्धड़ी-छन्द।

तुम अचलमेरु दक्षिण दिशान, तह भरतक्षेत्र विजयारध जानि। तापरि तुम गेह लसैं अनूप, पूजौं कारी अर्घ मनोज्ञ रूप॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु भरतक्षेत्र विजयारध जिनगृहाय अर्घम् ॥१॥

तिस मन्दिरमें जिनराज देव, तुम राजत हो सत आठ एव। तुमकौं जजि है करि अर्घ सार, भवसागरतैं मोकौं उतारि ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु भरत विजयार्द्ध स्थित एकसौ आठ सर्व जिनगृहेभ्यो पूर्ण र्घं ॥ २ ॥

अथ जयमाला।

दोहा।

अचलमेरुके भरतमें, विजयारध जिन धाम।
अब पूजौं जयमालतैं, सरो हमारो काम ॥ १ ॥

मोतिदाम छन्द।

तुमैं जय मेरु तृतीयनमाहिं, सु दक्षिण भारत माहि लखा ही। तहां विजयारध बिषैं तुम गेह, तहां तुम राजत नित्य सगेह ॥ २ ॥ कियो तुम तत्व तनौं उपदेश, सु जीव अजीव सु आश्रव सेस। सु बन्ध सु संवर निर्जर मोक्ष, जहां नहीं जन्म जरा मृति दोष ॥३॥ सु जीव अनादि अनन्त जिवन्त, सुज्ञानरु दश पयोग लहंत। सदा यह निश्चय जीव लसंत, सु कमनतैं गति माहि भ्रमन्त ॥ ४॥ अजीव हि पुद्गल नित्य लहन्त, सबैं वरणादिक भेदन वन्त। अणु अरु स्कन्ध मई यह होय, सदा यह जीव लग्यो भ्रम जोय। ५ ॥

सु आस्रव कर्मन आवन द्वार, सलावन निश्य कहे तुम धार। लखैं निति बन्धन च्यारि प्रकार, थिति प्रकृति अनुभाग प्रचार ॥ ६ ॥ प्रदेशन रूप हि बन्धन च्यारि, सु संवर आस्रव रोकन हार। सु निर्जर कर्मन निर्जरकार, सु मोक्ष हि कर्मन छूटन सार ॥७॥ सुतत्व यहै तुम साल बनाय, लख्यो शिव निर्मल थान जिनाय। हमैं तुमकौं निति जाचन एह, करै हमरै यह ज्ञान सनेह ॥८॥ तुमैं भवसागर सोखनहार, करो भवसागरतैं मुझि पार। नमैं तुम पाद बुधो महचन्द्र, हरो भव संकट नाथ जिनेन्द्र ॥ ९ ॥

घत्ता छन्द।

इति मेरु तृतीये, दक्षिण कीये भरतक्षेत्र विजयारध गृहं। जिन पूजो ध्यावो, हर्ष बढ़ावो, फिरि नहि आवो गर्भगृहं ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु विजयारध जिनगृहाय महार्घं ॥ १० ॥

दोधक छन्द।

जो भवि भक्ति सु भाव बढ़ावैं, मेरु तृतीय सुभर्तम जावै। रूपगिरी जिन पूजे सारं, सो भवि रक्षरमा भरतारं ॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री अचलमेरु भरत विजयारध जिनगृह पूजा समाप्त।

अथ अचलमेरु एरावत विजयारध जिनगृह पूजा।

दोहा।

अचलमेरु उत्तर विषैं, ऐरावत विजयार्द्ध।
तापरि जिनगृह जिन बिम्बो, आवो तिष्ठो सार्द्ध॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु ऐरावत विजयारध जिनगृह जिनसमूह अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

सोरठा।

कञ्चन कुम्भ भराय, नीर धार त्रय दीजिये।
मेरु अचल जिनराय, ऐरावत विजयारध जजि॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु उत्तर ऐरावत विजयारध जिनगृहाय जलं॥ १॥

केसरि घसि घनराय, भवतप नाशन लीजिये।
॥ मेरु अचल० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु उत्तर ऐरावत विजयारध जिन० चन्दनम्॥२॥

तन्दुल उज्वल लाय, पुञ्ज करो जिन अग्रवर।
॥ मेरु अचल० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु उत्तर ऐरावत विजयारध जिन० अक्षतम्॥३॥

कुन्द केतकी लाय, पुष्प काम शर दूरिकर।
॥ मेरु अचल० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु उत्तर ऐरावत विजयारध जिन० पुष्पम् ।४॥

नानारस मिलिवाय, करि नैवेद्य क्षुधा हरन।

॥ मेरु अचल० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु उत्तर ऐरावत विजयारध जिन० नैवेद्य ।५॥

दीपक जोति जगाय, मोह तिमिर हर लीजिये।

॥ मेरु अचल० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु उत्तर ऐरावत विजयार्द्ध जिन० दीपम् ॥ ६ ॥

धूप अगर मुख लाय, खेवो जिनपद अग्र तुम।

॥ मेरु अचल० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु उत्तर ऐरावत विजयार्द्ध जिन० धूपं ॥ ७ ॥

आम नीबु शुभ लाय, फल कञ्चनमय पात्रमें।

॥ मेरु अचल० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु उत्तर ऐरावत विजयारध जिन० फलं ॥ ८ ॥

जल फल अर्घ बनाय, पद अनर्घ करता सहि।

॥ मेरु अचल० ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु उत्तर ऐरावत विजयार्द्ध जिन० अर्घम् ॥९॥

बेसरि छन्द।

मेरुके अचल उत्तर माहि, क्षेत्र ऐरावत लसैं। सुखदाई तास मध्य, विजयारध सोहै, तापरि जिन-गृह पूजो मोहै ॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु उत्तर ऐरावत विजयार्द्ध जिन० अर्घम् ॥१॥

तासगेहमधि जिनवर राई, निति राजत सत आठ बताई। तिनकौं पूजौं मन वच काई, अर्घ बनाय महासुख पाई॥

ॐ ह्रीं अचलमेरु उत्तर ऐरावत विजयारध जिन० अर्घम्॥२॥

अथ जयमाला।

सोरठा।

मेरु अचल उत्तरान, ऐरावत विजयारध हैं।
जिनगृह तापरि जानि, अब जयमाला जपत हौं॥१॥

त्रोटक छन्द।

जय मेरु तृतीय सु उत्तरमें, विजयारध लसैंते समाहि तुमैं। निति राजत हौं जिनदेव तहां, हम भावन पूजत हैं जु यहां॥२॥ तुमनैं षट्द्रव्य बखान किये, तिनकौं गृहि भव्य सु मुक्ति गये। तह जीव अजीव मूर्त अमूर्त, गगनं फुनि काल सदा विलसं॥३॥ जिय हैं निति नाश विहीन यहां, जड़ पुद्गल सङ्ग समाज जहां। यह पुद्गल बादर बादर है, तह बादर सूक्ष्म सु भेद यहै॥४॥ सुहुमं तरु बादर है सुहुमं, सुहुमं सुहुमं षटभेदगमं। पृथिवी जल छायहि तीन गिनौं, चउ इन्द्रिय भोगहि कर्म भनौं॥५॥ परमाणु यहै तुम भेद कहे, तनुके फुनिधर्म अधर्म कहे। जियके गति कारण धर्म सही, जल होत

जिया मछलीन वही ॥ ६ ॥ थिति कारण द्रव्य अधर्म कह्यो, जह छाय ही पन्थिन थान दियो। अवगाहन दान अकासजु हैं, पण द्रव्यनकौं यह भेद गहै ॥ ७ ॥ करि है नीति नव्य पुराण यही, यह काल ही रीति तुमैं जु कही। तुमरे गुणको कछु पार नहीं, बुध कौन कहैं सगरे इम हीं ॥ ८ ॥ हमरैं तुम पाद पयोजनकी, निति भक्ति रहैं सुख योजनको। तुमनैं यमनी निति जाचत हैं, महचन्द्र बुधो तुम पासि रहै ॥ ९ ॥

घत्ता।—

यह अचल सुमेरो उत्तर हेरो, ऐरावत विजयार्द्ध वरं।
तापरि जिनगेहं पूजो नेहं, अर्घ लेय शुभ थालकरं ॥
ॐ ह्रीं अचलमेरु उत्तर ऐरावत विजयारध जिन० अर्घम् ॥१०॥

दोहा।

अचलमेरु ऐरावते, जिनगृह पूजा सार।
जो भवि बांचैं भावसैं, सो पावै भव पार ॥

इत्याशीर्वाद।

इतिश्री अचलमेरु उत्तर ऐरावत विजयारध जिनगृह पूजा समाप्ता।

अथ पुष्करार्द्धवरद्वीपे पूर्वभागे मन्दर-मेरुके षोडश जिनगृह पूजा।

अडिल्ल छन्द।

पुष्कर द्वीप सु पूरब मन्दर, मेरुके चउ वन चउ दिशामैं। जिनगेह सु हेरुके तिनमैं, जिनवर देव सदा बसी हैं सही, ले जिन आय विराजो पूजों अत्र हा॥

ॐ ह्रीं पुष्करार्द्ध द्वीपे पूर्वभागे मन्दर मेरो षोडश जिनगृह जिनसमूहाय अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधापनम्।

त्रिभंगी छन्द।

गंगादिक नीरं गन्ध गहीरं, नित्य सुसीरं ले आयो। जन्मादि सतायो, बहु दुख पायो, धार करायो सुख पायो। शुभ मन्दर मेरं पूरब हेरं, चउवन केरं जिन गेहं, शुभ षोडश सोहैं सब मन मोहैं, पूजो हो है निति नेहं॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु षोडश जिनगृहेभ्यो जलम्॥ १॥

कुंकुम कर्पूरं अगुरु सुचूरं, गन्ध सु भूरं चन्दनको। घसिकैं सब लीने सुन्दर कीने भव तप हीने गन्धन कौं॥
॥ शुभ मन्दर०॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु षोडश जिनगृहेभ्यो चन्दनम्॥ २॥

शुभ शालि अखण्डं दोषमंडं, परिमल पिंडं ले आयो।
करि पुंज मनोग्यं, पञ्च सु जोग्यं अक्षय लोग उमगायो॥
॥ शुभ मन्दर० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु षोडश जिनगृहेभ्यो अक्षतम् ३॥

यह काम महाबल नाहिं जोर चल, मांझि बड़ो दल दुःख देवै। तिमनाशन हेतं पञ्च समेतं, ले पुष्पेतं पद सेवै॥ शुभ मन्दर०॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु षोडश जिन० पुष्पम्॥ ४॥

नाना रस नाजे नेवज साजे, मोदक खाजे करि सारं।
तुमरे पद आगैं धापौं लागैं, क्षुधा जु भागैं सुखतारं॥
॥ शुभ मन्दर० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु षोडश जिन० नैवेद्यम्॥ ५॥

घृत ले कपूरं दीपक भूरं, ले तुमचूरं पद आठौं।
तम नाशन जो वौं भव अघ धोऊँ, निजमय होऊँ बुधि जागैं॥ शुभ मन्दर०॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु षोडश जिन० दीपम्॥ ६॥

श्रीखण्ड अनूप गन्ध सु भूपं, धूपन रूपं धूप करौं।
तुम अग्र सु खेऊँ कर्म उडेवौं निजपद वेवौं मोक्ष वरौं॥
॥ शुभ मन्दर० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु षोडश जिन० धूपम्॥ ७॥

शुभ आम सुपारी खारिक सारी आदि फलारी सुखकारी।

धरि कन्चन थारी शिवफलकारी, मोक्षवधुको नरनारी ॥
॥ शुभ मन्दर० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु षोडश जिन० फलम् ॥ ८ ॥

जल फल मिलवाय वसुविधि लावै, थाल सगावै हेमवरं।
तामैं धरि अर्घ ता फल स्वर्ग, फेरि अनर्घ मोक्षवरं ॥
॥ शुभ मन्दर० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु षोडश जिन० अर्घम् ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येक अर्घ।

पाइता छन्द।

वन भद्रशालके माहीं, पूरव जिनगेह सुहाई।
गिरि मेरु सुमन्दर केरा, षोडश जिनगृह जजि हेरा ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु भद्रशालवन पूर्वदिश जिन० अर्घम् ॥ १ ॥

दक्षिण महि गेह जिनेंद्र, तिन पूजत हैं सुसुरेंद्रं।
॥ गिरि मेरु० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु भद्रशाल दक्षिणदिशि जिनगृहाय अर्घम् ॥ २

पश्चिम जिनगेह विराज, पुजन हो सब अघ भाजै।
॥ गिरि मेरु० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु भद्रशाल पश्चिम जिनगृहाय अर्घम् ॥ ३ ॥

वन माहि सु उत्तम सोहै, जिनगेह लसै मन मोहैं।
॥ गिरि मेरु० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु भद्रशाल उत्तरदिशि जिनगृहाय अर्घम् ॥४॥

बन नन्दन पूरब केरो, जिनगेह तहां निति नेरो।
॥ गिरि मेरु० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु नंदनवन पूर्वदिशि जिन० अर्घम् ॥ ५ ॥

बन नन्दन दक्षिण मांहि, जिनगेह तहां लखि ताही।
॥ गिरि मेरु० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु नंदनवन दक्षिणदिशि जिन० अर्घं ॥ ६ ॥

पश्चिमदिश नंदन राजैं, जिनगेह सदा सुख काजै।
॥ गिरि मेरु० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु नंदनवन पश्चिमदिश जिन० अर्घं ॥ ७ ॥

जिनगेह सु उत्तर केरो, निति सोहन सब सुख मेरो।
॥ गिरि मेरु० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु नंदनवन उत्तरदिश जिन० अर्घं ॥ ८ ॥

सोमनस वनं सुखदाई, पूरब जिन गेह सुहाई।
॥ गिरि मेरु० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु सोमनसवन पूर्वदिश जिन० अर्घम् ॥ ९ ॥

दक्षिण माही जिन गेहं, सुरपति पूजत धरि नेहं।
॥ गिरि मेरु० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु सोमनसवन दक्षिणदिश जिन० अर्घम ॥१०॥

सोमनस सु पश्चिम सारं, जिन गेह महासुखकारं।
॥ गिरि मेरु ॥

ॐ ह्रीं सोमनस पश्चिम जिन० अर्घं॥ ११ ॥

उत्तरमें गेह सु लेखो, सोमनस माही तुम देखो।
॥ गिरि मेरु० ॥

ॐ ह्रीं सोमनस उत्तर जिन० अर्घं ॥ १२ ॥

पांडुक वन मन्दिर घेरो, जिन गेह सु पूरब हेरो।
॥ गिरि मेरु० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पांडुकवन पूर्वदिश जिनगृहाय अर्घं ॥ १३ ॥

दक्षिण पांडुक वन माही, जिन गेह तहां सुखदाई।
॥ गिरि मेरु० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पांडुकवन दक्षिणदिश जिन० अर्घं ॥ १४ ॥

पांडुक वन पश्चिम सारं, जिन गेह करै भव पारं।
॥ गिरि मेरु० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पांडुकवन पश्चिम जिन० अर्घं ॥ १५ ॥

उत्तर पांडुक वन माही, जिन गेह तहां शिवराई।
॥ गिरि मेरु० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पांडुकवन उत्तरदिश जिनगृहाय अर्घं ॥ १६ ॥

मन्दर वन च्यारिन माही, जिन गेह सु षोडश माही।
जिन पूजो भवि सुखकारी, कर पूरण अर्घ समारी ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु च्यारिवनस्थ षोडश जिनगृहेभ्यः पूर्णार्घम् ॥ १७ ॥

जिनबिंब सबैं सुखदाई, सतरासै और अठाई।
इनकों पूजौं सुख पाई, यह पूरण अर्घ बनाई ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु चउ वनस्थ सतरासै अठाईस सर्व जिन-
बिंबेभ्य पूर्णार्घं ॥ १८ ॥

अथ जयमाल ।

दोहा ।

मन्दर मेरु सुहावनौं, पुष्कराद्धं वर मध्य ।
ताके षोडश जिन भवन, ते पूजौं सब अघ्य ॥ १ ॥

दोधक छन्द ।

मन्दर मेरु चतुर्वन माहीं, षोडश जिनवर गेह बनाई । ते जिनराज हरो अघ मेरे, मैं दुखिया भवतैं अधिकेरो ॥ २ ॥ नाथ तुमैं भवरूप बतायो, सो भव भिन्न नभिन्न जितायो । नारककै गति नारक है ही, इन्द्रीय पंच सु इन्द्रीय वेही ॥ ३ ॥ काय तहां त्रस काय बताई, जोग सु ग्यारह भेद बताई । आठहि चित वचं लखि लीजे, सत्य असत्य उभयनर हीजै ॥४॥ वैक्रियिकं अर मिश्रही कर्म, ग्यारह जोग सु नारक धर्म । वेद नपुंसक सो तुम गायो, और कषाय तेवीस जितायो ॥ ५ ॥

स्त्री अर पुं दूय वेदन ही है, तेबिन यौं सु कषाय रही हैं । ज्ञान तहां षट् सो तुम देखे, तीन तीन अशुभं शुभ पेखे ॥ ६ ॥ संजम एक असंजम होई, दर्शन तीन आदिके होई । लेश्य ही द्रव्यनमैं अयखोटी, भाव नमाहि छहौं नह मोटी ॥ ७ ॥ भव्य अभव्य सदा दूय भेदं, सम्यक् षट् निर्भ्य लखि येदं । संनिय होत असैनिय नाहीं, हारक और अनाहरका ही ॥८॥

आदि गुण स्थानक चउ जानौं, जीव समास एक लह मानौं। सैनिय पंच इन्द्रि यह जानौं, छै परियाप्त सदा लह मानौं॥ ९॥ प्राण दशौं चउ संज्ञहि होहैं, नो उपयोग ज्ञान षट् सोहै। दर्शन तीन ध्यान नव देखो, आर्तहि रुद्र धर्म इक पेखो॥ १०॥

आश्रव एक पचास गनीजे, हारक वेद शरीर दु छीजैं। च्यारि सु लक्षहि जोनि बखानौं, कोडि पचीस लाख कुल जानौं॥ ११॥ चोबीस नारकके यह थान, सो तुम जानें हे भगवान। वेगि हमें इनतैं जु छुडावो, नारक मेटि शिव पहुचावो॥ १२॥ नाहि तुमैं सम कोईहि दोसै, और सबै नरके महि पिसै। हे जिनदेव सुनौं अब मोरी, चन्द्र महावुध मेटि अघोरी॥ १३॥ घत्ता दुग मेरु सुमन्दर भव भव, सुखकर नामधि जिन घर दुःखहरं। षोडश गृह जिनवर भव भव, सुखकर मेटो मम झंझाल घरं॥ १४॥

ॐ ह्रीं जिनमन्दर मेरुके षोडश जिनगृहेभ्यो महार्घं।

आर्या छन्द।

जो बांचै यह पाठ, मन वच तन शुद्ध होय करि प्राणी।
सो पावै सुख ठाठ, स्वर्ग पुनि मोक्षसुखखानी॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री पुष्कराद्ध द्वीपे पूर्व भागे मन्दर मेरु षोडश जिनगृह पूजा समाप्त।

अथ मन्दर मेरु चतुर्गजदन्तस्थ जिनगृह पूजा।

दोहा।

मन्दरके चउ कौणमैं, गजदन्तन जिनगेह।
तिनमैं जिन अब पूजिहौं, करौं थापना एह ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु गजदन्तस्थ जिनगृह जिनसमूह अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननम् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

चाल—होरीमैं।

जे जे गजदन्तन जिनराय, चोथा मेरुके जजि ॥टेक॥
सुर सरिता जल नीको ले करि, कंचन कुम्भ भराय।
जन्म जरामृति नाशन कारण, धारा तीन दराय ॥
॥ चोथा मेरु० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु गजदन्तस्थ जिनगृहाय जलम् ॥ १ ॥

केशरि चन्दन घसि करि लीनौं, गन्ध सुगंधित लाय। भव तप नाशक जिनकौं लखि लखि, चरण कमल गुण गाय ॥ चौथा मेरु० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु गजदन्तस्थ जिनगृहाय चन्दनम् ॥ २ ॥

शालि अखण्डित परिमल मण्डित, उज्जल शशी द्युति लाय। अक्षय पद जो पायो चाहो, तो निति पुज कराय ॥ चोथा मेरु० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु गजदन्तस्थ जिन० दीपम् । ३ ॥

केतकी चम्पक और केवड़ा, पुष्प गुलाब मगाय।
काम बाण यह दूरि करिनकौं, जिनपद पद्म चढाय ॥
॥ चोथा मेरु० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु गजदन्तस्थ जिनगृहाय पुष्पं ॥ ४ ॥

नाना रस करि खाजा घृत वर, मोदक मोदन लाय।
रोग क्षुधा दुख दूरि करनकौं, जिनपद अग्र धराय ॥
॥ चोथा मेरु० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु गजदन्तस्थ जिनगृहाय नैवेद्यम् ॥ ५ ॥

दीपक ज्योति उद्योत होत जिम, घृतमय ज्योति कराय। मोह महातम मेटनकारण, जिनपद ज्योति जगाय ॥ चोथा० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु गजदन्तस्थ जिनगृहाय दीपम् ॥ ६ ॥

धूप दशांग लेय करि गन्धित, जिनपद खेवो आय। अष्ट करम ननकार जर जिम, धूप धनंजय माहि ॥ चोथा० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु गजदन्तस्थ जिनगृहाय धूपम् ॥ ७ ॥

आम नीबु नारिंग झम्भीरी, उत्तम फल यह लाय। शिवफल चाखन जो मन है तो, जिनपद पूज रचाय ॥ चोथा० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु गजदन्तस्थ जिन० फलम् ॥ ८ ॥

जल फल अर्घ बनाय मनोहर, कञ्चन थाल

भराय। पद अनर्घ पायो जो चाहो, सो जजि प्रीति लगाय॥ चोथा० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु गजदन्तस्थ जिनगृहाय अर्घम् ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येक अर्घं।

द्रुत विलंबित छन्द।

तृतीय पुष्कर मन्दरमेरुके, प्रथम हस्तिय दन्त सु नरके। कहत कौंण ईसान महान हैं, गृह जिनेन्द्र जिजैं दुख हानि हैं॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरो ईशानकौंण गजदन्तस्थ जिनगृहाय अर्घं। १॥

जिनगृहं तह अग्निहि कौंणमैं, रहत हैं गजदन्त सगुणमैं। तिस गृहं जिन पुजि सु भावनैं, करि सु अर्घ महा शुभ चावनैं।

ॐ ह्रीं मन्दरमेरो अग्निकौंण गजदन्तस्थ जिन० अर्घम ॥ २ ॥

अचल है गजदन्त सु नैऋते, तिस परि जिन गेह सुसंस्कृते। तिस जिनं निति पूजि उछाहनैं, परम अर्घ बनाय सु भावनैं॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरो नैऋत्यकौंण गजदन्तस्थ जिन० अर्घम ॥ ३ ॥

पवन कौंण थिरा गजदन्त है, तिस गृहं जिनराजहि सन्त है। सकल मङ्गल कारण सार है, तिनहि पूजनतैं दुःखहार है॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरो वायवकौंण गजदन्तस्थ जिन० अर्घम् ॥ ४ ॥

चउनके गजदन्तके गृहं, रहत च्यारि सदा सुख

समूहं। सकल मङ्गलकारक अघ ले, जजि जिनेन्द्र सदा सु अघंग ले॥

ॐ ह्रीं पुष्करार्द्ध द्वीपस्थ पूर्वभागे मन्दरमेरो चतुर्गजदन्त स्थित चतुर्जिनगृहेभ्यः पूर्णार्घम्॥ ५॥

जिनहि बिंब सबैं लखि लीजिये, चउ शतं सु बनास गनीजिये। सबनकौं करि पूरण अर्घहि, जजिहुं पावन थान अनघहि॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरो चतुर्गजदन्त स्थित च्यारिसै तीस सर्व जिनबिम्बेभ्यः पूर्णार्घम्॥ ६॥

अथ जयमाला।

घत्ता छन्द।

जय मन्दरमेरो कौंण न फेरो, गजदन्तेरो नाथ तुमे। गजदन्तन माहीं, च्यारि गृहा हीं, तुम तिन थाहीं तारो हमैं॥ १॥

शंकर छन्द।

जयदेव चौथे मेरुके, गजदन्त च्यारिनमाहीं।
तुम गेह चउतीस माहि, इकमें एकशत अघ थाहीं॥
तुम देह धनु शत पञ्च उन्नत, रत्नमय जोति होत। सो देव अब सबनैं बड़ो, हम नाशी गति पशु मोत॥ २॥
तिर जंचमैं गति होत निति, तिर्जंच इन्द्रिय पंच लह। काय षट्, फुनि जोग ग्यारह वेद तीनौं संचत हैं॥ होत तिनके निति कषाय, पचीस फुनि षट ज्ञान। संजम असंजम, देश संजम दोय त्रय दर्शन॥ ३॥

लेश्या सबैं षट् ही तहां फुनि, भव्य और अभव्य सम्यक्त षट सैनी। असैनी दोय ही नीति लभ्य आहार तह, अनहार दोनौं आदिपण। गुण थान उगनोस जीव समास सब ही, होत दुःख निधान॥ ४॥ पर्याप्त षट फुनि प्राण दश फुनि च्यारि संज्ञा होतउ प्रयोग नव षटज्ञान दर्शन तीन मिलि रस मोल फुनि ध्यान दश। निति होत आरत रुद्र अघ द्वय, धर्म आश्रव तरेपन जोनि चासठि लाख भोगत कर्म॥ ५॥ कुल कोडि इकसठ कोडि उपरि, अर्द्ध अर चोतीस यह थान। तिर्यंगगति विषैं चौबीस हनि, जिन ईश गति च्यारिमैं गति। पा-खडी यातैं निकाशो देव इम करत अरज सदा, सुनौं महाचन्द्र पण्डित एव॥ ६॥

कुचौपाई।

मन्दर मेरु तनैं गजदन्ता, च्यारि तिनौंपरिचउ ग्रह सन्ता। तिनमें जिनवर निति प्रति राजैं, ते जिन पूजत हो अघ भाजैं॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु चतुर्गजदन्तस्थित जिनगृहेभ्यो महार्घम् ॥७॥

दोहा।

मन्दरमेरु तनैं चउ, गजदन्तन जिनगेह।
जो नर बांच पाठ यह, ताकै शिव तिय नेह॥ १॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री मन्दरमेरु गजदन्त जिनगृह पूजा समाप्ता।

अथ मन्दरमेरु ईशानकौण जम्बू-वृक्षस्थ जिनगृह पूजा।

अडिल्ल छन्द

मेरु सुमन्दर उत्तर कुरुमधि जानिये,
जम्बू वृक्ष मनोहर सुन्दर मानिये।
ताके उत्तर शाख माहो जिनगेह हैं,
ते जिन आय, विराजो मंजुल नेह हैं॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरो जम्बूवृक्षस्थ जिनगृह जिनसमूहाय अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधापनम्।

चाल टप्पामें।

अब मोहि तारोहो साईं, तरु जम्बू चौथा मेरुके।
॥ अब मोहि ता० ॥ टेक० ॥

कञ्चन झारी नीर समारी, भरि करो तुम ढिंग लाई।
जन्म मरण दुःख नाशन कारण, धारा तान दराई॥ अब०

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु जम्बूवृक्षस्थ जिनगृहाय जलम्॥ १॥

चन्दन कुंकुम घसि करि लीनौं, गन्ध अनोपम छाई।
भव तपनाशक तुमकौं लखि, जिन पूजौं तुम द्रुय पाई॥
॥ अब मोहि ता० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु जम्बूवृक्षस्थ जिनगृहाय चन्दनं॥ २॥

शालि अखण्डित परिमल मंडित, इन्दु कुन्द द्युति छाई।
अक्षय पद होनेके कारण, तुम पद पुञ्ज रचाई॥ अब०॥

ॐ ह्रीं मन्दारमेरु जम्बूवृक्षस्थ जिनगृहाय अक्षतं ॥ ३ ॥

कमल कुन्द शुभ केतकी लेके, हु सुगन्ध महकाई।
काम बाण नाशनके कारण, तुम पद पूजो आई ॥
॥ अब मोहि ता० ॥

ॐ ह्रीं मन्दारमेरु जम्बूवृक्षस्थ जिन० पुष्पम् ४ ॥

नाना रस नैवेद्य बनाऊं, खाजा फीणी लाई।
रोग क्षुधा यह होन विदा, तातैं पूजौं तुम पाई। अब०॥

ॐ ह्रीं मन्दारमेरु जम्बूवृक्षस्थ जिन० नैवेद्यम ॥ ५ ॥

दीपक जोति उद्योत होत मो, जोऊं तुम पद पाई।
मोह महातम मेटक तुम लखि, घृतमय दीप जगाई अब०

ॐ ह्रीं मन्दारमेरु जम्बूवृक्षस्थ जिन० दीपम् ॥ ६ ॥

श्रीखण्डादि सुगन्धित द्रव्यं, खेऊं तुम पद राइ।
अष्ट कर्म तनकाल जरै ज्यौं, धूप मुहि उडाई ॥ अब०॥

ॐ ह्रीं मन्दारमेरु जम्बूवृक्षस्थ जिन० धूप ॥ ७ ॥

आम नींबू नारिंग आदि फल, कञ्चन थाल भराई।
मोक्ष महाफल चाखन कारण, तुम पद पद्म चढाई ॥ अब०

ॐ ह्रीं मन्दारमेरु जम्बूवृक्षस्थ जिन० फलं ॥ ८ ॥

जल फल अर्घ बनाय गाय गुन, अर्घ मनोहर लाई।
तुम पद पूजौं मनवचतन ज्यौं, पद अनर्घ मुझि थाई॥अब०

ॐ ह्रीं मन्दारमेरु जम्बूवृक्षस्थ जिन० अर्घम् ॥ ९ ॥

रथोद्धता छन्द।

मेरु चौथ उत्तरे मही लसै,
वृक्ष जम्बू परि नित्य ही बसैं।
गेह जैन निनि अन्न हीनकं,
ताहि पूज पद ले अदीनकं॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु जम्बूवृक्षस्थ जि० अर्घम्॥ १॥

तास माहि जिन बिम्ब एकसो,
आठ नित्य सब रत्न देखनो।
ते जिजौं परम अर्घ लेयकैं,
मोहि तारि निज दास थपेकैं॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु जम्बूवृक्षस्थ एकसौ आठ सर्व जिनबिम्बेभ्यः पूर्णार्घम्॥ २॥

अथ जयमाला।

दोहा।

मन्दर मेरु चतुर्थमौं, ताकि कौण इशान।
जम्बूवृक्ष जिनेन्द्र गृह पूजौं निज हित जानि॥१॥

वंशस्थ छन्द।

जयं सु मेरु जिनराज नित्य ही, तरु प्रजंबूस्थ सदा ही। अकृत्य सुरेन्द्र संसेवित पाद पद्म, को रमा सु अभ्यन्तर हीन सद्मको॥ २॥ जजै तुमैं नित्य सु चाल भावना, तथा तहां व्यन्तर तीस दोयना। नमैं तुमैं ज्योतिषि दोय इन्द्रका, तथा सु कल्प

चतुर्थीस सेंद्रका। ३॥ तुमैं नमैं चक्रि सदा प्रभावतैं, हरि सु निर्जैचन इन्द्र भावतैं, तुमैं इनैं पूज्य सदा विराज हो। सबै सु इन्द्रा मन एक साजि हो॥ ४॥ सुरा सुरी नित्य तुमैं यजंत हैं, नहीं सु कोई जगमें तुमन हैं। अबै हमैंपैं करि दृष्टि सार हैं, हमैं करो नथ भवाब्धि पार हैं॥ ५॥ सुनों इति नथ न और चाहि हैं, तुमैं पदं पद्म सुसेव मोर हैं। तुमैं सुसेवंत बुधो सहैं तुहै, अबै हमैं नाथ सदा जिनेन्द्र हैं॥ ६॥

घत्ता।

इह मन्दर मेरो उत्तर हेरो, जंबु तरु जिन गेह लसै। निति पूजौं ध्याऊं गुण गण गाऊं, भक्ति बढाऊं मन हुलसैं॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु जम्बूवृक्षस्थ जिनगृहाय महार्घम्।

सोरठा।

मन वच तन करि प्रीति, जो बांचै यह पाठकौं।
ता नरकी यह रीति, सुर पद लही शिव पद लहै॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री मन्दरमेरु जम्बूवृक्ष जिनगृह पूजा समाप्ता।

अथ मन्दरमेरु शाल्मली वृक्ष जिनगृह पूजा

दोहा।

मन्दर मेरु चतुर्थमैं, ताकी दक्षिण माहि।
शाल्मलि तरु विचि जिन गृह, ते जिन आवो याहि॥

ॐ ह्रीं मन्दर मेरु शाल्मली वृक्षस्थ जिनगृह जिनसमूह अत्रावतरावतर। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

अथाष्टकम्।

नाराच छन्द।

गंगादि नीर सार धार, भृंगमें भरायकैं, जिऔं जिनेन्द्र देव इन्द्र पूजते हैं मनायकैं। चतुर्थ मेरु नैऋ तेरु शाल्मली विषै लसैं, जिनेन्द्र गेह इंद्र नेह पूजि हौं मनो बसै॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु शाल्मली वृक्षस्थ जिनगृहाय जलम्॥ १॥

सु कुंकुमादि गन्धकादि, हेम पात्र धारिये।
सुगन्ध है अमन्दतैं, घसाय शुद्ध सारिये॥चतुर्थ०॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु शाल्मली वृक्षस्थ जिनगृहाय चंदनं॥ २॥

मनोज्ञ शालि इन्दु उजाल, लाइये विशाल हो।
सुधारिये मनोज्ञ पुंज, पंचकं रसालही॥चतुर्थ०॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु शाल्मली वृक्षस्थ जिनगृहाय अक्षतम्॥ ३॥

सुगन्धतैं चलन्त अंग, अंग सार लाय हो।
सुगन्ध पुष्प केतकी, गुलाब आदि लाय हौं ॥चतुर्थं०॥
ॐ ह्रीं मन्दरमेरु शाल्मली वृक्षस्थ जिनगृहाय पुष्पम् । ४ ॥
मिलाय सर्व मोदकादि, थालमें धलाय हौं।
छुधादि रोगको सुजोग, मेटने चढ़ाय हौं ॥चतुर्थं०॥
ॐ ह्रीं मन्दरमेरु शाल्मली वृक्षस्थ जिन० नैवेद्यं ॥ ५ ॥
सुदीप जोतिको उद्योत, करि हौं कपूर ही।
नसो महा नज्ञान ध्वान, दीप पूजी भूप ही ॥चतुर्थं०॥
ॐ ह्रीं मन्दरमेरु शाल्मली वृक्षस्थ जिन० दीपम् ॥ ६ ॥
सु धूप कर्म धूम कौं, उड़ान नित्य लाय हौं।
सुखेय हौं जिनेन्द्र चन्द्र, पाद पद्म ध्याय हौं ॥चतुर्थं०॥
ॐ ह्रीं मन्दरमेरु शाल्मली वृक्षस्थ जिन० धूपम् ॥ ७ ॥
सु आम नीबू पुंगी मुख्य, शुद्ध संफलादि ही।
चढाय हौं जिनेन्द्र थान, पावने अनादि ही ॥चतुर्थं० ॥
ॐ ह्रीं मन्दरमेरु शाल्मली वृक्षस्थ जिन० फलम् ॥ ८ ॥
सुनीर आदि धारि सर्व, द्रव्य शुद्ध थालमें।
अनर्घ्य थान पावनें, बनाय अर्घ कालमें ॥चतुर्थं० ॥
ॐ ह्रीं मन्दरमेरु शाल्मली वृक्षस्थ जिन० अर्घम् ॥ ९ ॥

सोरठा।

मन्दर मेरु महान, नैऋत रु शाल्मलि लसैं।
ताके हैं दक्षिणाण, जिनगृह पूजौं अर्घ ले ॥
ॐ ह्रीं मन्दरमेरु शाल्मली वृक्षस्थ जिनगृहाय अर्घम् ॥ १ ॥

जिन प्रतिमा सब जानि इक, शत आठ विराजई।
पूरण अर्घ मिलान, पूजें सब अघ भाजि ही॥

ॐ ह्रीं मन्द मेरु शाल्मली वृक्षस्य एकसौ आठ सर्वे-जिनबिम्बेभ्यो पूर्णार्घं ॥ २ ॥

अथ जयमाला।

सोरठा।

शाल्मली वृक्ष महान, चौथा मेरु तनौं लखें।
ताकी माल जपान, अब गावौं शुभ भावनें॥ १ ॥

पद्धरि छन्द।

मेरु नैऋत चतुर्थ केरी, ताम मध्य तरु शाल्मली हेरी। ताम दक्षिण सुमाखडी माहीं, गेह जैन जय तीन धराही॥ २॥ पूजि हौं सु तुम कौं जिन राई, वेग मेटि मम दुःख अघाई। नाथ तोहि सुर राजसु ध्यावैं, संस आठ जपी नाम मनावैं॥ ३॥ बुद्ध शंकर हरि हो विरंचा, योगिराज सब जोग समन्चा। एकही तथा नेक सुरूपा, नित्य ही अनित्यं कहा भूपा॥४॥ पावन परम नाम विहीनं, अष्ट कर्म कृत बंधन छीनं। अव्ययं विभु अचिन्त्य जपैं हैं, मोक्ष मार्ग तुमसें हो थपैं है॥५॥ नाथ तोहि सुर राजहि ध्यावें, कोडि जिह्व करिकैं जु मनावें। तोहु नाहि तुन पारहि पावैं, तो हमैं तुम गुणं किम गावैं॥६॥ मोहिनाथ तुम साथ करीजे, डूबत भवमही उधरिजे। तारिये सु महे-चन्द्र मनावैं, बार बार तुमरे जस गावैं॥ ७॥

घत्ता।

तरु शाल्मली सारं सब सुख कारं, जिन गृह दक्षिण शाख बसैं। तामैं जिननाथं शिवसुख साथं, पूजौं निति मम मन हुलसैं ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु शाल्मली वृक्षस्थ जिनगृहाय महार्घम् ॥८॥

दोहा।

शाल्मलि तरु जिन भवन की, पूजा परम रसाल।
जो नर बाचैं भावतैं, सो सुख पावैं हाल॥

इत्याशीर्वादः।

इति श्री मन्दर मेरु शाल्मली वृक्ष जिनगृह पूजा समाप्ता।

अथ मन्दर मेरु पूर्व विदेह विभागस्थ वक्षार जिनगृह पूजा।

अडिल छन्द।

मन्दर मेरु सु पूरब क्षेत्र विदेहमें, वक्षारन परि जिनगृह राजत नेहमें। तिनमें जिनवर पूजित सुरपति पाय हैं, ते जिन आवौ पूजौं सब सुखदाय हैं ॥१॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पूर्वविदेह विभाग स्थित वक्षार जिनगृह जिनसमूह अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्रमम सन्निहितो भवभव वषट् सन्निधिस्थापनं।

अथाष्टकं ।

गीता छन्द ।

सुर गंगनीर अभंगसीर, सुकुम्भ कन्चन ले भरो,
जर मरण जन्म निवार कारण, धार तीन सदा करो ।
श्री मेरु मन्दर पूर्व माही, बचि क्षेत्र विभागमें,
वक्षार गिरि अठ आठ जिनगृह, पूजिये करि लागमें ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पूर्वविदेह विभागस्थित वक्षार जिन-गृहेभ्यो जलम् ॥ १ ॥

काश्मीर कृष्नागुरु सुचन्दन, लेय सर्व मिलाईये ।
घसि सर्व संयुत गन्ध बहुल सु, जिनही चरण चढ़ाईये ॥
॥ श्री मेरु० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पूर्वविदेह विभागस्थित वक्षार जिन-गृहेभ्यो चंदनं ॥ २ ॥

तन्दुल अखण्डित सरल परिमल, इंदु कुन्द तुषारसे ।
द्युति धरै मुक्ताफल समान ही, अक्षय पद करतारसे ॥
॥ श्री मेरु० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पूर्वविदेह विभागस्थित वक्षार जिन-गृहेभ्यो अक्षतम् ॥ ३ ॥

कमल केतकी मालती, अर जाई आदि सुगन्धितं ।
इनके कुसुम तैं पूजि जिनपद, होत काम सु अन्धितं ॥
॥ श्री मेरु० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पूर्वविदेह विभागस्थित वक्षार जिन० पुष्पं ॥ ४ ॥

नाना रस घृत दुग्ध आदिक, लेय थालि पचाइये।
करिये निवेद मनोज्ञ रोग सु, क्षुधा ताही नशाइये॥
॥ श्री मेरु० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पूर्वविदेह विभागस्थित वक्षार जिन० नैवेद्यम् ॥ ५ ॥

दीपक करपूर मई सुजोति, जगाय जिन पद धारिये।
तम मोह पटल विलात ऐसो, दीप दीपित कारिये॥
॥ श्री मेरु० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पूर्वविदेह विभागस्थित वक्षार जिन० दीपम् ॥ ६ ॥

श्रीखण्ड अगर कपूर मेलि सु, धूप गन्ध मनोहरं।
करि खेय ये जिन चरण आगे, अष्ट कर्म नशो वरं॥
॥ श्री मेरु० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पूर्वविदेह विभागस्थित वक्षार जिन० धूपम् ॥ ७ ॥

नारिंग कदली फल तथा, श्रीफल मिलायर लीजिये।
फल मोक्ष कारण लेय सुन्दर, थाल माहि सभीजिये॥
॥ श्री मेरु० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पूर्वविदेह विभागस्थित वक्षार जिन० फलम् ॥ ८ ॥

जल गन्ध तन्दुल पुष्प चरु ले, दीप धूप फलौघही।
करि अर्घ कंचन थालमें, बुध महाचन्द्र अमोघहि॥
॥ श्री मेरु० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पूर्वविदेह विभागस्थित वक्षार जिन० अर्घम् ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येकार्घं ।

भुजंग प्रयात छन्द ।

सु पूर्वे विदेहं चतुर्थं सुमेरो, सुवक्षारके उत्तरे जैन केरो । लसैं मन्दिरं सर्व सौख्यं विधाता, जिजौं ताहि ले अर्घ ज्यौं होय साता ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरो पूर्वविदेह विभागस्थित वक्षार जिन-गृहाय अर्घं ॥ १ ॥

द्वितीये सुवक्षारके जैन गेहं, लसैं ताहि पूजो करो नित्य नेहं । सु सीता नदी उत्तरे भाग माहिं, बस ताहि पूजो करो अर्घ याहीं ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरो पूर्वविदेहे विभागस्थ द्वितीय वक्षारस्थ जिन० अर्घं ॥ २ ॥

तृतीय सुवक्षारके ऊपरें हैं, सु गेहं महा सुन्दरं नूपरे हैं । सु पूजौं सदा तासकौं लेय अर्घं, पदम जाय पाऊं सदा जो अनर्घं ॥

तीय वक्षारस्थ जिन० अर्घं ॥ ३ ॥

चतुर्थे सुवक्षारके जानिये हैं, सुगेहं जिनं सारकं मानिये । मनोज्ञं महासुन्दरं देव देवं, जिनेन्द्रं नमौं नाममैं नित्य सेवं ॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ वक्षारस्थ जिनगृहाय अर्घं ॥ ४ ॥

सु सीतानदि दक्षिणे भाग माही, जिनेन्द्रं जिजौं गेह संजुक्त थाही। महा मोदतैं होय आनन्द रूपं, सुरेंद्रादि पूज्यं जिजौं जैन भूपं ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरो सीता दक्षिणतटस्थ वक्षार जिन० अर्घं ॥५॥

जिनेन्द्रं महा गेहकं दक्षिणेही, सु वक्षारके कांचने रक्षिणेही। नदी सीतके दक्षिणे नित्य राजै, जिजौं मैं जिनेन्द्रं सदा दुःख भाजैं ॥

ॐ ह्रीं षष्टमवक्षार जिन० अर्घं ॥ ६ ॥

सुदर्शं वसैं उत्तरे दक्षिणे है, सुध्यासं महा पश्चिमे पूर्व नेहैं। सुवक्षारकैं उपरैं गेह जैनं, जिजौं ताहि नित्यं नसं सर्व मैनं ॥

ॐ ह्रीं सप्तम वक्षारस्थ जिन० अर्घं ॥ ७ ॥

कुलाद्रं समीपे चउसै विराजे, नदी पास है पंचसैं उन्नताजे। लसै जोजनं पर्वतं ताम पै हैं, जिनेंद्र गृहं ताहि पूजें थपे है ॥

ॐ ह्रीं अष्टम वक्षारस्थ जिन० अर्घं ॥ ८ ॥

दोधक छन्द।

मेरु सुमन्दर पूरब माहि, हैं गिरि आठ वक्षार माही।
जैन गृहं तिन पैं अठ राजैं, ते गृह पूजन ह्रो अघ भाजैं ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरो पूर्वविदेहविभागे अष्टवक्षारस्थित अष्ट जिनगृहेभ्य पूर्णार्घं ॥ ९ ॥

जैन विंब शत आठ अनूपं, चोसठि उपरि

तिहुं जग भूपं। पूरण अर्घ बनाय मनोग्यं, ते जिन पूजन हौं करि जोगं॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरो पूर्वविदेह विभागस्थ वक्षारेषु आठमें चोपठ सर्वजिनबिंबेभ्यः पूर्णार्घम्॥ १०॥

अथ जयमाला।

छन्द चौपाई।

मन्दर मेरु पूरं सुविदेहे, अठ वक्षार उपरि जिनगेहे।
ते जिन पूजौं जपि जयमाला, पूजन ही सुख हो चिहाला॥

दोधक छन्द।

मेरु चतुर्थम पूरब माहि, क्षेत्र विदेह विभाग जिनाही।
पर्वत वृक्षरनं अठगेहा, ते जिन मोहि करो गत देहा॥२॥

दूरि करो कुल कोडि हमारी, कोडि एकवान माहि निग्याणी। भूमहि लाख माईन जु कोडा, नीरमाहा लख सातहि कोडि॥ ३॥ तेउ माहि त्रय लाख मिटावो, बाउ कोडि लख भाल हटावो। लाख अठा इस कोडि तरुकी, वेगि हरो कुल कोडि नरौंकी॥४॥ सात कोडि लख आठ तथा हैं, बेंद्रिय तेंद्रिय कोडि जिधा हैं। कोडि लाख नव है चउइन्द्री, सो कुल कोडि हरो जु अतिन्द्री॥ ५॥

द्वादश अर्द्धकोडि जल च्यारि, बारहलाख कोडि नभ गारी। होत चतुष्पद कोडि दशारि, कोडि नवं

उर सर्पनकारी ॥ ६ ॥ देवननी कुल कोडि हरीजे, लाख छवीस कोडि गनि लीजे। नारकमाहीं पचीसहि कोडि, चौदह लाख कोडि नरजोडी ॥ ६ ॥ नाथ येही कुल कोडि नशादो, मोहि तोहि गृह माहि बुलादो। बारही बार इति अरजी है, मोहि हरो जगकी गरजी है ॥ ८ ॥ हे जिनदेव जगत्पति देवा, मोहि करो तुमरे पद सेवा। और कछु नहि चाहि हमारे, पण्डित महाचन्द्र यह धारे ॥ ९ ॥

मालिनी छन्द।

इति जिनगुण सारं, सर्व दुःखं हरारं। भव भव सुखकारं, भव्यकौं मोक्षकारं। निति करि मन शुद्धं, ध्याइये, भव्य नित्यं। चौथेगिरि विदेहे, जानि-वक्षारकस्थं ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरो पूर्वे वक्षारस्थ जिनगृहेभ्यो महार्घम्।

बेसरी छन्द।

मेरु चतुर्थ पूरव माही, गेह जु मर जिहैं अधि-काहि। ते वक्षार अब माहि विराजै, जोहि पूजि शिव सौख्य समाज ॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री मन्दरमेरु पूर्व वृक्षारस्थ जिनगृहपूजा समाप्ता।

अथ मन्दर मेरु पूर्वविदहे विजयार्द्ध जिनगृह पूजा।

मदअवलिप्त कपोल छन्द।

मेरु चतुर्थम पूरब विदेहन माहि विराजै,
　　विजयारध जिन गेह सदा षोडश सुख काजै।
तिनमें जिनवर नित्य विराजत हैं शिवराजै,
　　ते जिन आय विराजहु पूजन सौं अघ भाजैं॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पूर्वविदेह षोडश विजयार्द्ध जिनगृह जिनसमूह अत्रावतरावतर। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

अथाष्टकम्।

मत्तगयंद छन्द।

निर्मल नीर मनोहर ले करि; कंचन झारीय माहि भरावौं। जन्मजरा मृति नाशन कारण धारहि तिन जिनाग्रहि ध्यावौं। मेरु चतुर्थ पूर्वविदेह लसै विजयारध सु रूपमई है, गेह जिनेन्द्रनमैं जिनराज जिजौं निति या हम बुधि भई है॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पूर्वविदेह विजयार्द्ध जिनगृहेभ्यो जलम्॥१॥

केशरि चन्दन मेल सुगन्धित वा करपूर ही माही मिलावौं। सबी घसाय सुपात्र धराय जिनेन्द्र पद द्वय पूज रचावौं॥ मेरु चतु० गे०॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पूर्वविदेह विजयार्द्ध जिनगृहेभ्यो चन्दनं। २॥

सालि अखंडित गन्ध सुमन्डित पाप विहन्डित निर्मल ल्यावौं। पुञ्ज करौं जिनपादहि अग्र सु अक्षय थानपद प्रति जावौं ॥ मेरु चतु० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पूर्वविदेह विजयार्द्ध जिन० अक्षतं ॥ ३ ॥

केतकी चम्पक मालती मोगर, पुष्प महान सुगन्धित ल्यावौं। कामहि बाण मिटावन कारण श्री जिनपादहि पूज रचावौं ॥ मेरु चतु० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पूर्वविदेह विजयार्द्ध जिन० पुष्पम् ॥ ४ ॥

नेवज सद्य बनाय सु मोदक आदि सु कञ्चन थाल भरावौं। रोग क्षुधा निरमूल हुवै जिम श्री जिनपाद पयोज चढ़ावौं ॥ मेरु चतु० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पूर्वविदेह विजयार्द्ध जिन० नैवेद्यम ॥ ५ ॥

दीपक जोति उद्योत करै कपूरहि जोति सु जोति जगावौं। मोह महातम नाशन कारण दीपकतैं जिन पाद सुध्यावौं ॥ मेरु चतु०

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पूर्वविदेह विजयार्द्ध जिन० दीपम ॥ ६ ॥

धूप दशांग बनाय सुगन्धित श्री जिन अग्रही खेव कराऊं। अष्टहि कर्म निवारनकौं जिनराज सु पादहि पूज रचावौं ॥ मेरु चतु० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पूर्वविदेह विजयार्द्ध जिन० धूपं ॥ ७ ॥

आम सुनिंबु नरिंग सु ले फल कञ्चन थाल सु

माहि समोयौं। मोक्ष महाफल चाखनकौं जिनराज पदारहि विंब सु जोयौं ॥ मेरु चतु० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पूर्वविदेह विजयारध जिन० फलं ॥ ८ ॥

नीर सुचन्दन अक्षत पुष्प सुनेवज दीप सुधूप मिलायौं। ले फल अर्घ करौं जिनपादहि पूजन थान अनर्घ सुपायौं ॥ मेरु चतु० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पूर्वविदेह विजयारध जिन० अर्घम् ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येक अर्घ।

रेखता छन्द।

सुमन्दर मेरु पूरबमें, विदेहनमें सुरुप्पनमें।
प्रथम रूपाचले माहि, जिजौं जिन गेह सुखदाई ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पूर्वविदेहस्थ प्रथम विजयारध जिनगृहाय अर्घम् ॥ १ ॥

सुकक्षादेशके माहि रूप्यगिरि, रूपमय जहाही।
तास परि गेह जिन देवा, जिजौं जिनराज करि सेवा ॥

ॐ ह्रीं सुकक्षादेश विजयारध जिन० अर्घम् ॥ २ ॥

जिन गृह पौंण है ऊंचो, कोश इक लंब जिन सूचो।
अधकोश ताका व्यास है, जिजौं विजयारध पाना है ॥

ॐ ह्रीं महाकक्षादेश विजयारध जिन० अर्घम् ॥ ३ ॥

देश कक्षकावनि मध्ये, रूप गिरि तासमें लद्धे।
गेह जिन राज तापरि हैं, जिजौं हम पाप सब हरि हैं ॥

ॐ ह्रीं कक्षकावतीदेश विजयारध जिन० अर्घम् ॥ ४ ॥

सुउत्तर पंच विंशति हैं, पचासहि व्यास जोजन है।
रूपगिरि नाम जिन गेहा, जिजौं जिनराज धरि नेहा॥

ॐ ह्रीं आवर्तादेश विजयारध जिन० अघम् ॥ ५ ॥

लांगलावर्तके माहि, रूप्य गिरि, नाम पै थाही। जिन-
गृह माहि जिन देवा, जिजौं निति पात्र करि सेवा॥

ॐ ह्रीं लांगलावर्तदेश विजयारध जिन० अर्घम् ॥ ६ ॥

नदी सीता सुउत्तरमें, क्षेत्र विजयार्द्ध सुउत्तरमें।
नाम परिगेह जिन केरो, जिजौं जिन अघतैं हेरो॥

ॐ ह्रीं पुष्कलादेश विजयारध जिन० अघम् ॥ ७ ॥

देवारणिके समीप हैं, विदेह सुरूप्य गिरिके हैं।
जिनं गृह माहि हैं जिनजी, जिजौं अरजो हमैं सुनजी॥

ॐ ह्रीं पुष्कलावतीदेश विजयारध जिन० अर्घ ॥ ८ ॥

नदी सीना सु दक्षिणमें, विदेह सु क्षेत्र लक्षणमें।
रूप्यगिरि नाम जिन गेहं, जिजौं जिनराज धरि नेह॥

ॐ ह्रीं वक्षादेशे सीतादक्षिणतटस्थ जिन० अघम् ॥ ९ ॥

सुवक्षार देशके माहि, रूप्यगिरि गेह जिनराई।
जिजौं निति अघतैं सारं, जिनं पद सर्व सुखकारं॥

ॐ ह्रीं सुवक्षादेश विजयारध जिन० अर्घ ॥ १० ॥

महा वक्षार विदेहनमैं, रूप्यगिरि नाम पै सु नमैं।
सुरासुर गेह जिनराई, जिजौं भव माहि सुखदाई॥

ॐ ह्रीं महावक्षारदेश विजयारध जिन० अघम् ॥ ११ ॥

लंब दक्षिणे उत्तरे हैं, व्यास पूरवहि पश्चिम है।

देश वक्षकावती ऐसो, जिजौं जिन गेह है जैसो ॥
ॐ ह्रीं वक्षकावतीदेश विजयारध जिन० अर्घम् ॥ १२ ॥
नदी तट दक्षिणे रम्या, सुक्षेत्र मनोहरं। गरुप्यारूप्य
गिरि गेह जिनवरको, जिजौं जिनताप भवहरको ॥
ॐ ह्रीं रम्यादेश विजयारध जिन० अर्घम् ॥ १३ ॥
सुरम्या देश अति सोहै, सदा जहां काल चोथो है।
तास विजयारध जिन गेह, जिजौं जिनराज करि नेह ॥
ॐ ह्रीं सुरम्यादेश विजयारध जिन० अर्घम् ॥ १४ ॥
देश रमणीयके माहीं, रुप्य गिरि रुप्य मय छांहीं।
तास परि सद्म है जिनको, जिजौं करि अर्घ द्रुव्यनको ॥
ॐ ह्रीं रमणीयादेश विजयारध जिन० अर्घं ॥ १५ ॥
मंगलावतिके देशो लसै, विजयारध सुख गेसे।
तासपरि सद्म सोहै है, जिजौं जिन मर्थ मोहै है ॥
ॐ ह्रीं मंगलावतीदेश विजयारध जिन० अर्घं ॥ १६ ॥
मेरु चोथा सु पूरबमें, रुप्यगिरि षोडशो तबमें।
गेह जिन पूर्ण ले अर्घ, जिजौं जिन पाद सुअनर्घ ॥
ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पूर्वविदेहे षोडश विजयारध षाडश जिनगृहेभ्यः पूर्णार्घम् ॥ १७ ॥
जिजौं जिन बिंब गेहनमें, शतक सतरा अठाईनमें।
सबन कौं अर्घ ले सारं, जिजौं मोहि कीजिये पारं ॥
ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पूर्वविदेह विजयारधस्य सत्तगमै अठईस सर्वजिनबिंबेभ्य पूर्णार्घं ॥ १८ ॥

अथ जयमाला।

दोहा।

मन्दर पूर्व विदेहमैं, षोडश गेह विशाल।
तिन कौं अथ सुख कारणैं, पूजौं पढ़ि जयमाल॥ १॥

पाइता छन्द।

जय मेरु सुमन्दर केरा, पूर्व विजयारध हेरा।
जिन गेहनमें जिनस्वामी, तुम जन्ममाहि सुरनामी॥
घण्टा सुर कल्पनबाजी, ज्योतिषि हरिनाद समाजी।
सुर भवन संख शुभबाज्यो, व्यंतरग्रहि ढोल सुगाज्यो॥
सुनि नाद इन्द्र गज आज्यो, ऐरावत सुन्दर राज्यो।
मुख इक शत सुख मुख माही, दन्ता अठ सर दंताही॥
सरमैं इकसौ पचासं, कमलिनी प्रति कमल पचीसं।
दल इक शत आठहि पढ्ये, दल दल अपछरा सुख नच्चे॥
जह कोडि सताईस धारं, लख जोजन हस्ति सवारं।
ऐसो गज सजि सुरसारं, हरि आयो तुम गृह द्वारं॥
सचि जाय सूतिगृह भीना, मायाशिशु थापिर लीना।
तुमकौं सचि इन्द्रहि रूपे हरि जाय मेरु सु अनूपे॥
तुम जन्म कल्याणक कीना, फुनि लाय मात कर दीना।
हरि तांडव नाच सु कीनौं, तुमरे गुणके रस भीनौं॥८॥
झननं झननं झनकारै, तननननन तान समारै।
घननननन घंट घुरावै, छम छम छम घुंघरू राचै॥९॥

द्रम द्रम द्रम द्रम मुरजानैं, झन झन झन झन नुपरानैं
चट चट पट अट पट ठानैं, ठट ठट ठट हट नट कानैं ॥१०॥

करि रूप अनूप अनूपं, हरि नाचत रंग सु भूपं।
करिके इक जन्मकल्यानौं, हरि जाय लियो जिनथानौं।११

सो दिन हम ध्यावैं अब्ब, जिनराज जन्म लखि सब्ब।
अब नाथ बीनती धारो, हमकों भवसागर तारो ॥१२॥

हमरैं भवमें तुम सेवा, भव भव मांहीं जु रहेवा।
संसार करो चकचूर, तुम महाचन्द्र सुख पूर ॥१३॥

घत्ता छन्द।

यह मन्दर मेरा पूरब केरी,
विजयारध जिन गेह वरं।
नित पूजो ध्यावो भक्ति बढ़ावो,
जावो शिवपुर राज करं ॥१४॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पूर्वविदेह विजयारध जिनगृहेभ्यो महार्घम्।

छन्द चौपाई।

जो बांचै यह पाठ अनूपं, सो होवै दिवमें सुर भूपं।
फुनि नर है चक्रीपद पावै, अनुक्रम मोक्ष रमापति थावै॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री मन्दरमेरु पूर्वविदेहे विजयार्द्धस्थ जिनगृह पूजा समाप्ता।

अथ मन्दरमेरु पश्चिमविदेह विभाग वक्षारस्थ जिनगृह पूजा।

कड़खा छन्द।

मेरुके चतुर्थके पश्चिमे दिशामही, वक्षार माही जिन गेह जानौं। आठ परि आठ हैं सर्व सुख ठाठ हैं, पूजतैं पाप नाशै सु मानौं॥ ते जिना आय सुखदाय शिवराय, अघघाय शिवदाय तिष्ठो महानौं। पूजिहूं अष्ट विधि द्रव्यको कारि सुधि, कीजिये नाथ मम दुःख हानौं॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पश्चिम विदेह विभाग वक्षारस्थ जिनगृह जिन समुदाय अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भवभव वषट् सन्निधापनम्।

जोगीरासो आचली बन्ध।

सुर सरितादिक निर्मल जल भरि, कंचन पात्र भरावो,
जन्म जरामृति नाश करनकौं धारा तीन ढरावौ॥
जिनपद पङ्कज ध्यावो, मेरु चतुर्थम मन्दर पश्चिम
क्षेत्र विदेह मनावो॥ गिरि वक्षार विषै जिनगृह
जिन, पूजन ही सुख पावो। जिन पद पंकज ध्यावो॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पश्चिम विदेह विभाग वक्षारस्थ जिनगृह समुदाय जलम्॥ १॥

कुंकुम चन्दन कदली नन्दन, घसि करि सर्व

मिलावो। भव तप नाशन कारण जिन पद, पूजौं हर्ष बढ़ावो॥ जिन पद०, मेरु चतु०॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पश्चिम विदेह विभाग वक्षारस्थ जिन० चन्दनम्॥ २॥

सालि अखण्डित परिमल मण्डित, दीरघ सरल सु ल्यावो। अक्षय पद पावनके कारण, जिन पद पुँज रचावो॥ जिन पद०, मेरु चतु०॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पश्चिम विदेह विभाग वक्षारस्थ जिन० अक्षतम्॥ ३॥

चम्पक मालती केतकी इनके, पुष्प सुगन्धित ल्यावो। मन्मथ बाण विदारण कारण, जिन पद पद्म चढ़ावो॥ जिन पद०, मेरु चतु०॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पश्चिम विदेह विभाग वक्षारस्थ जिन० पुष्पम्॥ ४॥

नाना रस पकवान सु मोदक, घृतवर आदि बनावो। रोग क्षुधा निर्नाश करनकौं, जिन पद अग्र धरावो॥ जिन पद०, मेरु चतु०॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पश्चिम विदेह विभाग वक्षारस्थ जिन० नैवेद्यम॥ ५॥

दीपक जोति उद्योत होत जिम, जगमग जोति जगावो। मोह तिमिर नाशनके कारण, श्री जिन अग्र जु पावो॥ जिन पद०, मेरु चतु०॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पश्चिम विदेह विभाग वक्षारस्थ जिन० दीपम् ॥ ६ ॥

अगर तगर कृष्नागुरु आदिक, धूप सुगन्धित लावो । अष्ट कर्म नाशनके कारण, जिन पद अग्र खिवावो । जिन पद०, मेरु चतु० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पश्चिम विदेह विभाग वक्षारस्थ जिन० धूपम् ॥ ७ ॥

आम नींबु नारिंग दाखवर, उत्तम फल सु मगावो । मोक्ष महाफल चाखन कारण, जिन पद पद्म चढावो ॥ जिन पद०, मेरु चतु० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पश्चिम विदेह विभाग वक्षारस्थ जिन० फलम् ॥ ८ ॥

जल फल आठौं द्रव्य लेयकैं, सुन्दर अर्घ बनावो । पद अनर्घ पावो जो चाहो, जिन पद अग्र चढावो ॥ जिन पद०, मेरु चतु० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पश्चिम विदेह विभाग वक्षारस्थ जिन० अर्घम् ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येकार्घाणि ।

दोहा ।

सीतोदा उत्तर तटे, पद्मा देश विभाग ।
गिरि वक्षार जिनेन्द्र गृह, पूजौं मन वच आग ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु सीतोदा उत्तरतट प्रथम वक्षार जिनगृहाय अर्घम् ॥ १ ॥

गिरि वक्षार सुवर्णमय, दूजो तापरि जानि।
जिनगृह पूजौं भावतैं, जिन पद मनमें आनि॥

ॐ ह्रीं द्वितीय वक्षारस्थ जिन० अर्घम् ॥ २ ॥

दक्षिण उत्तर लम्ब हैं, गिर वक्षार तृतीय।
तापरि जिनगृह जानिकैं, पूजौ मन शुद्ध कीय॥

ॐ ह्रीं तृतीय वक्षारस्थ जिनगृहाय अर्घम् ॥ ३ ॥

नीलाचलतैं आइयो, सीतोदाके पास।
गिरि वक्षार जिनेन्द्र गृह, पूजो मन वच तास॥

ॐ ह्रीं चतुथ वक्षारस्थ जिनगृहाय अर्घं ॥ ४ ॥

सीतोदा दक्षिण तटे, भद्रशाल वन पास।
गिरि वक्षार जिनेन्द्र गृह, पूजौं शिवपुर आस॥

ॐ ह्रीं सीतोदा दक्षिण तटस्थ पंचम वक्षारस्थ जिन० अर्घम् ॥ ५ ॥

षष्टम गिरि सुन्दर लसैं, निषधाचल निकसान।
तापरि जिनगृह जिनवशु, पूजौं मन वच मान॥

ॐ ह्रीं षष्टम वक्षारस्थ जिन० अर्घम् ॥ ६ ॥

गिरिपैं शलचड उन्नतं, सीतोदापैं पंच।
जिनगृह तहां विचारिकै, पूजो मन करि संच॥

ॐ ह्रीं सप्तम वक्षारस्थ जिन० अर्घम् ॥ ७ ॥

गन्धमालिनि देशमें, गिरि अष्टम वक्षार।
गृह जिनको तापरि लसैं, पूजो सब मद छार॥
ॐ ह्रीं अष्टम वक्षारस्थ जिन० अर्घं॥ ८॥
मन्दर मेरु सुपश्चिमे, गिरि वक्षार सु आठ।
जिनगृह वचन उचारिकै, पूजो मन वच ठाठ॥
ॐ ह्रीं मन्दरमेरो पश्चिम अष्टम वक्षारस्थ जिनबिम्बेभ्यः पूर्णार्घम्॥ ९॥
जिन प्रतिमा सब जानिकै, आठ शतक निरधार।
चौसठि ऊपरि सबनको, पूजो भवदधि तार॥
ॐ ह्रीं मन्दर मेरो पश्चिम वक्षारस्थ आठसै चौसठि सर्व जिनबिंबेभ्यः पूर्णार्घं॥ १०॥

अथ जयमाला।

सोरठा।

मन्दर मेरु महान, पश्चिम गिरि वक्षार अठ।
तिनपै जिनगृह जानि, अब जपी हौं जयमालनैं॥ १॥

चौपाई।

जयजय जिन वक्षारन थान, तुमको पूजत इन्द्र महान। निति प्रति मुखसैं ऐसैं कहै, हे जिनदेव हमै शुद्धि लहै॥ २॥ मेटि देव गति हमरी नाथ, पंचेन्द्रीय हरि कीजिय साथ। त्रस काया हनि करो अकाय, ग्यारह जोग मेटि जिनराय॥ ३॥ वेद दोष हम नाश कराय, मेटि करो चउबीस कषाय। ज्ञान मेटि हमरै

षट सोय, संजम एक असंजम खोय ॥ ४ ॥ दर्शन तीन मिटाय जिनेन्द्र, लेश्या षट ही मिटाय सुरेंद्र। भव्य अभव्य मेटि हम दोय, अर सम्यक्त छहौं हम जोय ॥ ५ ॥

क्षायक सम्यक् हमरै रहै, सेनिपणौ मेटो यह चहै। हारक रूप मिटावो हमें, च्यारि मेटि गुण थान ही नमें ॥ ६ ॥ जीव समास एक हम मेटि, षट पर्याप्तन करो अमेट। प्राण दसौं मेटो जिन नाथ, संज्ञा च्यारि हरो गही हाथ ॥ ७ ॥ उभ उपयोग नाश हम करो, ध्यान दसौं हमरे सब हरो। आश्रव बावन मेटि जिनाय, जोनि च्यारि लख वेग मिटाय ॥ ८ ॥ कुल कोडि छब्बीस ही लाख, कोडि जिनेन्द्र तिहारि साख। यह हम थान कहै चउवीस, सो अब मेट करो जगदीश ॥ ९ ॥ ऐसैं चतुर णिकायक देव, तुमतैं जाचत हैं स्वयमेव। बार बार पूजैं तुम पाय, हे वक्षारनके जिनराय ॥ १० ॥

हमरी तुम प्रतिजावन शक्ति, नाही तुमें यहां है तुम भक्ति। नाथ हे हरो हमरो भव फन्द, करिये हमरै निति सुख कन्द ॥ ११ ॥ पंडित महाचन्द्र निति नमैं, बार बार तुम पाद ही नमैं। भव संकट हरिये मम नाथ, वेगि करो तुमरे पद साथ ॥ १२ ॥

घत्ता छन्द।

यह मन्दर मेरो पश्चिम हेरो,
गिरि वक्षारन जिन गेहा।
सुरपति शश ध्यावैँ भक्ति बढ़ावैँ,
जिन गुण गावैँ धरि नेहा॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पश्चिम वक्षार जिनगृहेभ्यो महार्घं ॥१३॥

दोहा।

मन्दिर पश्चिम गेहकी, पूजा शुभ जयमाल।
जो नर पूजे भावसैं, शिवपुर लहै विशाल॥१४॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री मन्दरमेरु पश्चिम वक्षारस्थ जिनगृह पूजा समाप्ता।

अथ मन्दर मेरु पश्चिम विदेह विजयार्द्ध जिनगृह पूजा।

अडिल छन्द।

मन्दर मेरु चतुर्थम पश्चिमकै विषैं, विजयारध षोडश जिन गेह सु षोडशैं। तिनमें हैं जिनदेव परम पद धारहि, ते जिन आवो पूजौं अष्ट प्रकारही॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पश्चिम विजयार्द्धस्थ जिनसमूह अत्रावतरावतर। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

अथाष्टकं।

मोतिदाम छन्द।

सुर नदी गत निर्मल नीरकं, कनक कुंभ भरो इन पीरकं।
अपर भागहि मंदर मेरुके, विजय अर्ध गृहं जजि हेरके॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पश्चिम विदेह विजयार्द्धस्थ जिनगृहाय जलम् ॥ १ ॥

अगर कुंकुम मेलि घसाईये,
जिन पदांबुज प्रीति चढ़ाईये ॥ अपर० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पश्चिमविदेह विजयार्द्धस्थ जिनगृहेभ्यो चन्दनं ॥ २ ॥

अमल तन्दुल उज्वल धोयकै,
जिन पदांबुज पुंज करोयकैं ॥ अपर० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पश्चिमविदेह विजयार्द्धस्थ जिन० अक्षतं ॥ ३॥

कमल केतकी पुष्प मगाईये,
काम नाशन जिनहि चढ़ाईये ॥ अपर० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पश्चिम विदेह विजयारधस्थ जिनगृहाय पुष्पम् ॥ ४ ॥

सरस मोदक मोदन कीजिये।
क्षुध मिटावन कारण लीजिये ॥ अपर० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पश्चिम विदेह विजयारधस्थ जिन० नैवेद्यं ॥ ५॥

अमल जोति सु दीपक लीजिये।
तम नशावन जिनपद कीजिये ॥ अपर० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पश्चिम विदेह विजयार्धस्थ जिन० दीपम् ॥६॥

अगर आदि सुगन्धित धूप ही।

खेय जिनपद अग्र अनूप ही ॥ अपर० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पश्चिम विदेह विजयार्धस्थ जिन० धूपम् ॥७॥

फल मनोहर पुंग फलादिकं।

जिन पदांबुज धारि अनादिकं ॥ अपर० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पश्चिम विदेह विजयार्धस्थ जिन० फलम् ॥८॥

जल मुखं वसु द्रव्य सु लेयकै।

अर्घ करि शुभ थाल मिलेयकैं ॥ अपर० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु पश्चिम विदेह विजयार्धस्थ जिन० अर्घम् ॥९॥

अथ प्रत्येकार्घं।

रथोद्धता छन्द

मेरु पश्चिम विदेहकै विषै, देश पद्मनाथ इन्द्रपर्वसैं।
सीतोदा नदीय उत्तरै तटं, जैन गेह जजिहौं सुख अटं ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरो पश्चिमे पद्मादेश विजयार्धस्थ जिन-गृहाय अर्घम् ॥ १ ॥

देश दूसरा महा सु पद्म हैं, तास मध्य विजयार्ध सद्म हैं। पूजिहौं सु जिन अर्घ ले मुदा, पूजितैं ही अघ सबकै विदा ॥

ॐ ह्रीं सुपद्मादेश विजयार्ध जिनगृहाय अर्घम् ॥ २ ॥

उत्तरै हि महा पद्म देशमें, जैनगेह राजै विशेषमैं।
इन्द्रचन्द्र धरणिंद्र वन्द्य हैं, पूजये परम भक्ति सन्धि हैं ॥

ॐ ह्रीं महापद्मादेश विजयारध जिन० अर्घम् ॥ ३ ॥

पद्मकावतिपदेश माहि है, रूदपर्वत लसै तहाहि है। तासपैं जिनगृहं मनोहरं, पूजतैं सकल पापकौं हरं ॥

ॐ ह्रीं पद्मकावतिदेश विजयारध जिन० अर्घम् ॥ ४ ॥

सङ्खलाहि शुभ देश माही हि, रूदपके जिनगृहं सुखाहि ही। इन्द्रचन्द्र करि पूज्य हैं सदा, पूजतैं सकल पाप है विदा ॥

ॐ ह्रीं संखलादेश विजयारध जिन० अर्घं ॥ ५ ॥

देश है सु नलिनीहि नामतैं, तास मध्य विजयारध धामतैं। पाप ताप निति होय दूर हैं, जैन गेह सुख होय पूर हैं ॥

ॐ ह्रीं नलिनीदेश विजयारध जिन० अर्घं ॥ ६ ॥

देश सप्तम मनोग्य सार हैं, नामतैं सु कुमुदाहि धार है। रूप अद्रिमधि गेह सुन्दरं, पूजि हौं सकल पाप कन्दरं ॥

ॐ ह्रीं कुमुदादेश विजयारध जिन० अर्घम् ॥ ७ ॥

देश है सु सरिताहि अष्टमौं, भूतनाम वन पासि सुष्टमौं। तासको सु विजयारध गेह हैं, पूजिहौं सु शुभ सार नेह है ॥

ॐ ह्रीं सरितादेश विजयारध जिन० अर्घम् ॥ ८ ॥

वंशस्थ छन्द।

चतुर्थ मेरो दिशि पश्चिमे लसैं, नदी ही सीतोद सु दक्षिणे वसै। सु देश वप्रा मधि रूप्यके विषैं, जिनेन्द्र गेहं जजिलैं अर्घ घसै॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरो पश्चिमे सीतोदा दक्षिण तटे वप्रादेश विजयारध जिन० अर्घम्॥ ९॥

सुवप्रदेशो विजयारध सार है, सु रूप्यवर्ण नीति सुरक्ष धार है। जिनेन्द्र गेहं तिसपैं विचारिके। जिजो सु भव्या नीति चित्त धारीकैं॥

ॐ ह्रीं सुवप्रादेश विजयारध जिन० अर्घम्॥ १०॥

महा सुवप्रा सुखकारि देश हैं, जहां नहीं होत कुदेव लेश है। तहां गिरि है विजयारध तासपैं, जिनेन्द्र गेहं दुख नाही जासपैं॥

ॐ ह्रीं महावप्रादेश विजयारध जिन० अर्घं॥ ११॥

चतुर्थमेरो शुभ वप्रकावति, सु देश रूप्याचल है तहां। प्रती तहा जिनेन्द्राहि सु सद्म संजुता, जिजौं सदा सर्व सुखं पदं गता॥

ॐ ह्रीं वप्रकावतिदेश विजयारध जिन० अर्घम्॥ १२॥

लसैहि गन्धा शुभ देश तास ही, गिरी सु रूप्यं न गे[illegible] ही। जिजौं सदा अर्घ बनाय मोदतैं, जिनेन्द्र गेहं सुख होय सोधतैं॥

ॐ ह्रीं गन्धादेश विजयारध जिन० अर्घम्॥ १३॥

सुगन्ध देशं सुखसार सम्पदं, लसैं तहां रूप्य-गिरि गतं मुदं। सु सद्म जिनं तिस मध्य सार है, जिजौं करो मोहि भवाद्धि पार है॥

ॐ ह्रीं सुगन्धादेश विजयारध जिन० अर्घम्॥ १४॥

मनोहरेदेश ही गन्धिला विषैं, गिरिहि रूप्यं अति सुन्दरं लखे। जिनेन्द्र गेहं तिस मध्य सार है, सु पूजतैं ही भव सिंधु पार हैं॥

ॐ ह्रीं गन्धिलादेश विजयारध जिन० अर्घं॥ १५॥

सु देश है सार है गन्धमालिनि तहां, सु रूपाचल सार शालिनी। सुरेन्द्र नागेन्द्र नरेंद्र वन्दितं, जिजौं जिनं गेह अघं निकंदितम्॥

ॐ ह्रीं गन्धमालिनीदेश विजयारध जिन० अर्घं॥ १६॥

जिनेन्द्र गेहं जजि षोडशं सदा, चतुर्थ मेरो गत पश्चिमे मुदा। सु अर्घं पूर्णं करि हर्षं पूरतैं, जिजौं सबैं गेह सु मोद भूरितैं॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरो पश्चिम षोडश विजयारध जिन० समूहाय पूर्णार्घं॥ १७॥

जिनेन्द्रं बिम्बं सतसप्तदिग्प्रमं सु अष्टविंशं अधिकं, अघं दमं सु अर्घं सारं परिपूर्णं कीजिये। जिनेन्द्र बिम्बं सकलं जजीजिये॥

ॐ ह्रीं रूप्यगत अठाईस सर्वजिनबिंबेभ्यः पूर्णार्घं॥ १८॥

अथ जयमाला।

दोहा।

मन्दरमेरु सु पश्चिमें, विजयारध जिन गेह।
षोडशकी जयमाल अब, जपौ सार धरि नेह ॥१॥

त्रोटक छन्द।

जय मन्दरमेरुहि पश्चिममें, विजयारध षोडश-सागरमें। तिनमें तुमगेहनमें तुम हो, जय इन्द्र धरेन्द्र सदा नमि हो ॥ २ ॥ हमकौं नरमाहि निकाश करो, नरनाहि तहां हमकौं जु धरो। नरमें गति है नर नित्य सहि, तहँ इन्द्रिय पञ्चहि जिन्न रहि ॥ ३ ॥ त्रस काय ही कायनमाही कही, फुनि तेरह जोगहि जान यही। अथ वेद कषाय पचीस सही, तह ज्ञान सु आठहि होत यही ॥ ४ ॥ फुनि संजम सातहि पावत है, फुनि दर्शन च्यारि लहावत हैं। तह लेश्यहि षट विधनायक ही, भवि दोयहि पावत देव यही ॥ ५ ॥

षट सम्यक होत तुमें उचरी, तह सणिय होतन और धरि। फुनि होत आहारक नाह रहै, गुणथान चतुर्दश ही जु कहै ॥ ६ ॥ तह जीव समास जु एकहि है, परियाप्त छहौं जिनदेव कहैं। दश प्राण निरन्तर राजत हैं, चतु संज्ञहि नित्य समाजत हैं ७॥ उपयोग दुवादस है सबही, नरमाही प्ररूपण नाथ कही। तह-

ध्यान सु षोडश पावन हैं, तह आश्रव सर्व दुनाहित हैं ॥ ८ ॥ फुनि जोनि चतुर्दश लक्ष कही, कुल कोडि सु लक्ष चतुर्दश ही, यह थान लसै चउबीस खरो, इनतैं निरवारण नाथ करो ॥ ९ ॥ यह है जगजाल असार खरो, तुम तारक पाणिन नाम धरो। अब तो हमकौं भवतैं उधरो, महचन्द्र मनोरथ सर्व सरो ॥ १० ॥

मालिनी छन्द।

इति चतुर्थमेरो मन्दरे पश्चिमं हि, विजय अरध अद्रि षोडशं सर्व है ही। जिनपरि जिनगेहं नित्य राजै अनूपं, जजि भविकरि भक्ति तीनलोकं सुभूपं ॥

ॐ ह्रीं मन्दर मेरु पश्चिम षोडश विजयारध जिनगृहेभ्यो महार्घं ॥ ११ ॥

सोरठा।

जो नर प्रीति लगाय, वाचै निति प्रति पाठ यह।
सो नर स्वर्ग लहाय, फुनि शिव रामारमण है ॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री मन्दरमेरु पश्चिम विजयार्द्ध जिनगृह पूजा समाप्ता।

अथ मन्दर मेरु षट्कुलाचलस्थ जिनगृह पूजा।

दोधक छन्द।

मन्दरमेरु कुलाचल सोहै, ऊपरि षट् जिनमन्दिर हो है।
ते जिन आय विराजो सारा, पूजत हौं अब अष्टपकारा॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु षटकुलाचलस्थ जिनगृह जिनसमूह अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

अथाष्टकं।

चाल—नंदीश्वर पूजाकी।

शुभ निर्मल नीर मगाय, कञ्चन भृंग भरो।
जनमादिक रोग मिटाय, जिनपद धार करो॥
श्री मन्दरमेरु महान, दक्षिण उत्तरमैं।
कुलपर्वतपैं जिन जानि, पूजो दुनरफैं॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु षटकुलाचलस्थ जिनगृह जिनसमूहाय जलम्॥ १॥

घन सार अगर करपूर, मेलि घसो सारे।
भवतप जिम होवे दूरि, जिनपदपैं धारैं। श्रीमंदर०॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु षटकुलाचलस्थ जिन० जिनसमूहाय चन्दनं॥ २॥

सित शालि अखण्ड अनूप, लावो प्रभु आगैं।
करि पुञ्जहि पुण्य स्वरूप, अक्षय पद काजैं। श्रीमंदर०॥
ॐ ह्रीं मन्दरमेरु षटकुलाचलस्थ जिनगृह जिनसमुदाय अक्षतम् ॥ ३ ॥

शुभ चम्पक जाइ सु बेलि, इनके पुष्प गृहो।
शुभ कञ्चन पात्र सु मेलि, ल्यावो मदन दहो। श्री ॥
ॐ ह्रीं मन्दरमेरु षटकुलाचलस्थ जिन० पुष्पं॥ ४ ॥

नाना रसके पकवान, मोदक मोदकपं।
धरि कञ्चन भाजन आन, रोग क्षुधादि हरैं। श्री० ॥
ॐ ह्रीं मन्दरमेरु षटकुलाचलस्थ जिन० नैवेद्यम् ॥ ५ ॥

करपूर मई घृत रूप, दीपक जोय धरो।
जिनपद परि आरति भूप, मोह अन्धेर हरो॥ श्रीम०
ॐ ह्रीं मन्दरमेरु षटकुलाचलस्थ जिन० दीपम् ॥ ६ ॥

कृष्ना गुरु आदि दशांग, धूप सुगन्ध करो।
जिन आगहि खेय दशांग, अष्टहि कर्म जरो॥ श्री०॥
ॐ ह्रीं मन्दरमेरु षटकुलाचलस्थ जिन० धूपं ॥ ७॥

फल सुन्दर आम नारिंग, नीबू भूरि धरो।
जिनपाद सु अग्र धरिंग, भवतरि मोक्ष वरो॥ श्री०॥
ॐ ह्रीं मन्दरमेरु षटकुलाचलस्थ जिन० फलं ॥ ८ ॥

जल चन्दन शालि सु पुष्प, नेवज दीप धरो।
फुनि धूप महाफल रूप, इनकौं अर्घ करो॥श्रीमन्दर०
ॐ ह्रीं मन्दरमेरु षटकुलाचलस्थ जिन० अर्घम् ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येक अर्घ्य ।

राग बसन्तमें।

जजि मन्दरमेरु कुलाचलके,
जिन मन्दिर षट् निति निर्मलके। जजि०। टेक॥
शत जोजन उन्नत भालनके,
हिमवन हि प्रथम दुख जालनके।
तिस उपरि गृह जग पालनके, जजि० ॥
ॐ ह्रीं हिमवान कुलाचलस्थ जिनगृहाय अर्घम् ॥ १ ॥
दूजो गिरि हैं मह हिमवनके,
रूपामय द्वै शत जोजनके।
तापरि जिनगृह जग पालनके, जजि० ॥
ॐ ह्रीं महाहिमवान् कुलाचलस्थ जिन० अर्घम् ॥ २ ॥
निषधाचल नाम कुलाचलके,
चउसै जोजन उंचा थलके।
सुवर्णमय सुन्दर ना तुलके, जजि० ॥
ॐ ह्रीं निषध कुलाचलस्थ जिन० अर्घम् ॥ ३ ॥
उत्तर दिशि नील कुलाचलके,
जिनगेह लसै उपरि थलके।
अति सुन्दर जोति झला झलके, जजि० ॥
ॐ ह्रीं नील कुलाचलस्थ जिन० अर्घम् ॥ ४ ॥
रुक्मी पञ्चम सु कुलाचलके,
रूपामय नित्य थिरा चलके।

तापरि जिनगेह सदा झलके, जजि० ॥

ॐ ह्रीं रुक्मी कुलाचलस्थ जिन० अर्घम्॥ ५ ॥

शिखरी कुल नाम सदा चलके,
सुवर्णमय शत जोजन घलके।
तापरि पूजो जिन देवलके, जजि० ॥

ॐ ह्रीं शिखरी कुलाचलस्थ जिन० अर्घं ॥ ६ ॥

षट् है कुल पर्वत मन्दरके,
त्रय दक्षिण त्रय उत्तर मिलिके।
तिनपैं षट् मन्दिर जिन झलके, जजि० ॥

ॐ ह्रीं शिखरी अतषट्कुलाचलस्थ जिनगृहेभ्यः पूर्णार्घम् ॥७॥

जिन बिम्ब सबैं षट् शत जिनके,
अडताल अधिक शुभ कन्दनके।
करि पूर्ण अर्घ जग पालनके, जजि० ॥

ॐ ह्रीं षट्कुलाचलस्थ छसै अडतालीस सर्वजिनबिंबेभ्यः पूर्णार्घं ॥ ८ ॥

अथ जयमाला।

दोहा।

मन्दरके दक्षिण अपर, षट् जिनगेह महान।
अब तिनकौं जयमालतैं, पूजत हौं सुख जानि ॥ १ ॥

पद्धरी छन्द।

जय मन्दरमेरु कुलाचलान, जिनगेहनके जिनवर महान्। जय जीव समास तुमैं बखान, ते मेट करो जिनवर प्रधान ॥ २॥ चौदह यह भेद समास नाथ,

सूक्षम बादर इक इन्द्री साथ। बे इन्द्रिय ते चौइंद्रि जानि, सैनी असैनी पंचेन्द्रि मानि ॥३॥ पर्याप्त इतर उगनीस एव, भू अपने जप वन च्यारि देव। सूक्षम हि बादर करि आठ भेद, सधारण प्रत्येकं अखेद ॥ ४ ॥ साधारण नित्य इतर निगोद, सूक्षम बादर करि च्यारि सोध। प्रत्येक सप अप्रतिष्ठ दोय, विकलं पंचेन्द्रिय दोय होय ॥ ५ ॥

यह भेद कहे उगनीस तुमैं, पर्याप्त अपर्याप्त हि सु नमैं। सु अलब्धहि यह सब जीव भेद, सत्तावन है जु समास लेद ॥६॥ एकेन्द्रिय बैयालीस तथा, विकल त्रय है नव भेद जिथा। जल थल नभ चारि समूर्छ जाय, सैनी असैनी षट जिताय ॥ ७॥ पर्याप्त इतर सु अलब्ध थाय, सम्मूर्छन अष्टादश बताय। गर्भज जल थल नभ चारि होय, सैनीय असैनीय षट समोय ॥८॥ फुनि भोग कुभोग हि भूमि होय, पर्याप्त इतर मिलि सोल होय। यह पंचेन्द्रिय तिर्जच भेद, चौतीस कहे तुम हो अखेद ॥ ९ ॥ आरजि फुनि म्लेछ हि खण्ड होय, फुनि भोग कुभोग मनुष्य जोय। पर्याप्त इतर इक वृद्धि आय, यह भेद मनुष्य ही नव समाये ॥१०॥

हुय देव होय नारक लहेव, यह जीव समास अठाणवेव। खर मृदु भू अप अर तेज वाय, सूक्ष्म बादर करि दस कहाय ॥ ११ ॥ साधारण च्यारि हि

भेद थाय, सप्त अप्रतिष्ठ पण पण गनाय। चौबीस भेद पर्याप्त इतर, सु अलद्ध इकेन्द्रिय हैं बहत्तर ॥१२॥ विकलत्रय नव पंचेन्द्रि पशु, सन्मूछन अष्टादशाही सु। गर्भज जल थल नभ सैनी इतर, यह कर्मभूमि षट भेद तितर ॥१३॥ त्रय भोग सु भूमिहि थल नभ है, षट भेद हि बारेह गर्भज है। पर्याप्त इतर चउवीस भेद, पशुमें इकसौ तेवीस भेद ॥१४॥ गुणचास पटल पर्याप्त अन्य, यह भेद अठाणव नरक मन्य। सुर भवनवासी चालीस भेद, बत्तीस भेद वितर गनेद ॥१५॥ ज्योतिषि मधि दोय हि भेद होय बारह फुनि कल्पनवासी जोय। पर्याप्त इतर सब देवमाहि, एकशत बहत्तरि तुम कहाय ॥ १६ ॥

आरजि अर म्लेछ सुभोग तीन, अर भू कुभोग मिलि षट भईन। पर्याप्त इतरतैं बार भेद, आरजि अलद्धितैं तेर लेद ॥ १७ ॥ नरके यह तेरह भेद होय, सब मिलिकरी जीव समास जोय। शत च्यारी अधिक षट भेद एव, यह जीव समास तुमैं कहेव ॥१८॥ इनतैं जु निकासो नाथ मोही, बारंबार हि हम कही तोही नहि। और ठोर इनतैं बचाव, तुमरे पदमा हि हमैं जु भाव ॥१९॥ इतनी अरजी उरधार धार, भव-सागरतैं मुझि तारतार। पंडित महाचन्द्र रहै हजूर, सब जीव समास खिपाय दूर ॥ २० ॥

घत्ता

इति जय जिनदेवा, कुलगिरि केवा, सब सुख देवा करि सेवा। निनिहि भवि आओ, वांछित पावो, गुणंगण गावो निति एवा॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु षटकुलाचलस्थ जिनगृहेभ्यो महार्घं॥ १॥

आर्या छन्द।

मंदर मेरु कुलाचल जिनगृह, पूजा सु जो रचै प्राणि।
सो पावै अनुक्रमतैं, शिवनगरी सर्व सुखखानी॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री मन्दरमेरु षटकुलाचलस्थ जिनगृह पूजा समाप्ता।

अथ मन्दरमेरु भरतक्षेत्र विजयार्द्ध जिनगृह पूजा।

दोहा।

मंदरमेरु हि दक्षिणे, भरतक्षेत्र मधि सार।
विजयारध जिन भवन जिन, थापन हौं सुखकार॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु दक्षिणदिशि भारतक्षेत्र विजयारधस्थ जिनगृह जिनसमूह अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्रमम सन्निहितो भवभव वषट् सन्निधिस्थापनं।

अथाष्टकं।

चाल होरी बसंतमें।

जिजो हो जिन मंद्र भरत। जिजो० ॥ टेक ॥
निर्मल नीर कनक झारी भर, गन्ध सुगन्धित ल्योरे।
जन्म जरा मृत नाशन कारण, धारा तीन ही द्योरे॥
चरण जिनराज पूजो हो, जिन मंद्र भरत। जिजो०॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु भरतविजयार्द्धस्थ जिनगृहाय जलम् ॥ १ ॥

केशरि अगर कपूर मेलिकै, सबकौं एक घसो हो।
भवतप नाशन कारण जिन लखि, कमल चरण चर्चौ
हो॥ सुगन्ध शरीर लहो हो, जिनमन्द्र भरत।
जिजो हो०॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु षटकुलाचलस्थ जिन० चन्दनम् ॥ २ ॥

शालि अखण्डित परिमल मण्डित, दीरघ सरल
गहो हो। पञ्च पुञ्ज करि जिनपद आगैं, अक्षय पद
ज्यौं लहो हो॥ फेरि भवमें न रहो हो, जिनमन्द्र०॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु षटकुलाचलस्थ जिन० अक्षतम् ॥ ३ ॥

कमल कुन्द सु गुलाब सुगन्धित, इनके पुष्प
लहो हो। कामबाणके नाशन कारण, जिनपद अग्र
चहो हो॥ काम दुठ वेगि दहो हो, जिन मन्द्र०॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु षटकुलाचलस्थ जिन० पुष्पम् ॥ ४ ॥

नाना रस नैवेद्य बनावो, कञ्चन थाल भरो हो।

रोग क्षुधाके मेटन कारण, जिनपद पूज चहो हो ॥
फेरि नहिं भूखमरो हो, जिन मन्दर० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु षटकुलाचलस्थ जिन० नैवेद्यम ॥ ५ ॥

दीपक जोति जगाय मनोहर, जिनपद आरति जोवो । मोह महातम मेटि‌र पावो, निजपद राज करो हो ॥ फेरि नहिं मोह नमोहो, जिन मन्दर० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु षटकुलाचलस्थ जिन० दीपम् ॥ ६ ॥

अगर तगर कृष्णा गुरु लेऊँ, सुन्दर धूप खहो हो। अष्टकर्म दुठ काष्ठ जरनकौं, खेवो जिनपद दोहो ॥
फेरि नहिं कर्म वहो हो, जिन मन्दर० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु षटकुलाचलस्थ जिन० धूपं ॥ ७ ॥

आम्र नींबू नारिंग मुख्य यह, उत्तम फल कर ल्यो हो । मोक्ष महाफल चाखन कारण, जिनपद अग्र धरो हो ॥ फेरि भव फल न लहो हो, जिन मंदर०॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु षटकुलाचलस्थ जिन० फलं ॥ ८ ॥

जल चन्दन तन्दुल प्रसून चरु, दीप धूप फल ल्योहो । इनकौं अर्घ बनाय गाय गुन, जिनपदपैं उतरो हौं ॥ फेरि नहिं मोल गहो हो, जिन मन्दर० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु षटकुलाचलस्थ जिन० अर्घम् ॥ ९ ॥

चौपाई ।

मन्दरमेरु हि दक्षिण महि, भरतक्षेत्र विजयार्द्ध छाहि । तापरि जिनगृह पूजो सार, करि कर अर्घ अष्ट प्रकार ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु दक्षिणदिशि भरतक्षेत्र विजयारधस्थ जिनगृहाय अर्घं ॥ १ ॥

तिस मन्दरमें जिनके विंब, इकशत आठ विराजित हंब। तिनकौं पूरण अर्घ बनाय, पूजत ही सब विघ्न विलाय॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरुर्दक्षिणे भरतक्षेत्र विजयारधस्थ जिनगृह मध्ये एकसो आठ सर्वजिनविंबेभ्यः पूर्णार्घं ॥ २ ॥

अथ जयमाला।

सोरठा।

मेरु सु मन्दर माहीं, दक्षिण भारत रूपगिरि।
तापरि जिनगृह ध्याहिं, अब जयमाला जपत हौं ॥१॥

राग–नीबरवाकी ठुमरीमें

कैसे जिन पाऊंरे मन्दर भरत मझारिमें ॥कैसैं०॥टेक॥
आश्रवको निर्णय जिनकी नौं, गुणथानक मधि ल्यारीमैं।
कैसैं जिन पावौंरे, मन्दर भरत मझारिमें ॥कैसैं०॥१॥
पंच मिथ्यात्व पंचीस कसाय, है अविरत बारह धारि मैं।
॥ कैसैं० ॥ २ ॥
पंद्रह जोग सतावन आश्रव, गुणथानक लगनारो मैं।
॥ कैसैं० ॥ ३ ॥
पचपन आदि पचास द्वितीये, तयालीस तीजारी मैं।
॥ कैसे० ॥ ४ ॥

चौथे छियालीसमैं तीसं पंचमैं, षष्टम चोविस सारी मैं।
॥ कैसे० ॥ ५ ॥
बाईस सप्तम अष्टम विंशति, नवमैं अन्तिम ग्यारी मैं।
॥ कैसैं० ॥ ६ ॥
दश दश मैं एकादश द्वादश, गुणथाने नव गारि मैं।
॥ कैसैं० ॥ ७ ॥
सात जोग गुण थान तेरमैं, आश्रवयौं जुव नारी मैं।
॥ कैसैं० ॥ ८ ॥
ऐसो आश्रव भेद बताया, इनकौं हनि शिवनारि मैं।
॥ कैसैं० ॥ ९ ॥
ऐसे जिन मंदनके माही, मन हमरा उपगारी मैं।
॥ कैसैं० ॥ मन्दर० ॥ १० ॥
हमरी शक्ति नहीं जावनकी, यहां ही भक्ति करारी मैं।
॥ कैसैं० ॥ ११ ॥
सो जिन आश्रव मेटि हमारा, संवर अंवर धारि मैं।
॥ कैसैं० ॥ १२ ॥
तुमरो सेवक तुम चरनन पैं, बुध महाचन्द्र खरारी मैं।
॥ कैसैं० ॥ १३ ॥

घत्ता।

इति मन्दर मेरो दक्षिण हेरो, भरतक्षेत्र विजयार्द्ध जिनं।
मैं पूजों ध्याऊँ जिन गुण गाऊँ, भक्ति बढाऔं रैनिदिनं॥

वेसरि छन्द।

जो जिनेंद्र पद भक्ति बढावैं,
मन्दरे हि दक्षिणे दिशि जावै।
रूप्य अद्रि यह पाठ बतावै,
सास आइय शिव देखन आवैं॥ १॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री मन्दरमेरु दक्षिणदिशि भरतविजयार्द्ध जिनगृह पूजा समाप्त।

अथ मन्दर मेरु उत्तरदिशि ऐरावत-क्षेत्र विजयार्द्ध जिनगृह पूजा।

कवित्त।

मन्दिर मेरु सु उत्तर की दिशि, क्षेत्र ऐरावत तामधि जानौं। रूप्य गिरि शुभ रूप्य मई, तीस ऊपरि गेह मनोहर मानौं, तामधि एक शतं अरु आठ ही, बिंब लसैं नितिनाही घटानौं, तो जिन आय विराजहु अत्रहि। पूज करौं वसु द्रव मिलानौं॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु उत्तरदिशि ऐरावत क्षेत्र विजयार्द्धस्थ जिनगृह जिनसमूह अत्रावतरावतर। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्

रागिनी झंझोटी टूमरी।

जजि जिन गृह मन्दर उत्तर मैं,

ऐरावत रूप्पगिरि परि मैं ॥ जजि० ॥ टेक० ॥

कंचन झारी जल भरी प्यारी, धारा तीन दरी धरमैं।

जजि जिन गृह मन्दर० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु उत्तरदिशि ऐरावत क्षेत्र विजयार्द्धस्थ जिनगृहाय जलम् ॥ १ ॥

केशरि चन्दन मेलि घसावो, जिन पद पूजत ताप गमैं।

जजि जिन० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु उत्तरदिशि ऐरावत क्षेत्र विजयारधस्थ जिन० चन्दनं ॥ २ ॥

शालि अखण्डित उज्वल दीरघ जिनपद आगैं पूंज रमैं।

जजि जिन० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु उत्तरदिशि ऐरावत क्षेत्र विजयारधस्थ जिनगृहाय अक्षतम् ॥ ३ ॥

कुंद केतकी पुष्प सुगन्धित, ले जिन पूजौं कामदमैं।

जजि जिन० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु उत्तरदिशि ऐरावत क्षेत्र विजयारधस्थ जिनगृहाय पुष्पम् ॥ ४ ॥

नाना रस नैवेद्य बनावो, जिन पद पूजि क्षुधा थिरमैं।

जजि जिन० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु उत्तरदिशि ऐरावत क्षेत्र विजयारधस्थ जिन० नैवेद्यम् ॥ ५ ॥

दीपक ज्योति उद्योत होत हैं, जिनपद पूजत मोह दमौं।
जजि जिन० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु उत्तरदिशि ऐरावत क्षेत्र विजयारधस्थ जिन० दीपम् ॥ ६ ॥

श्री खण्डादिक धूप मनोहर, जिन पद खेवत कर्म शमैं।
जजि जिन० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु उत्तरदिशि ऐरावत क्षेत्र विजयारधस्थ जिन० धूपम् ॥ ७ ॥

आम नीबू नारिंग मगावो, जिन जजिजावो शिवघरमैं।
जजि जिन० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु उत्तरदिशि ऐरावत क्षेत्र विजयारधस्थ जिन० फलम् ॥ ८ ॥

जल फल अर्घ बनाय चढावो, जिन पद थान अनर्घ पमैं।
जजि जिन० ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु उत्तरदिशि ऐरावत क्षेत्र विजयारधस्थ जिन० अर्घम् ॥ ९ ॥

अडिल्ल छन्द।

मन्दर मेरु चतुर्थम ताकी, उत्तर ऐरावत हैं क्षेत्र। तहाँ विजयार्द्ध रे तापरि जिन गृह, सुन्दर पौण उतंग है। कोशलंब अध व्यास पूजि दुःख भंग है॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु उत्तरदिशि ऐरावत क्षेत्र विजयारधस्थ जिनगृहाय अर्घम् ॥ १ ॥

जिनवर बिंब तासमैं शत इक आठ हैं, धनुष पंच शत तुंग रत्न मय तात है। नितिप्रति ऐसैं नाहि वृद्धि नहि घटि है, ते जिन पूजित भस्म होत अघ काठ है ॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु उत्तरदिशि ऐरावत क्षेत्र विजयारधस्थ जिनगृहमध्ये एकसौ आठ सर्व जिनबिम्बेभ्यः पूर्णार्घम् ॥ २ ॥

अथ जयमाला।

दोहा।

मन्दर मेरु सु उत्तरे, विजयारध जिन गेह।
ताकी जपि जयमाल अब, पूजो करि अति नेह ॥१॥

रागि निगोडोमें।

मन्दर उत्तर माही विजयारध, जिन साईं हो हरो।
अघ मेरा मन्दर० ॥ टेक० ॥

जूवा मांस रु हो मद्यहि, वेश्यातैं जो अघ होत घनेरा हो। हरो अघ० ॥ १ ॥ खेट रु चोरितैं पर सेवनतैं, सातौं व्यसन करेरा हो। हरो अघ० ॥ २ ॥ जाति और कुल हो, ईश्वर तामद हो। रूप रु ज्ञान मदेरा हो, हरो अ० ॥ ३ ॥ तप मद बलतैं हो, चतुराई मदतैं यह मद आठ नवेरा हो। हरो अ० ॥ ४ ॥ मांस सहत मद्यतैं ऊंवर कटुंबरतैं, पीपल बड फल केरा हो। हरो अ० ॥ ५ ॥

पील्हू खावन मूलगुणं विन हो, जो अघ होत घनेरा हो। हरो अ० ॥ ६ ॥ ओला घोल बडाके खानेतैं,

निशि भोजन अघ डेरा हो। हरो अ० ॥ ७॥ बहु बीजा फूनी होवैं गण संधान हो, वर पीपल पीलु केरा हो। हरो अ० ॥ ८॥ ऊँबर और कठुम्बर पाकर हो अघ, अजान फल केरा हो। हरो अ० ॥ ९॥ कन्द मूल माटि विष आमिषतैं, मधु मांखण मद्य केरा हो। हरो अ० ॥ १०॥

फल अति तुच्छ तुषार चलित रसतैं, जो अघमैं सु घनेरा हो। हरो अ० ॥ ११॥ यह बाईस अभक्ष खाणतैं हो, पाप भये बहु तेरा हो। हरो अ० ॥१२॥ ऐसे श्रावकके पद माही, जे पाप लगे दुःख देरा हो। हरो अ० ॥ १३॥ सो सब पाप मिटाबो श्री जिनजी, दीजे शिवपुर डेरा हो। हरो अ० ॥ १४॥ तुमपैं जाचत निति प्रति एतो हो, बुध महाचन्द्र तुम चेरा हो। हरो अ० ॥ १५॥

दोहा।

मन्दर उत्तर दिशि तने, ऐरावत विजयार्द्ध।
जिनगृहकी जयमाल यह, पूजत ही शिवसार्द्ध। १६॥

ॐ ह्रीं मन्दरमेरु ऐरावतक्षेत्र विजयारधस्थ जिनगृहाय महार्घम् ॥

सोरठा।

जो बाचै यह पाठ, तन मन प्रीति लगायकैं।
सो पावैं दिव ठाठ, अनुक्रम शिवरामा वरै ॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री मन्दरमेरु ऐरावत विजयारध जिनगृह पूजा समाप्ता।

अथ पुष्करार्द्ध पश्चिमभागे विद्युन्मालि मेरुके च्यारि वननके षोडश जिनगृह पूजा।

छप्पय।

विद्युन्माली मेरु पश्चिमे भाग विराजै, षोडश जिनगृह च्यारि वननके माहि विराजै च्यारि दिशनके च्यारि एक वन च्यारि समाज, च्यारि वननके षोडश यौं मिलि होत उनाजै॥

तिन माहि बिंब जिनदेवके, इकमें इक शत आठ।
ते आय विराजो नाथ अब, मैं पूजौं करि ठाठ॥

ॐ ह्रीं पुष्करार्द्धवर द्वीपस्थ पश्चिमभागे विद्युन्मालिमेरु चतुर्वनस्थित षोडश जिनगृह जिनसमूहाय अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भवभव वषट् सन्निधापनम्।

दोधक छन्द।

निर्मल नीर गँग मुख लेकैं, तीन हि धार दराब हि देकै।
विद्युन्मालि चतुर्वन केरा, षोडश गेह जिजो शिव नेरा॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु चतुर्वनस्थित षोडश जिनगृह जिनसमूहाय जलम्॥ १॥

चन्दन कुँकुम मेलि घसावो, पाद पद्म जिन पूज रचावो। विद्युन्मालि०॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु चतुर्वनस्थित षोडश जिनगृह जिनसमूहाय चन्दनम् ॥ २ ॥

मुक्त फलं सम तन्दुल लेकैं, पंच हि पूँज करो सुख सेकैं। विद्युन्मालि० ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु चतुर्वनस्थित षोडश जिन० जिनसमूहाय अक्षतम् ॥ ३ ॥

केतकी आदिक पुष्प सुगन्धे, ले करि पूज हो जिनपद द्वंद्वे। विद्युनमालि० ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु चतुर्वनस्थित षोडश जिन० जिनसमूहाय पुष्पं ॥ ४ ॥

नेवज मोदक आदि बनावो, रोग क्षुधादि चढ़ाय नशावो। विद्युनमालि० ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु चतुर्वनस्थित षोडश जिन० जिनसमूहाय नैवेद्यम् ॥ ५ ॥

दीपक जोति उद्योत करावो, मोह तमो ततकाल नसावो। विद्युनमालि० ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु चतुर्वनस्थित षोडश जिन० जिनसमूहाय दीपम् ॥ ६ ॥

धूप सुगन्ध दशांग हि ल्यावो, जिनपद खेयर कर्म मिटावो। विद्युनमालि० ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु चतुर्वनस्थित षोडश जिन० जिनसमूहाय धूपम् ॥ ७ ॥

आमरु निंबु नरिंग अनूपं, उत्तम ले फल सुन्दर रूपं। विद्युनमालि० ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु चतुर्वनस्थित षोडश जिन० जिनसमूहाय फलम् ॥ ८ ॥

आठ हि द्रव्य मिलाय बनावो, अर्घ जिजो जिन ज्यौं सुख पावो। विद्युनमालि० ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु चतुर्वनस्थित षोडश जिन० जिनसमूहाय अर्घम् ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येकार्घाणि।

कामिनिमोहन छन्द।

मेरु भूमि उपरि प्रथम बन राज ही, तासकी पूर्व दिश गेह जिनराज ही। उन्नतं पौंण शत जोजनैं छाजई, सो जिजो जिनगृह हि सकल दुःख भाज ही॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु भद्रशालवने पूर्वदिग्स्थित जिनगृहाय अर्घ ॥ १ ॥

यम दिशा माहि जिन भवन द्विनीयो लसै, पूजत ही सकल अघ जाल ततक्षण नशै उन्नतं पौंण०॥

ॐ ह्रीं भद्रशाले दक्षिणदिग्स्थित जिन० अर्घं ॥ २ ॥

पश्चिमे जिन गृहं सकल सुर नर जपैं, प्रथम बन माहि जिन गेह जिनकौं थपैं ॥ उन्नतं पौंण० ॥

ॐ ह्रीं भद्रशाले पश्चिमदिग्स्थित जिन० अर्घम् ॥ ३ ॥

लम्ब शत जोजन हि व्यास पचास है, गेह उत्तर दिशा माहि सुख रासी है ॥ उन्नतं पौंण० ॥

ॐ ह्रीं भद्रशालवने उत्तरदिशिस्थित जिन० अर्घम् ॥ ४ ॥

रूप चौपाई।

दूजो वन नन्दन तिस नामा, पञ्चममेरु तनौं सुख धामा। ताकी पूरब दिश जिनगेहं, पौंण शतं उन्नत जजि नेहं ॥

ॐ ह्रीं नन्दनवन पूर्वदिशि स्थित जिनगृहाय अर्घम् ॥ ५ ॥

लम्ब लसै सो जोजन भारी, व्यास पचास लसै सुखकारी। दक्षिण दिश जिनगृह लखि लीजे, अर्घ बनाय सदा हि जजि जे ॥

ॐ ह्रीं नन्दनवन दक्षिणदिशि स्थित जिन० अर्घम् ॥ ६ ॥

पश्चिम दिश नन्दन वन केरी, तामधि जिनगृह सुन्दर हेरी। पूजौं मैं कर करि शुभ अर्घ, पूजत ही पद लेहु अनर्घ ॥

ॐ ह्रीं नन्दनवन पश्चिमदिशि स्थित जिन० अर्घम् ॥ ७ ॥

विद्युन्माली मेरु महाना, नन्दन वन उत्तर दिशि जाना। तामधि जिनगृह सुन्दर होय, पूजत ही सब पाप बहोय ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली नन्दनवन उत्तरदिशि स्थित जिनगृहाय अर्घम् ॥ ८ ॥

दोहा।

विद्युन्माली मेरुके, सोमनस सुवन माहि।
पूरवमें जिनगृह बसे, सो पूजो सुख थाहि॥

ॐ ह्रीं सोमनस वन पूर्वदिशि स्थित जिनगृहाय अर्घम् ॥९॥

लम्ब पचास हि जोजना, व्यास पचीस प्रमान।
साढा सैंतिसोन्नतं, दक्षिण जिनगृह मान॥

ॐ ह्रीं सोमनस वन दक्षिणदिशि स्थित जिन० अर्घम् ॥१०॥

पश्चिम जिनगृह जानिये, सोमनसहि वनमाहि।
ताकौं पुजौं भावतैं, भव भवके अघ जाहि॥

ॐ ह्रीं सोमनस पश्चिमदिशि जिन० अर्घ ॥ ११ ॥

उत्तर दिशिमें जायकैं, पूजौं श्रीजिन धान।
सोमनसहि वनके विषैं, पूजतहि शिव धाम॥

ॐ ह्रीं सोमनस उत्तरदिशि जिन० अर्घम् ॥ १२ ॥

सोरठा।

विद्युन्माली मेरु, पांडुक वन ताको लसैं।
पूर्व दिशा मधि हेरु, जिनगृह पूजो भावतैं॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली पांडुकवन पूर्वदिशि स्थित जिनगृहाय अर्घम् ॥ १३ ॥

लंब पचीस प्रमान, साढे बारह व्यास है।
सवागुनीहा उथान, दक्षिण जिनगृह पूजिये॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली पांडुकवन दक्षिणदिशि स्थित जिनगृहाय अर्घ ॥ १४ ॥

पश्चिममें जिन धाम, पांडुक वनके जानिये।
पूजो जिन जपि नाम, नाना हर्ष बढ़ाईकैं॥
ॐ ह्रीं पांडुकवन पश्चिमदिशि स्थित जिन० अर्घम्॥ १५॥
उत्तर जिनगृह जानि जिन, प्रभु तामधि नित बसैं।
पूजो मन सुख ठानि, नाचो गावो हर्षतैं॥
ॐ ह्रीं पांडुकवन उत्तरदिशि स्थित जिन० अर्घम्॥ १६॥
विद्युन्माली मेरु, ताके षोडश गेह।
जिन चउ वन माही हेरु, पूजो पूरण अर्घतैं॥
ॐ ह्रीं विद्युन्मालीमेरो षोडश जिनगृहेभ्यो पूर्णार्घम्॥ १७॥
सतरासै जिन बिम्ब अधिक, अठाईस जानिकैं।
पूजो नाहि विलम्ब, पूजत ही सुख पाइये॥
ॐ ह्रीं विद्युन्मालीमेरो सतरासै अठाईस सर्वजिनबिंबेभ्यः पूर्णार्घम्॥ १८॥

अथ जयमाला।

घत्ता छन्द।

शुभ पञ्चममेरु पश्चिम हेरु, ताके चउ वन माहि लसैं। षोडश जिनगेहा तिहु जग नेहा, जपि जयमाला पाप नसैं॥ १॥

लक्ष्मीधरा छन्द।

मेरु पंचं विषैं च्यारि कानं बसै, भद्रशालं सु नन्द सु सोमं नसै। पांडुकं च्यारि येहि महा नित्य हैं, गेह सोलै इनौं मध्यके पत्त है॥ २॥

भूमिप भद्र शाल सदा राज हीं, पञ्चसैं जोजनं नन्दनं छाज हीं। तासके ऊपरैं जानि पचावनैं, संस जोजनपैं सोमनं लाय है ॥ ३ ॥

तासपैं सस्स अठाइपैं जायकैं, पांडुकं काननं नित्य ही पाय हैं। आदिके काननै गेहै जैनं लसैं, व्यास आयाम ऊँचास यौं ते वसै ॥४॥ व्यास पचास सो जोजनं लम्ब है, पौणसौ जोजनं उच्चता सम्ब हैं। यौंहि नन्दं विषैं व्यास आदि जहां, अर्घ तीजा विषैं अर्द्ध पांडू कहा ॥ ५ ॥ च्यारि मेरुनको यौंहि ऊँचे बनं, आदि मेरु विषैं अन्तरं हैं गिनं। तासको भद्रशालं सु भूप लसैं, नन्दनं तासतैं उन्नतं पंचसैं ॥ ६ ॥ साढ बासट्ठिपैं सोमनस्सं तहां, तासतैं उर्द्ध पांडु सु ऐसैं कहा। संस छत्तीस है जोजनं उन्नतं, च्यारिकी मेरुके ऊपरैं यौं कृतं ॥ ७ ॥ और वर्णसकं पञ्चमेरुनको, तुल्य है गेह आदीनको उनको। आदि मेरु सु ऊँचो महा जोजनं, भूमिनैं सस्स निन्याणवैको गिनं ॥ ८ ॥ भूमिमें कन्द है सस्सं एकं महा, लक्षकं जोजनं मेलिकैं सर्वहा। च्यारि मेरु ही भूतै महा जोजनं, च्यारि अस्सी कहे कंद एकं गिनं ॥ ९ ॥ सर्व मेलैं भये संस पच्यासी ही, च्यारि मेरुनको एक उचास ही कंद पांचौनकौं वज्र रूपी लस, मध्यमें रत्न पांचौं जडे हैं वसैं ॥ १० ॥

उर्द्धमें हेम तुल्य सबैं जानिये, पंच मेरुन उतंगता मानिये। पांडुके पंचमें च्यारि हैं संसिला, पांडुका पांडु पद्मा सुरक्ता शिला ॥ ११ ॥

रक्त पद्मा सु च्यारथीं शिला जानिये, हेम रूपा मई लाल बहु साहये। कौण ईशान अग्नानतैं शोभती, नैऋते वायु कौंणे सदा है थिती ॥१२॥

पांडुके भारता तीर्थ कर्त्ताहनैं, पांडु पद्मा विषै पछिम विदेह थरक्त पैं। स्नान ऐरावत क्षेत्रका रक्त विषै, पूर्व विदेहका ॥ १३ ॥

तीर्थ कर्त्तानके स्नान जन्मतही, इन्द्र आवै करावै शिलापैं सही। हैं शिला व्यास लंबास उंचास तैं, जोजनं पचासशो आठ है जास तैं ॥ १४ ॥

है शिला च्यारि अर्द्धं सु चंद्रं समं, तासपैं तीन सिंहासनं है गमं। विचि जनं सु दक्षिण उत्तरहिमें, इन्द्र सौधर्म ईशान बैठे पमैं ॥ १५ ॥

होत सिंघासने पूर्व आस्पं सबैं, गोल आकार देखैं हि पापं दमैं। पंचसै उन्नतं जानिये चापतैं, पंच से भूमि अर्द्धं मुखं व्यासतैं ॥ १६ ॥

आठ है मंगलं द्रव्य पांपैं सदा, झारि तालं धुजा कुंभ साध्यौ मुदा। छत्र आदर्श है चामरं राज ही, आठ ही मंगलं नाहि कत्रिम कहीं ॥ १७ ॥

मेरु पांचौंनपैं यौंहि सर्वत्र है, जानिकै भव्य पूजो जिनं जत्र हैं, मेरु विद्युन्माली गेह जिन षोडशं। ते जिना मोहि दीज्यो सुख षोडशं ॥ १८॥

नाथ सर्वज्ञ जयदेव देवाधि हो, मेटिये मोहि जन्मादिकी व्याधि हो। वारवारं तुमैं पाद पद्मं भजौं, रैनि औ सूर्य मैं नाथ पादं जिजौं ॥ १९॥

घोर संसार तैं मोहि निकासिये, तोहि थानं करो सर्व सारा शिये। वीनती नाथ ये हो महाचन्द्रकी, नाथ तेरो पदं देहि शांशाद्रकी ॥ २०॥

रूप चोपाई।

विद्युन मालीके जिनगेहा, षोडश है पूजो धरि नेहा। आठौं द्रव्य मिलाय मनोसं, नाचो गावो स्वरधरि जोग्यं॥

ॐ ह्रीं विद्युन्मालीमेरो षोडश जिनगृहेभ्यो महार्घम् ॥ २१॥

सोरठा।

जो नर मन वच काय, विद्युन्माली गेहकौं।
पूज सो सुख पाय, फिर शिव वामा नाथ है॥

इत्याशीर्वादः।

इति श्री विद्युन्माली मेरु षोडश जिनगृह पूजा समाप्त।

अथ विद्युन्मालीमेरुके च्यारिकौंणनमें च्यारि गजदन्त स्थित जिनगृह पूजा

शंकर छन्द।

शुभ मेरु पंचम तासके चउ कौण माही सु जानिये।
गजदंत च्यारि मनोग्य है ईशान आदि हि मानि॥
तिन पैं सु जिनगृह च्यारि तिनमाही जिनेंद्र प्रधानसे।
आय तिष्ठहु थान इन मैं पूजिहौं सुख खानि॥

ॐ ह्रीं विद्युन्मालीमेरोश्चतुःकोन स्थित जिनगृह जिनसमुदाय अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

रागिनि सारंग।

देव गंग मुखको अति निर्मलनीर मगाय सु पात्र भरावो।
विद्युमाली गजदन्तनपैं, जिनगृह पूजो भक्ति बढ़ावो॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली गजदन्तस्थ जिनगृह जिनसमुदाय जलम॥ १

केसरि चन्दन गंध सुगंधन घसि करि कंचन पात्र ही ल्यावो, विद्युन्माली गजदन्तन परि जिन गृह पूजो भक्ति बढावो॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली गजदन्तस्थ जिन० जिनसमुदाय चन्दनं॥ २॥

राय मोगर अति जोग्य शालि ले, जिन पद आगे पुंज करावो। विद्युन्माली० ॥

ॐ ह्रीं वि० गजदन्तस्थ जिन० जिनसमूहाय अक्षतं ॥ ३ ॥

कमल कुंद सु गुलाब केवरो, पुष्प सुगन्धित लेकर आवो। विद्युन्माली० ॥

ॐ ह्रीं वि० गजदन्तस्थ जिन० जिनसमूहाय पुष्पं ॥ ४ ॥

नाना रस घृत दुग्ध पचायर, शाली अन्न नैवेद्य बनावो। विद्युन्माली० ॥

ॐ ह्रीं वि० गजदन्तस्थ जिन० जिनसमूहाय नैवेद्यं ॥ ५ ॥

दीपक जोति उद्योत करै तम, मोह मिटावन कौं हिजु पावौं। विद्युन्माली० ॥

ॐ ह्रीं वि० गजदन्तस्थ जिन० जिनसमूहाय दीपं । ६ ॥

धूप दशांग सुगन्धित ले कैं, खेवो जिनगृह कर्म नशावो। विद्युन्माली० ॥

ॐ ह्रीं वि० गजदन्तस्थ जिन० जिनसमूहाय धूपम् ॥ ७ ॥

दाडिम आम नारिंग मगावो।
फल तानैं फल मोक्ष हि पावो ॥ विद्युन्माली० ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली गजदन्तस्थ जिन० जिनसमूहाय फलं । ८ ॥

जल फल अर्घ बनाय सु ल्यावो।
जिनपद वारि शिवं पद पावो ॥ विद्युन्माली० ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली गजदन्तस्थ जिन० अर्घम् ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येक अर्घं ।

सुन्दरी छन्द।

गज रदो प्रथमो हि इशानमें, तिसपरि जिन मन्दिर ज्ञानमें। जिन हि देव लसैं तिसमें सदा, हम जिजै करि अर्घ महा मुदा॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरो ईशान कौंण गजदन्तस्थित जिनगृहाय अर्घं॥ १॥

द्वितीय है गजदन्त मनोहरो, द्वितीय अग्नि सु कौंण विषैं धरो। जिनगृहं तिसपैं निति राज ही, जजत ही सब ही दुःख भाज ही॥

ॐ ह्रीं अग्निकौंण स्थित द्वितीय गजदन्त जिनगृहाय अर्घम्॥ २॥

तृतीय कौंण सु नैरूतके विषे, तृतीय है गजदन्त महा लसे। ऊपरि गेह जिनेन्द्र समेत है, जजत ही सुख सम्पति देत है॥

ॐ ह्रीं नैरूतकौंण गजदन्तस्थित जिनगृहाय अर्घम्॥३॥

चउथ कौंण हि वायवसों वसत है, गजदन्त सु मोहनौं। जिनगृहं लखि तापरि पूजये, सकल संपत्तिको पति हुजिये॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली वायवकौंण स्थित गजदन्त जिनगृहाय अर्घं॥ ४॥

दोहा।

विद्युन्माली मेरुके, जगदन्तन चउ ऐह।
ते सब पूरण अर्घतैं, पूजो अति धरि नेह॥

ॐ ह्रीं सर्व जिन गृहेभ्यः पूर्णार्घ॥ ५॥

बिंब सर्व जिनके कहे, च्यारि शतक बत्तीस।
ते सब पूरण अर्घ है, पूजिलहु जगदीश॥

ॐ ह्रीं च्यारिसैं बत्तीस सर्व जिनबिंबेभ्यः पूर्णार्घम्॥६॥

अथ जयमाला।

दोहा।

पंचम मेरु सु कौणमैं, गजदन्तन जिन धाम।
तिनकी अब जयमाल है, पूजत ही सब काम॥ १॥

चाल टप्पामें।

जय पंचम गिरि गजदन्तके, जिन राखो हो सरणा।
जय०॥ टेक॥

माल्यवान गजदन्त मेरुतैं, कौण ईसान समरना।
वडुर्यमाणनमय अति सोहै, तापरि जिनगृह धरना॥
जिन राखो हो सरना, जय पंचमगिरि गजदन्तके॥२॥

अग्नि कौण मधि रूप्य मई, गजदन्त दूसरो वरना।
नाम महा सोमनस तासपरि, जिनगृह जिन दुःख हरना॥
जिन राखो०॥ ३॥

नैरूत कौण तप्त सोना मय, विद्युत प्रभ गज रदना।
ऊपरि जिनगृह तामधि जिनवर, राजत तारन तरना॥
जिन राखो०॥ ४॥

वायव कौंण गन्ध मादन, गजदन्त सोनमय बरना।
तापरि जिनगृह तामधि श्री, जिनमें चेरों तुम चरना॥
जिन राखो० ॥ ५ ॥

नील निषध कुल पर्वत पासैं, च्यारि शतक उच धरना।
गोलाकार महा जोजन यह, गजदन्ता उच्चरना॥
जिन राखो० ॥ ६ ॥

मेरु पासि जोजन ऊँचाई, पंच शतककी करना।
तहां लसै तुम गेह मनोहर, सुन्दर सब मन हरना॥
जिन राखो० ॥ ७ ॥

जिनगृह लम्ब महा जोजन, पचास तहां चित धरना।
व्यास पचीस विराजत है नित, देखत ही सुख करना॥
जिन राखो० ॥ ८ ॥

जिनगृह उन्नत है जोजन, साढ़ा सैतीस उच्चरना।
तामधि तुम जय जय जय, शिवधर राजत हो अघ हरना॥
जिन राखो० ॥ ९ ॥

तुम तनु तुंग धनुष्य शत पंचहि, रत्नमई नित थिरना।
इक गृहमें इकसे अठ राजत, जय तुम बिंब अमरना॥
जिन राखो० ॥ १० ॥

ऐसैं ही वर्णन गजदन्तन, पांचू ही मेरु विनना।
नाम उच्चता वर्ण आदि सब, एक सार सब करना॥
जिन राखो० ॥ ११ ॥

गजदन्तनके जिनगृहमें, जिन विनती मोहि समरना।
हम भवसागर डूबत हैं, तुम राखो पासि उतरना॥
जिन राखो० ॥ १२ ॥

कर्म कलंक हटाय हमारो, तुम गुन गन मन अरना।
तुम पद सेवक जाचत पंडित, महाचन्द्र पद सरना॥
जिन राखो० ॥ १३ ॥

मालिनी छन्द।

इति जिन गुन माला, पंचम मेरु चाला।
चउ गज रद नाला, सर्व सम्पत्ति वाला॥
निति प्रति जिन ध्यावो, भक्ति पूजा बढ़ावो।
सुरपति पद पावो, नाहि संसै लखावो॥
ॐ ह्रीं विद्युन्माली गजदन्त स्थित जिनगृहाय महार्घं।

वेसरी छन्द।

जो अनूप वसुद्रव्य मिलावै, पञ्चमाद्रि गजदन्त मनावै। गेहमाहि जिन भक्ति बढ़ावै, सो सुरूप शिवके पति थावै॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री विद्युन्मालिमेरु गजदन्त जिनगृह पूजा समाप्ता।

अथ विद्युन्मालि मेरु ईशानकौंणे जम्बूवृक्षस्थ जिनगृह पूजा।

पद्धडी छन्द।

विद्युन्माली ईशान होय, जम्बू तरु भूमि मई सु जोय।
ताके उत्तर जिनगेह माहि, जिनराज पधारो थापनाहि॥

ॐ ह्रीं जम्बूवृक्षस्थ जिनगृह जिनसमूह अत्रावतरावतर। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

चाल—रंगीला नेमजी।

सुनो भवि जीव जी, निति पद ध्यावोजो।
विद्युन्माली कौंणमें जी, जम्बू वृक्ष मझारी॥
सुनो भवि०। टेक॥

गंगा आदिक नीर लेजी, कंचन भाजन धारि।
जन्म मरण दुःख मेटनें वरि, जिन पद दीज्यो धार॥
सुनो भवि०॥ विद्युनमालि०॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली जम्बूवृक्षस्थ जिनगृहाय जलम्॥ १॥

केसरि चन्दन घावनाजी, अगर मिलाय घसार।
भव तप नाशन कारणौंजी, जिन पद पूज करार॥
सुनो भवि०॥ वि०॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली जम्बूवृक्षस्थ जिनगृहाय चन्दनम्॥ २॥

मुक्ताफल सम उज्ज्वल लेजी, शालि खण्डित लाय।

जो अक्षय पद चाहना तो, पुंज करो जिन पाय ॥
सुनो भवि० ॥ वि० ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली जम्बूवृक्षस्थ जिन० अक्षतम् ॥ ३ ॥

कुन्द सुगन्ध गुलाबके जी, पुष्प मनोहर लाय।
कामबाणकौं नाशनैंवारी, जिनपद पद्म चढ़ाय ॥
सुनो भवि० ॥ वि० ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली जम्बूवृक्षस्थ जिन० पुष्पं ॥ ४ ॥

नाना रस खाजा करोजी, फेणि घृत वर सार।
रोग क्षुधाके नाशनें वारी, नैवज जिनपद धार ॥
सुनो भवि० ॥ वि० ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली जम्बूवृक्षस्थ जिन० नैवेद्यम् ॥ ५ ॥

दीपक घृतमय जोइये जी, वा कपूरमय जोय।
मोह महातम मेटनें वारी, जिनपद दीपक होय ॥
सुनो भवि० ॥ वि० ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली जम्बूवृक्षस्थ जिन० दीपम् ॥ ६ ॥

श्रीखण्डादिक द्रव्य लेजो, कीजे धूप अनूप ॥
अष्टकर्मके जारनें वारी, खेवो जिनपद भूप ॥
सुनो भवि० ॥ वि० ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली जम्बूवृक्षस्थ जिन० धूपम् ॥ ७ ॥

आम नींबू नारिंग लेजी, उत्तम फल सुखकार।
मोक्ष महाफल कारणैं वारी, जिनपद पूजौं सार ॥
सुनो भवि० ॥ वि० ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली जम्बूवृक्षस्थ जिनगृहाय फलम् ॥८॥

जल फल आठौं द्रव्य ले थारी, अघ करो मन धारि।
पद अनर्घ वांछा जबैं तो, पूजो अर्घ सवारी॥
सुनो भवि० ॥ थि० ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली जम्बूवृक्षस्थ जिन० अर्घम् ॥ ९ ॥

वंशस्थ छन्द।

लसै सु मेरु ही ईशान मांही,
नरु प्रधानो नह जंबूके थाहीके।
जिनेन्द्र गेहं दिशि उत्तरेहि,
जिजो सु अर्घेण अनुत्तरेहीके॥

ॐ ह्रीं विद्युन्मालीमेरु ईशानकौंण जम्बूवृक्षस्थ जिन० अर्घम् ॥ १० ॥

जिनेन्द्र बिंबं शत आठ तासमैं,
निरन्तर नाहि विनाश कासमैं।
मनोज्ञ भावतैं जिजौं जिनेन्द्रं
नितिहि सु चावतैं॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली जम्बूवृक्षस्थ एकसौ आठ सर्वजिनबिंबेभ्यः पूर्णार्घं।

अथ जयमाला।

सोरठा।

विद्युन्माली मेरु, जम्बू वृक्ष जिनेन्द्र गृह।
पूजौं निति प्रति हेर, अब ताकी जयमाल है॥ १ ॥

त्रोटक छन्द

जय पंचम मेरु ईशान मही, तरु जम्बू तहां तुम गेह लही। जय उत्तर साख विराजत हो, निति एक सु रूप समाजत हो ॥ २ ॥ जय तुम तरु नील समीप जु है, नदी शीत हि पूरब भाग जु है। सुर पर्वततैं जु ईशान मही, तरु जम्बू विराजत है तित ही ॥ ३ ॥ थली जोजन पंच शतं शुभ हैं, शुभ कंचन रूपीय नित्य रहै। तित ऊपरि पीठहि राजत हैं, तिसपैं शुभ वेदिय द्वादश हैं ॥ ४ ॥ थलि अन्त हो बाहुलत्त अघ है, थिचिमैं अठ जोजन ऊँच रहै। तित गोल अकार मनोहर हैं, तित पीठ ऊँचाई सुनौं अब है ॥ ५ ॥

अठ जोजन उन्नत राजत है, मुख व्यासहि च्यारि समाजत है। सुव व्यासहि जोजन बारहि मैं, इम पीठ थली शुभ वेदिपमैं ॥ ६ ॥ तिसपैं चउ साख सदा थिर हैं, दिश च्यारि हि माहि जु लम्ब रहै। उप साख वहि और अनेक यहां, शुभ रत्नमई उपशाख कहा ॥ ७ ॥ शुभ पुष्प प्रबाल समान लसै, फल होत मृदंग अकारजसैं। यह भूमय नाहि बनस्पति है, इस उत्तर शाख जगत्पति है ॥ ८ ॥ अथ शाख हो आदर नादरके, गृह होत सदा निति नादरके। जिन गेह यहां जिन सजुत है, इक कोश अयाम सदा स्थित है ॥ ९ ॥ अब पौणहि व्यास व उन्नत है, तुम एक

शत अठसु न्यून हैं । धनु पंच शतं तनु उर्द्ध रहै, शुभ रत्न मई तुम देह वहै ॥ १० ॥

इन आदि अनेक सरूप तुमें, अति मन्द मति किम बोल हमें । हमरै तुम पाइ पयोज सदा, मन माहि रहो जिनदेव मुदा ॥ ११ ॥ जबलौं शिव थानक नाहि लहौं, तब लौं तुम पादहि सेव चहौं । अब कीजिय नाथ दया हमपैं, महचन्द्र बुधो जु खडो तुमपैं ॥ १२ ॥

घत्ता

इह विद्युन्माली जम्बू विशाली,
जिनगृह वाली सुख थाली ।
जिन वारं वारं सब सुखकारं,
पूजो भवि निति शिव चाली ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्मालिमेरोर्जम्बूवृक्षस्थ जिनगृहाय महार्घम् ॥

दोहा ।

जो नर बाचैं भावतैं, जम्बू जिन जयमाल ।
सो नर सुर पतिवाल है, फुनि शिवरामा पाल ॥ १ ॥

इत्याशीर्वादः ।

इतिश्री विद्युन्माली जम्बू वृक्ष जिनगृह पूजा समाप्ता ।

अथ विद्युन्माली मेरो शाल्मली वृक्ष जिनगृह पूजा।

चौपाई।

विद्युन्माली नैऋतकौंण, शाल्मली तरु जिनगृह दौंण।
तामधि बिंब मह जिनदेव, आवो बैठो सन्मुख एव॥

ॐ ह्रीं शाल्मली वृक्षस्थ जिनगृह जिनसमूह अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्रमम सन्निहितो भवभव वषट् सन्निधिस्थापनं।

रागिनी धन्याशरी बात माधुकी देशीमें।

निति पूजो चैतो पंचम, शाल्मली धाम॥निति पू०॥टेक॥
कँचन झारो लायके हो, निर्मल नीर भराय।
जन्मजरामृत नाशनेजो, धरा लीन हराय॥ नीतिपूजो०

ॐ ह्रीं विद्युन्माली नैऋतकौंणस्थित शाल्मली वृक्ष जिनगृहाय जलं॥ १॥

केसरी चन्दन लेयकैंजी, ल्यावो सर्व घसाय।
भव तप मेटन चाहि है तो, जिनपद पद्म चढ़ाय॥
॥ निति पूजो० ॥

ॐ ह्रीं वि० नैऋतकौंणस्थित शाल्मली वृक्ष जिन० चन्दनं ॥२॥

उज्जल तन्दुल लायकैंजी, निर्मल नीर धूवाय।
अक्षय पद पायो चहौं तो, जिन पद पूँज कराय॥
॥ निति पूजो० ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली नैऋतकौणस्थित शाल्मलीवृक्ष जिन० अक्षतम् ॥ ३ ॥

पुष्प कुन्द सु गुलाबके हो, गुँजत अलिगन आय।
काम बाणके नासनें हो, जिन पद पद्म चढ़ाय॥
॥ निति पूजो० ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली नैऋतकौणस्थित शाल्मलीवृक्ष जिन० पुष्पं ॥ ४ ॥

नाना रस नेवज करो हो, मोदक थाल भराय।
रोग क्षुधाके मेटनें हो, जिन पद पूज रचाय॥
॥ निति पूजो० ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली नैऋतकौणस्थित शाल्मलीवृक्ष जिन० नैवेद्यम्॥ ५ ॥

दीपक घृतमय लेयकैं हो, जगमग जोति जगाय।
मोह महातम नासनें हो, जिन पद अग्र धराय॥
॥ निति पूजो० ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली नैऋतकौणस्थित शाल्मलीवृक्ष जिन० दीपम् ॥ ६ ॥

श्रीखण्डादिक द्रव्य ले हो, धूप सुगन्ध कराय।
अष्ट कर्मके जारनें हो, जिन पद अग्र जराय॥
॥ निति पूजो० ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली नैऋतकौणस्थित शाल्मलीवृक्ष जिन० धूपम् ॥ ७ ॥

आम नारिंग सुगन्ध है हो, नासा नेत्र सुहाय।
मोक्ष महाफल चाखनैं हो, इन फलनैं जिन ध्याय ॥
॥ निति पूजो० ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली नैऋतकौणस्थित शाल्मलीवृक्ष जिन० फलम् ॥ ८ ॥

जल मुख द्रव्य मिलायकै हो, अर्घ करो सुखकार।
जो नरको फल लेण है तो, श्री जिन पद परिवार ॥
॥ निति पूजो० ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली नैऋतकौणस्थित शाल्मलीवृक्ष जिन० अर्घम् ॥ ९ ॥

दोधक छन्द।

विद्युन्मालिय नैऋत माही, शाल्मलीवृक्ष मनोहर थाही।
तापरि दक्षिण शाखहि सोहै, जैन गृह जजतैं सुख होहैं ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्मालीमेरु नैऋतकौण शाल्मलीवृक्षस्थ जिन-गृहाय अर्घम् ॥ १ ॥

तामधि बिंब अठोत्तर सोहै, पूजन हा शिवके सुख देहै।
पूरण अर्घ बनाय मनोग्यं, पूजन हौं सब बिंबहि जोग्यं ॥

ॐ ह्रीं शाल्मलीवृक्षस्थ एकसौ आठ सर्व जिनबिंबेभ्यः पूर्णार्घं ॥ २ ॥

अथ जयमाला।

दोहा।

विद्युन्माली नैऋते, शाल्मली गेह विशाल।
राजत है नितिहि अचल, ताकी अब जयमाल ॥ १ ॥

पद्धड़ी छन्द।

जय जय जिन पंचम मेरु थान, तरु शाल्मली नैऋतकौण मान। तिनमें तुम गेह विराजमान, तुम राजत हो महिमा निधान ॥ २॥ तरु शाल्मली निषध समीप होय, सीतोदा पश्चिम तट सु जोय। मेरुतैं नैऋतकौण मांही, भूदेव कुरु कहिये तहां हि ॥ ३ ॥ जोजन शत पंच थलो सु होय, रूपामय गोलाकार जोय। सब वर्णन शाल्मली वृक्ष माहि, जम्बू तरुवत जिन तुम कहाही ॥ ४ ॥ तुमरो गृह दक्षिण शाख माहि, तित तुम निति राजत हो जिनाहि। बाकी त्रय शाखा अन्य माहि, गृह गरुड कुमार पतिन थाहि ॥ ५ ॥

तुम गेह अचल इक कोश लंब, अध व्यास पौंण ऊँचो प्रबन्ध। तुमकौं निति पूजन त्रिदशराय, अनु· प्रेक्षनको सुनि अर्थ राय ॥ ६ ॥ तुम कही दुवादश प्रेक्षसार, संसार भोग सु अनित्य धार। अशरण नहि शरणभवाब्धि माहि, रत्नत्रय बिन नहि सर्ण थाहि ॥७॥ संसार असार चतुर्ग तीन, जिन धर्म सार सुनिये अदीन। एकहि जिय जाय निगोद माहि, एकहि जिय सुरपति पद लहाहि ॥ ८ ॥ जिय चेतन पुद्गल भिन्न भिन्न, जड जोग अनादि जीवकीन्न। यह पुद्गल सात कुधात रूप, इनमें कछु सार नहीं अनूप ॥९॥ सत्तावन

आश्रव कर्म द्वार, निति आवत कम इनौ अधार। इनको रोकन संवर कहात, सत्तावन गुप्त्यादिक कहात: ॥१०॥

फुनि निर्जर कर्म लगात सार, सो तप करि होत कहि संवार। यह लोक तीन सत ओनितल, घनरूप माहि जिय नित्य चाल ॥ ११ ॥ फुनि दुलभ बोधिही लोक माहि, जिय नाहि लही भव कोटि माहि। फुनि धर्म दयामय दश प्रकार, जिय पावत पुण्य प्रभाव सार ॥ १२ ॥ यह द्वादश अनुप्रेक्षा जिनाय, भवि बोधि फेरि तुम शिव लहाय। विनती हमरो उर धार धार, बुद्ध महाचन्द्र भव सिंधु तार ॥ १३ ॥

घत्ता छन्द।

यह शाल्मलिवृक्षं नैऋत कक्षं, जिनगृह लक्ष दक्षिणमें।
तामें जिनदेवा सुरकृत सेवा, निति पूजो भविक्षणरमें॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली नैऋत्यकोणे शाल्मलीवृक्ष जिनगृहाय महार्घम् ॥ १४ ॥

सोरठा।

शाल्मलि वृक्ष सुहाय, जिनगृहकी जयमाल यह।
जो बाचैं मन लाय, सो सुर पति लहि शिव लहै॥

इत्याशीर्वादः।

इति श्री विद्युन्माली मेरु नैऋत्यकोणे शाल्मली वृक्ष दक्षिण शाखा स्थित जिनगृह पूजा समाप्त।

अथ विद्युन्मालि मेरु पूर्वविदेह विभागस्थित वक्षार जिनगृह पूजा।

दोहा।

विद्युन्माली पूर्वमें, अठ वक्षार महान।
तिनपैं जिनगृह नाथ जिन, आवो पूज रचाय॥

ॐ ह्रीं विद्युन्मालिमेरु पूर्वविदेह विभाग वक्षार स्थित जिनगृह जिनसमुदाय अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भवभव वषट् सन्निधापनम्।

अथाष्टकं।

चाल—त्रिभुवन गुरु स्वामी वा लाल पाडोवणिकी देशीमें।

उलमरि झारि हो शुभ नीर मझारि हो, जन्मादि निवारि हो धारा दीजिये हो। जजि पंचम मेरु हो दिशि पूरव हेरु हो, वक्षार गिरि सिहरु हो, जिनगृह जिनन्द्र कौं हो॥

ॐ ह्रीं विद्युन्मालीमेरु पूर्व वक्षार स्थित जिनगृह जिनसमुदाय जलम्॥ १॥

शुभ गन्धित ल्यावो हो, मलियागिरि जावो हो।
घसि चन्दन आवो हो, भव तप मेटनैं हो॥
॥ जजि पंचम० ॥

ॐ ह्रीं वि० पूर्व वक्षार स्थित जिन० जिनसमुदाय चन्दनम्॥ २॥

तन्दुल सु अखण्डं हो, शुभ परिमल मंडं हो।
संसार विहन्डं हो, पुंज सु दीजिये हो॥
॥ जजि पंचम० ॥

ॐ ह्रीं वि० पूर्व वक्षारस्थ जिन० जिनसमूहाय अक्षतम् ॥३॥

शुभ पुष्प मगायो हो, चम्पो जाई सुभायो हो।
आलि गुँजत ल्यायो हो, काम विदारणैं हो॥
॥ जजि पंचम० ॥

ॐ ह्रीं वि० पूर्व वक्षारस्थ जिन० जिनसमूहाय पुष्पम् ॥ ४ ॥

नाना रस खाजा हो, करि मोदक ताजा हो।
क्षुधा रोग मिटाजा हो, नेवज यों वनैं हो॥
॥ जजि पंचम० ॥

ॐ ह्रीं वि० पूर्व वक्षारस्थ जिन० जिनसमूहाय नैवेद्यम् ॥ ५ ॥

दीपक उजियारा हो, घृत बातिस धारा हो।
तम मोह विदारा हो, आरति जिन करो हो॥
॥ जजि पंचम० ॥

ॐ ह्रीं वि० पूर्व वक्षारस्थ जिन० जिनसमूहाय दीपम् ॥ ६ ॥

श्री खण्ड कपूरं हो, शुभ द्रव्य न चूरं हो।
ले धूप सु भूरं हो, खेवो जिन पदं हो॥
॥ जजि पंचम० ॥

ॐ ह्रीं वि० पूर्व वक्षारस्थ जिन० जिनसमूहाय धूपं ॥ ७ ॥

नारिंग झंभेरी हो, फल गन्धित हेरि हो।
शुभ पात्र मिलेरि हो, जिन पद धारिये हो॥
॥ जजि पंचम० ॥

ॐ ह्रीं वि० पूर्व वक्षारस्थ जिन० जिनसमूहाय फलं ॥ ८ ॥

जल फल सु मिलावो हो, शुभ अर्घ बनावो हो।
जिन अग्र चढ़ावो हो, पद अनर्घ लहो हो॥
॥ जजि पंचम० ॥

ॐ ह्रीं वि० पूर्व वक्षारस्थ जिन० जिनसमूहाय अर्घम् ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येक अर्घं।

पाईता छन्द।

सीता उत्तर तट माहीं, वक्षार चैत्य कूटा ही।
तापरि जिन गेह सुहाई, पूजत अघ दूरि पलाई॥

ॐ ह्रीं सीता उत्तरतटस्थ चैत्यकूट नाम वक्षारस्थ जिन-गृहाय अर्घम् ॥ १ ॥

दूजो वक्षार अगारी है, प्रतिमा कूट सवारी हैं।
तिसपैं जिन मन्दिर सारी, भवि पूजो भवोदधि तारि॥

ॐ ह्रीं सीता उत्तरतटस्थ प्रतिमा कूट नाम वक्षार जिन-गृहाय अर्घं ॥ २ ॥

तीजो वक्षार सुहावै, तिस नाम नलिन अति भावै हो।
जिन मन्दिर तापरि थावै, पूजत सब पाप विलावैं॥

ॐ ह्रीं सीता उत्तरतटे नलिननाम वक्षारस्थ जिन० अर्घम् ॥३॥

चौथो वक्षार मनावो, तह पक्ग सेल नामावो हो।
तिसपैं जिन मन्दिर पावो, पूजन ही पाप नशावो॥

ॐ ह्रीं सीता उत्तरतटे पक्कसेलनाम वक्षारस्थ जिन० अर्घम् ॥४॥

सीता दक्षिण तट माही, कूटं वक्षार सुहाही।
तिस परि जिन मन्दिर पाई, जिन पूजो सब सुखदाई॥

ॐ ह्रीं सीता दक्षिण तटस्थकूटनाम वक्षार जिन० अर्घम् ॥५॥

दूजो गिरि दक्षिण सोहैं, वैश्रवण नाम मन मोहै।
तिसपैं मन्दिर जिनको हैं, पूजत सुर सुख हो है॥

ॐ ह्रीं सीता दक्षिणतटे वैश्रवणनाम वक्षारस्थ जिन० अर्घम् ॥६॥

सीता दक्षिणके माही, अञ्जन आतम सुखदाई हो।
जिन सद्म मनोहर पाई, निति पूजत सुर घनराई॥

ॐ ह्रीं सीता दक्षिणतटे अंजनात्मानाम वक्षारस्थ जिन० अर्घम् ॥ ७ ॥

अञ्जन वक्षार विराजै, सीता दक्षिण तट राजै हो।
जिनगेह मनोहर लाजै, पूजत ही सब अघ भाजैं॥

ॐ ह्रीं सीता दक्षिणतटे अंजननाम वक्षारस्थ जिन० अर्घं ॥८॥

सीतोदा यौं तट जानौं, वक्षार आठ जिन थानौं हो।
करि पूरण अर्घ महानौं, पूजौं सबको सुखदानौं॥

ॐ ह्रीं सीता उत्तरदक्षिणतट वक्षारस्थ जिनगृह समूदाय पूर्णार्घम् ॥ ९ ॥

जिन बिम्ब सबैं लखि लीजे, थान आठरु चोसठि कीजे।
करि पूरण अर्घ जजीजे, जजतैं सुरपति पद लीजे॥

ॐ ह्रीं विद्युन्मालीमेरु पूर्वविदेह विभागे अष्टवक्षारस्थ आठसे चोसठि सर्वजिनबिंबेभ्यः पूर्णार्घम् ॥ १० ॥

अथ जयमाला।

बेसरी छन्द।

मेरु जैनगिरि विद्युन्माली, पूर्वमाही अठ वक्षार-शाली। ते अर्घं जजत हौं जयमाला, कीजिये सु मम ही शिव चाला ॥ १ ॥

कामिनीमोहन छन्द।

जयतु जयतु जिनदेव सुरसे वहो, सोनमय सर्व वक्षार परिते वहो। पूर्व दिशिमैं नदिनाम सीता गई, नीसरी नीलतैं माल्य गजदन्त ही ॥ २ ॥ क्षेत्र अठ उत्तरे क्षेत्र अठ दक्षिणे, विची सीता गई पूर्व सागर तटे। च्यारि वक्षार गिरि उत्तरे सीततैं, च्यारि दक्षिण विषैं नित्य सुख सीततैं ॥ ३ ॥ चैत्य कूट तथा कूट प्रतिमा कहे, नलिन तीजो पदग सेल चउ थाल है। शीतके दक्षिणे कूट वक्षार हैं, नाम वैश्रवण दूजो सदाकार है ॥४॥ अजनात्मा तथा अञ्जनं राज हो, च्यारि यह नाम दक्षिण तटे साज हो। होन है नित्य अठ देशके भागमैं, दक्षिणे उत्तरे रम्य ता लागमैं ॥ ५ ॥

नील निषधाचले बीचि अन्तर इतो, सहस तेतीस षट् सतड़ि जोजन जितो। और चोरासी कल च्यारि उपरि लखो, दक्षिणे उत्तरे नित्य अन्तर कह्यो ॥ ६ ॥ तासमें सीत नदि उँगासहीनं करो, फेरी अर्घ

करो दक्षिणे उत्तरो। एक वक्षार गिरि लव एतो कह्यो, नील निषधाचलैं उचना यौं कह्यो ॥ ७ ॥ च्यारिसै जोजनं उच्च अर व्यास है, गोल सर्वत्र वक्षार गिरि तास है। पञ्चसै उच्चलं व्यास नदिपै कह्यो, गेह जिन-राजको तत्र राजैत ह्यो ॥ ८ ॥ गेहकी लम्बता नित्य जोजन महा, होत पचास जिनराज तुमनैं कहा। व्यास पचीस जोजन ही जिन गेहको, उच्चता सार्द्धसैं तीस धरि नेहको ॥ ९ ॥ तासमैं नाथ तुम देह ऊँचो सदा, पंचसै धनुष लखि मोह होवे विदा। एकमैं एकसौ आठ तुम निति रहो, रत्नमय बिम्ब तुम नित्य भव दुःख दहो ॥१०॥ यौंहि वर्णन तुमैं सबहि वक्षारमैं, सब हि वक्षार अस्सी कहे सारमैं। सर्वकी लम्बता व्यास अर उच्चता, एकसी होत यौं नाथ तुम सूचता ॥ ११ ॥ नाथ जिनदेव अब अरज उर धारिये, मोहि संसारके पार उतारिये। कीजिये मोहगत दुःख करि हीन ही, जानिकैं नाथ तुम पादमैं दीन ही ॥ १२॥ बारबारं कहे कौंन अब देव हो, तुम सबैं जीव गति जानते एव हो, कीजिये जानि निज चरणको दास ही। विबुध महाचन्द्रकी पूरिये आस ही ॥ १३ ॥

घत्ता।

यह अब वक्षारे अठ जिनगारे,
सठ सुखकारे दुख टारे।

निति पूजो ध्यावो गुण गण गावो,
सीस नवावो भवी सारे ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु पूर्वविदेह विभागस्थित वक्षार जिनगृहेभ्यो पूर्णार्घ्यं॥ १४ ॥

दोधक छन्द।

जो नर भक्तिभाव उन आनैं, जिन गृहगिरि वक्षारन मानैं। शुद्ध भावनैं याय हि पाठं, सो नर पाव हि निर्मल ठाठं ॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री विद्युन्मालि पूर्वविदेह विभाग वक्षारस्थ जिनगृह पूजा समाप्ता।

अथ विद्युन्माली पूर्वविदेहे षोडश विजयार्द्ध जिनगृह पूजा।

लोलतरंग छन्द।

पूरब विद्युन्माली विदेहे, षोडश देश लसैं सुख गेहे। षोडश रूपगिरि जिनसद्मं, ते जिन आवहि हो सुखसद्मं ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु पूर्वविदेह षोडश विजयार्द्ध स्थित जिनगृह जिनसमूह अत्रावतरावतर। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

छन्द नयमालीनी तथा चन्डी।

नीर ल्याय गंगादिक सारं, जन्म नाश धारा त्रयकारं।
मेरु पंचम ही पूरव पूजो, षोडशगृह विजयारध हूजो॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली पूर्व विदेह विजयार्द्ध स्थित जिनगृह जिनसमूहाय जलम्॥ १॥

चन्दनं सु करपूर समेतं। मेलिकैं घसि करो इक खेतं॥ मेरु पंचम०॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली पूर्वविदेह विजयारधस्थ जिनगृह जिन-समूहाय चन्दनम्॥ २॥

शालिखंड वर्जित शुभ ल्यावो। पंच पूंज जिन अग्र करावो॥ मेरु पंचम०॥

ॐ ह्रीं वि० पूर्वविदेह विजयारधस्थ जिन० जिनसमूहाय अक्षतं॥ ३॥

केतकी कुसुम और गुलाबै। पूजिये जिनपद सुख पावैं॥ मेरु पंचमही०॥

ॐ ह्रीं वि० पूर्वविदेह विजयारधस्थ जिन० जिनसमूहाय पुष्पं॥ ४॥

नेवज सुकरिये रसपूरं। थाल कंचन भरो दुःख दूरं॥ मेरु पंचमही०॥

ॐ ह्रीं वि० पूर्वविदेह विजयारधस्थ जिन० जिनसमूहाय नैवेद्यं॥ ५॥

दीप जोति जगजोति नद्योतं। ले करपुर मन मोहन होतं ॥ मेरु पंचमही० ॥

ॐ ह्रीं त्रि० पूर्वविदेह विजयारधस्थ जिन० जिनसमूहाय दीपं ॥ ६ ॥

श्रीफखंड अगरादि धूपं। लेय खेय पादं जग भूपं ॥ मेरु पंचम० ॥

ॐ ह्रीं त्रि० पूर्वविदेह विजयारधस्थ जिन० जिनसमूहाय धूपम् ॥ ७ ॥

आम नींबु नारिंग सुपारी। ले जिनेंद्र पूजो फल सारी ॥ मेरु पंचम० ॥

ॐ ह्रीं त्रि० पूर्वविदेह विजयारधस्थ जिन० जिनसमूहाय फलं ॥ ८ ॥

नीर चंदन ही आदि मगावो। लेय द्रव्य बहु अर्घ बनावो ॥ मेरु पंचम० ॥

ॐ ह्रीं त्रि० पूर्वविदेह विजयारधस्थ जिन० अर्घम् ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येक अर्घ।

नाराच छन्द।

सीता सिंधुके सो जानौं रूप्याचल उत्तरे।
विदेहमें मनोज्ञ रूप ठ्यास तास उत्तरे ॥
जिनेन्द्र गेह तास परि लस्य इक कोश है।
पूजि हौं जिनेन्द्र पाद पद्म सार कोश है ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्मालीमेरु पूर्वविदेह विजयारधस्थ जिनगृहाय अर्घं ॥ १ ॥

पद्धडी छन्द।

नहिं काल विवर्तन जास माहिं, नहिं हो तमरी दुख है कहाहिं। सुभ कक्ष देश मधि रूप्प गेह, जिनराज तासमधि जजि सनेह ॥

ॐ ह्रीं सुकक्षा देश विजयारधस्थ जिनगृहाय अर्घम् ॥ २ ॥

मह कक्षा देश तृतिय जानि, तामधि विजयारध सुख निधान। तिसपैं जिन गेह मनोग्य रूप, जिन पूजौं मैं तिहु लोक भूप ॥

ॐ ह्रीं महाकक्षा देशमध्ये विजयारधस्थ जिन० अर्घम् ॥ ३ ॥

उत्तर दक्षिण लम्बान जास, यौं देश कक्षकावती विलास। विजयार्द्ध पूर्व लम्ब होय, तामधि जिन गेह जिजोहि जोय ॥

ॐ ह्रीं कक्षकावती देश विजयारधस्थ जिन० अघम् ॥ ४ ॥

पणवीस उच्च पचास व्यास, विजयार्द्ध लसैं सुन्दर विलास। तापरि जिन गेह विराजमान, तामैं जिनराज जिजो महान ॥

ॐ ह्रीं आवर्ता देश विजयारधस्थ जिन० अर्घम ॥ ५ ॥

रुपामय रूप्पगिरि लसन्त, तामधि जिन गेह मनोग्य सन्त। सुवर्णमय है जिनराज गेह, तामधि जिन जजि रत्नमय देह ॥

ॐ ह्रीं लांगलावर्ता देश विजयारधस्थ जिन० अघम् ॥ ६ ॥

है देश पुष्कला अति मनोग्य, नहिं काल विवर्तन होत जोग्य । तामाही रूप्यगिरी गेह जैन, जिन पूजत नासैं सकल मैंन ॥

ॐ ह्रीं पुष्कला देश विजयारधस्थ जिनगृहाय अघम् ॥ ७ ॥

धनु पश्च शतक तनु तुङ्ग सदा, शुभ कोटि पूर्वकी आयु सुदा । यौं देश पुष्कलावती महान, विजयारध जिन गृह जिजो मान ॥

ॐ ह्रीं पुष्कलावती देश विजयारधस्थ जिन० अर्घं ॥ ८ ॥

सीता दक्षण तट माहि होत, शुभ वक्षा देश प्रथम कहोत । वन भद्रशाल वक्षार वीचि, विजयारध गेह जिजो अनीच ॥

ॐ ह्रीं सीताके दक्षिणतटे वक्षादेश विजयारधस्थ जिन-गृहाय अर्घम् ॥ ९ ॥

निषधाचलतैं लगतो महान, सीता तटलौं लम्बा सजान । यौं देश सुवक्षा नित्य होय, विजयार्द्ध गेह जिन जिजो सोय ॥

ॐ ह्रीं सुकक्षादेश विजयारधस्थ जिन० अर्घं ॥ १० ॥

शुभ देश महा वक्षा महान्, विजयारध तामधि सुख निधान । तापरि जिनगेह लसै मनोग्य, जिन पूजो भवि वसु द्रव्य जोग्य ॥

ॐ ह्रीं महाकक्षादेश विजयारधस्थ जिन० अघम् ॥ ११ ॥

इकसौ दश नगरी होत जास, पचपन पचपन दो पार्श्व तास। विजयारध यौं जिनगेह जुक्त, भवि पूजोजी नवसु द्रव्य जुक्त॥

ॐ ह्रीं वक्षकावतीदेश विजयारधस्य जिन० अर्घ॥ १२॥

आयाम पूर्व पर जास होत, है व्यास सु दक्षिण अपर जोत। यौं है विजयारध क्षेत्रमाहि, जिनगृह जिन पूजो सुख कराहि॥

ॐ ह्रीं रम्यादेश विजयारधस्य जिनगृहाय अर्घम्॥१३॥

सीताके दक्षिण तट महान्, है रम्या देश मनोज्ञ थान। तामधि रूपाचल है सुगेह, जिन पूजो भवि निति धरि सु नेह॥

ॐ ह्रीं सुरम्यादेश विजयारधस्य जिनगृहाय अर्घ॥ १४॥

रमणीया देश मनोज्ञ जास, विजयारधपै जिन-गृह विलास। तामें जिनराज विराजमान, निति पूजो भवि ले अर्घ पान॥

ॐ ह्रीं रमणीयादेश विजयारधस्य जिन० अर्घम्॥ १५॥

चौपाई।

देशारण्य समीप सु होय, मङ्गलावतीदेश समोय। विजयारधपैं जिनगृह जानि, पूजो जिन भवि निति प्रति मानि॥

ॐ ह्रीं मङ्गलावतीदेश विजयारधस्य जिन० अर्घम्॥ १६॥

विद्युन्माली मेरु सु पूर्व, षोडश क्षेत्र विदेह

अपूर्व। विजयारध षोडश तिनमांहि, षोडश गेह जिजो सुखदाय॥

ॐ ह्रीं विद्युन्मालीमेरु पूर्व विदेह षोडश विजयारध स्थित जिनगृहाय पूर्णार्घं॥ १७॥

तिनमें जिन प्रतिमा अभिराम, सतरासै अठाइस नाम। तिनकौं पूरण अर्घ बनाय, पूजो भवि शिव सम्पतिदाय॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु पूर्वभागे विदेह विजयारघस्थ सतरासै अठाईस सर्वजिनबिंबेभ्यः पूर्णार्घं॥ १८॥

अथ जयमाला।

प्रमिताक्षरा छन्द।

शुभ मेरु पंचम श्री पूरबके,
विजयार्द्ध मध्य जिन गेहनके।
जिनराजकी सु जयमाल अबैं,
जपिये हि भव्य सुख लेहि सबैं॥१॥

छन्द चण्डी तथा नयमालिनी।

पचमे ही गिरि पूरब माही, रूप अद्रि जिनराजल थाही। ते जिनेन्द्र भवमें सुखदाता, हे जिनेन्द्र मुक्ति कीजिए साता॥ २॥ देश षोडशनमें तुम ऐसैं, सीत बीचि करि भाग ही जैसैं। च्यारि वृक्षा सु बीची

परे हैं, तीन भंग नदि अन्त धरे हैं ॥ ३ ॥ भद्रशाल वन वेदि बनाई, देवरण्य करि अन्त रुकाई। यौंहि विचि सु विदेह बनाये, आठ आठ तट दोउहि थाये ॥ ४ ॥ यौंहि षोडशहि देश लसै हैं, दक्षिण पर सु लम्ब बसैं हैं। पूर्व पश्चिमहि व्यास इनौंको, षोडशां हि विजयार्द्ध गिनौंको ॥ ५ ॥

तेहि रूप्यगिरि लम्ब विचारो, पूर्व पश्चिमहि नित्य सवारो। व्यास उत्तर ही दक्षिणमाही, यौंही रूप्यगिरि वर्णन थाई ॥ ६ ॥ उच्च पंच अर त्रिंश प्रमानौं, व्यास दूण इनकौं निति जानौं। देश तुल्य इक लम्ब कह्यो हैं, सर्व रूप्यमय वर्ण लह्यो हैं ॥ ७ ॥ गंग सिंधू सम दोय नदिके, द्वार दोय इकमें निति नीके। पंचपण पंचपण पुरी हैं, उत्तरेहि फुनि दक्षिणरी है ॥ ८ ॥ दोउ पार्श्व इकसार बनो है, विद्यधार इनमाही गनो है। ऊपरे हि इनके जिन गेहा, एक एक परि एक इकेहा ॥ ९ ॥ गेह उच्च अर व्यास अयामा, पौंण कोश अध कोश सदामा। गेहमाहि तुम नित्य विराजो, एकमाहि शत आठहि राजो ॥ १० ॥

उच्च पंचशत देह धनूकी, रत्न रूप निर्माण तिनौंकी। यौंहि वर्ण विजयार्द्धन केरो, एकसौ अधिक साठि हि वेरो ॥ ११ ॥ नाथ रूप्य गिरिके अब मोरि, विनती सु सुनियो सुख थोरि। कर्म वैरी मुझि वेगि

मिटावो, निरुप सोऽहमय थान बनावो ॥ १२ ॥ बारबार तुमपैं हम जाचैं, पाद पद्म तुमरे मन राचैं। बेगि मोहि तुम पासि बुलावो, महाचन्द्र बुधकौं शिव थावौं ॥ १३ ॥

घत्ता।

यह पूर्व विदेहे मेरु लगे हे, विजय जयेहे जिनगेहे। निति पूज रचावौं, जिन गुण गावो, निजनिधि पावो करि नेहे ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु पूर्व विदेह षोडश विजयार्धस्थ जिनगृहाय अर्घं ॥ १४ ॥

बेसरि छन्द।

निति प्रति जो नर प्रीति लगाई, पूर्व विदेह रूप्य गिरि भाई। जिनगृहकी यह पूज रचाई, मन वांछित फल सो नर पाई॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री विद्युन्माली मेरु पूर्व विदेहे विजयार्द्ध जिनगृह पूजा समाप्ता।

अथ विद्युन्मालि मेरु पश्चिमदिशि विदेह विभागे वक्षारस्थ जिनगृह पूजा

लोलतरंग छन्द।

विद्युन्मालिप पश्चिम भागे, गेह सु आठ वक्षगिरि लागे। ते जिनराज कृपा करि मोपैं, आय विराजहु थाल अनौपैं ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु पश्चिम वक्षारस्थ जिनगृह जिनसमूह अत्रावतरावतर। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

नयमालिनी छन्द।

नीर गंग मुखको भरि ल्यावो, धार तीन जिन अग्र ही द्यावो। मेरु पंचम ही पश्चिम केरा, ते वक्षार गिरि गेह जजेरा ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु पश्चिम वक्षारस्थ जिनगृह जिनसमूहाय जलम् ॥ १ ॥

चन्दनं सु शुभ केशरि मेलो, गंध लेप घसि जिन पद मेहलो ॥ मेरु पंचम ही० ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली पश्चिम वक्षारस्थ जिनगृह जिनसमूहाय चन्दनम् ॥ २ ॥

शालि खण्ड वर्जित जुत गन्धं, पंच पूज करिये सु अमंदं ॥ मेरु पंचम ही० ॥

ॐ ह्रीं वि० पश्चिम वक्षारस्थ जिन० समूहाय अक्षतम् ॥३॥

पद्म केलकोय चम्पक लीजे, काम बाण हत पुष्प गृहीजे ॥ मेरु पंचम० ॥

ॐ ह्रीं वि० पश्चिम० वक्षारस्थ जिन० समूहाय पुष्पम् ॥ ४ ॥

लेय नेवज सु निर्मल पात्रे, पूजि पाद जिनके शुभ गात्रे ॥ मेरु पंचम० ॥

ॐ ह्रीं वि० पश्चिम० वक्षारस्थ जिन० समूहाय नैवेद्यम ॥ ५ ॥

दीपकं विमल जोति जगायो, मोह अंध घेटनि करि ल्यायो ॥ मेरु पंचम० ॥

ॐ ह्रीं वि० पश्चिम० वक्षारस्थ जिन० समूहाय दीपम् ॥ ६ ॥

धूप गंध सहितं सु मगायो, खेय कर्म अब दूरि नशायो ॥ मेरु पंचम० ॥

ॐ ह्रीं वि० पश्चिम० वक्षारस्थ जिन० समूहाय धूपं ॥ ७ ॥

आम नीबु फल उत्तम लेकैं, पूजि थाल भरिकैं सुख वेकै ॥ मेरु पंचम० ॥

ॐ ह्रीं वि० पश्चिम० वक्षारस्थ जिन० जिनसमूहाय फलं ॥८॥

नीर गंध सुख ले वसु द्रव्यं, अर्घ थाल करमें धरि नव्यं ॥ मेरु पंचम० ॥

ॐ ह्रीं वि० पश्चिम० वक्षारस्थ जिन० जिनसमूहाय अर्घम् ॥९॥

अथ प्रत्येक अर्घं ।

लोलतरंग छन्द ।

मेरु सु पंचम पश्चिम माही, सीतोदा उत्तर तट

थाही। वक्षार पर्वत संस्थावान नामा, तापरि पूजि जिनेन्द्र सुधामा ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु पश्चिम भागे सीतोदा उत्तर तटे संस्थावान नामा प्रथमवक्षारस्थ जिनगृहाय अर्घम् ॥ १ ॥

नाम सु है तिस विजटावाना, वक्षार दूसर उत्तर माना।
तापरि गेह जैनको होई, पूजत ही भव बाधहि खोई ॥

ॐ ह्रीं विजटावान नाम द्वितीय वक्षारस्थ जिनगृहाय अर्घं ॥२॥

आसिविष भद्र त्रितीय वक्षारे, सीतोदा उतर तट कारे।
तापरि है जिन गेह अनूपं, पूजहु नाम धिके जिन भूपं ॥

ॐ ह्रीं आसीविषक नाम वक्षारस्थ जिन० अर्घम् ॥ ३ ॥

चोथहि सौख्य वहं सु वक्षारं, कंचन मय तापरि गृहकारं।
गेह महा कन रूप विराजे, नामधिनाथ जिजें अघ भाजैं॥

ॐ ह्रीं सुखवह नाम वक्षारस्थ जिन० अर्घम् ॥ ४ ॥

चंद्रहि नाम सु है हि वक्षारा, दक्षिण है सरिता तहि धारा।
उपरि सद्म मनोहर होइ, नामधि नाथ जिनेंद्र जिजोहि ॥

ॐ ह्रीं सीता दक्षिणतटे चन्द्रनाम वक्षारस्थ जिन० अर्घम् ॥५॥

सुर सुनाम सुनाम वक्षारं, षष्टम है निति दक्षिण सारं।
तापरि गेह मनोहर राजे, पूजत ही भवके अघ भाजै ॥

ॐ ह्रीं सुर नाम वक्षारस्थ जिन० अर्घम् ॥ ६ ॥

सप्तम है हिममाल वक्षारं, दक्षिणमें नदितैं सुखकारं।
गेह महा सुन्दर लखि लीजे, अघ बनाय सदैव जजिजे ॥

ॐ ह्रीं हिममाल नाम वक्षारस्थ जिनगृह अर्घं ॥ ७ ॥

देवहि माल नाम सु वक्षारं, अष्टम दक्षिणमैं सुखकारं।
गेह अनोप लसै तिस मध्ये, पूजत ही सब संपति लद्धे॥

ॐ ह्रीं देवमाल नाम अष्टम वक्षारस्थ जिन० अर्घ ॥ ८ ॥

पश्चिम विद्युन्मालीय मेरो, अष्ट वक्षारनपैं गृह हेरो।
पूजत है सुर संघ निरंतं, पूजत पाप पलाय अनंतं॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु पश्चिमभागे अष्ट वक्षारस्थ जिन-गृह समूदाय पूर्णार्घम् ॥ ९ ॥

बिंबअनोपम आठ शतं ही, और बत्तीस लसै सुखदंही।
पूजहु पूरण अर्घ बनाई, पूजनही सब विघ्न विलाई॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु पश्चिम दिशि अष्टम वक्षारस्थ आठसै चउतीस सर्वजिनबिंबेभ्यः पूर्णार्घम् ॥ १० ॥

अथ जयमाल।

दोहा।

विद्युन्माली विमलगिरि, विलसंतंति विशेष।
गिरि वक्षारं लीन जिन, रिद्धि करो तिन केश॥ १॥

पद्धडी छन्द।

जय विद्युन्माली पश्चिमाही, गिरि वक्षारन परि जिनगृहाही। जय तिन मधि तुम जिनराज देव, तुम राजत हो निति ही स्वमेव ॥ २ ॥ जयदेव कह्यो तुम थितिहि बंध, सो काटि गये तुम शिव अमंद। ज्ञानावरणीकी थिति गनेय, कोडा कोडी त्रिंशति लहेय ॥ ३ ॥ दर्शनावर्ण थिति यौंही होय, त्रिंशत

कोडा कोडी कहोय। वेदनीय कर्म सोही प्रमान, कोडा कोडी त्रिंशति प्रमान ॥४॥ मोहनी कर्म थिति एम होय, सत्तरि सागर कोडा कुडोय। विंशति सागर थिति नाम होय, कोडा कोडि गनियौं समोय ॥ ५ ॥

सह गोत्र कर्म थिति यौं बखान, विंशति कोडा कोडी प्रमान। है अंतराय थिति एम नाथ, कोडा कोडी त्रिंशती सुपाथ॥६॥ तेतीस सागरोपम जिनेश, तुम कही आयुकी थिति अवेश। यह उत्कृष्टा तुम कही देव, सु जघन्यरूप सु कहीक हेव ॥ ७ ॥ वेदनी मुहूर्तहि बार होय, बाकी थिति अन्तर मुहूर्त होय। यौं होत जघन्यहि थिति सदैव, आठौं कर्मनकी है स्वमेव ॥ ८ ॥ तुम तोडि कर्म अब शिव सु थान, पहुँचे जिनेन्द्र सब सौख्य खानी। अब मोहि कर्म थिति मेटि मेंट, शिवरामातैं करि भेट भेट ॥ ९ ॥ अष्ट कर्म यह चकचूर चूर, आनन्द अनोपम पूर पूर। संसार विघ्न तरु खण्ड खण्ड, दुःखदारिद्र माहि विहण्ड हण्ड ॥ १० ॥ नहि सह्यो जात यह जगत दुःख, जगमाहि नाहि कहु लेश सौख। यह जगत फन्द मुझ करहु दूर, बुध महाचन्द्र ठाडो हजूर ॥११॥

सोरठा।

पंचम मेरु पछाह, वक्षारन जिनगृह जिजौं।
ज्यौं पावो सुख थाह, सार जगतमें जानिकैं ॥

ॐ ह्रीं पश्चिम वक्षारस्थ जिनगृह समूहाय महार्घं ॥ १२ ॥

दोहा।

जो नर पूजै भावनै, वक्षारन जिन धाम।
सो सुरनर सुख भोगिकैं, फिर पावैं शिव धाम ॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री विद्युन्मालि मेरु पश्चिम वक्षारस्थ जिनगृह पूजा समाप्त।

अथविद्युन्मालीमेरुपश्चिमविजयार्द्धस्थ जिनगृह पूजा।

छन्द अमृतध्वनि।

चमकत अति रूपं विमल स्वरूपं, गिरि सु अनूपं सुख कूपं। सुखसार रसालं जिनगृहमालं, सर्व विशालं सुख पालं ॥ यह पंचम मेरं पश्चिम हेरं, गिरि रुपेरं सुख सज्जं। तिसपैं जिन गेहं सुर कृत नेहं, सब सुख देहं थुति गज्जै ॥ गज्जन थुति सज्जन श्रुन, रज्जन मति भज्जन। नननमज्जज मन मल जज्ज, नघन सरसरमनन सुघा ॥ झुझ्झरन सु संसस्समकत, जै जै जपत सु ठै ठै धपत, सु चंचलमकत ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु पश्चिम विदेह विजयारधस्थ जिनगृह जिनसमूह अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिस्थापनं।

जोगीरासा आवली बन्ध।

गंगादिक गत जल अति निर्मल, कंचन भृंग भरावो।
जन्म जरामृत मेटन कारण, धारा तीन सु धावो॥

जिनपद पूज रचावो, विद्युन्माली मेरु रसाली पश्चिम दिशिमें जावो। क्षेत्र विदेह मध्य रूपाचल जिनगृहके जिन ध्यावो, जिनपद पूज रचावो॥

ॐ ह्रीं विद्युन्मालीमेरोः पश्चिम विदेह विजयारधस्थ जिनगृह समुदाय जलं॥ १॥

केसरि चन्दन घसि शुभ गन्धन, और कपूर मिलावो। भव तप नाशन ले शुभ भाजन, जिनपद पद्म चढ़ावो। जिनपद पूज रचावो, विद्युन्माली मे०॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली पश्चिम विदेह विजयारधस्थ जिन० समुदाय चन्दनं॥ २॥

शाली अखण्ड अति द्युति मंड, दीरघ दन्ड रचावो। अक्षय पदके कारण जिनपद, अग्र पुञ्ज सु करावो। जिनपद पूज रचावो, विद्युन्माली०॥

ॐ ह्रीं वि० पश्चिम विदेह विजयारधस्थ जिन० जिन-समुदाय अक्षतं॥ ३॥

कमल केतकी वेलि चमेली, और कुसुम शुभ पावो। काम बाणके नाशन कारण, जिनपद अग्र धरावो। जिनपद पूज रचावो, विद्युन्माली०॥

ॐ ह्रीं वि० पश्चिम विदेह विजयारधस्थ जिन० जिन-समुदाय पुष्पं॥ ४॥

नाना रस करि मोदक मोदन, खाजा फीणी बनावो। रोग क्षुधा दुःख दूरि करनकौं, जिनपदपैं सुर भावो। जिनपद पूज रचावो, विद्युन्माली०

ॐ ह्रीं वि० पश्चिम विदेह विजयारधस्थ जिन० जिन-समूहाय नैवेद्यं॥ ५ ॥

दीपक जोति उद्योत होत जिम, जगमग जोति जगावो। मोह महातम दूरि करनकौं, दीपकतैं जिन ध्यावो। जिनपद पूज रचावो, विद्युन्माली०।

ॐ ह्रीं वि० पश्चिम विदेह विजयारधस्थ जिन० जिन-समूहाय दीपं ॥ ६ ॥

अगर तगर कृष्णा गुरु लेकर, गन्ध सुगन्धित ध्यावो। अष्ट कर्म नाशनकौं जिनपद, आगैं खेव करावो। जिनपद पूज रचावो, वि० ॥

ॐ ह्रीं वि० पश्चिम विदेह विजयारधस्थ जिन० जिन-समूहाय धूपम् ॥ ७ ॥

श्रीफल आम नारिंग सुपारी, दाडिम नींबू मगावो, मोक्ष महाफल चाखन कारण। ऐसे फल जिन ध्यावो, जिनपद पूज रचावो, वि० ॥

ॐ ह्रीं वि० पश्चिम विदेह विजयारधस्थ जिन० जिन-समूहाय फलं॥ ८ ॥

जलफल अर्घ बनाय मनोहर, कञ्चन थाल भरावो।

पद अनर्घके कारण श्रीजिन, पाद पूज अग्र ही धरावो।
जिनपद पूज रचावो, वि० ॥

ॐ ह्रीं वि० पश्चिम विदेह विजयारधस्थ जिन० जिन-समूहाय अर्घम् ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येक अर्घं।

तामरस तथा नयमालिनी छन्द।

विद्युन्मालीय पश्चिम माहीं, सीतोदा उत्तर तट थाहीं।
पद्मदेश गिरि रूप्य विषै है, गेह जिनो जिनसार लसै है॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु पश्चिमे सीतोदा उत्तर तटे पद्मदेश विजयारधस्थ जिनगृहाय अर्घं ॥ १ ॥

देश सु पद्मा मैं अति सोहैं, रूप्यगिरि जिनगृह मन मोहै।
तापरि गेह नमैं जिनराजैं, ते जजतैं भवके दुख भाजैं॥

ॐ ह्रीं सुपद्मादेश विजयारधस्थ जिनगृहाय अर्घं ॥ २ ॥

दक्षिण उत्तर लम्ब विराजे, देश महा पद्मा सुख छाजै।
रूप्यगिरि रूपामय तामैं, जिनगृह पूजों जिनवर जामैं॥

ॐ ह्रीं महापद्मादेश विजयारधस्थ जिन० अर्घं ॥ ३ ॥

व्यास पूर्व परमैं निति सो है, पद्मावती देश समोहै।
रूपामय रूपाचल बीचैं, गेह पूजि मिटि है गति नीचैं॥

ॐ ह्रीं पद्मकावतीदेश विजयारधस्थ जिन० अर्घं ॥ ४ ॥

सञ्चल देश बीचिथिति जाकी, लंब पूर्व पश्चिमदिशि ताकी।
जैन सद्म मधि हैं जिनदेवा, पूजि पाद अर कीजिय सेवा॥

ॐ ह्रीं संचलादेश विजयारधस्थ जिनगृहाय अर्घम् ॥ ५ ॥

दृयास जास उत्तर अपरेमैं, रूपगिरि निनिहो सुखनेमैं।
तापरि जिनगृह सोहे सारं, पूजत हो भवके दुख टारं॥

ॐ ह्रीं नलिनी देश विजयारधस्थ जिन० अर्घम्॥ ६॥

देश लसै कुमुदा सुखकारा, तामधि रूपगिरी लखितारी।
ऊपरि सद्म लखो जिन केरो, पूजत हो भवके दुख घेरो॥

ॐ ह्रीं कुमुदा देश विजयारधस्थ जिन० अर्घम्॥ ७॥

भूत अरण्य पास थिति जाको, सरिता देशमनोहर वाको।
रूपगिरी परि जिनगृह सोहै, पूजत हो जिनपद सुख होहै।

ॐ ह्रीं सरिता देश विजयारधस्थ जिन० अर्घम्॥ ८॥

सीतोदा दक्षिण तट हेरो, वप्रादेश मनोग्य घनेरो।
तामधि रूपगिरी लखि नित्यं, पूजि पूजिहू ज्यो कृतकृत्यं॥

ॐ ह्रीं विद्युन्मालीमेरु पश्चिम सीतोदा दक्षिणातटे वप्रादेश विजयारधस्थ जिनगृहाय अर्घम्॥ ९॥

उन्नत जोजन है पण बीसा, व्यास पचास कहै जगदीशा।
गेह तासपरि है सुखकारी, रूपाचल ऐसो भवतारी॥

ॐ ह्रीं सुवप्रादेश विजयारधस्थ जिन० अर्घं॥ १०॥

देश महा वप्राके माही, रूपगिरि रूपामय थाही।
सद्म तासपरि है जिन केरो, जिन पूजो निति धानक हेरो॥

ॐ ह्रीं महावप्रादेश विजयारधस्थ जिन० अर्घम्॥ ११॥

वप्रकावती देश अनूपं, रूपगिरि तामधि गृह रूपं।
रूपमई ताके जिनदेवा, पूजो निति कीजे पद सेवा॥

ॐ ह्रीं वप्रकावतीदेश विजयारधस्थ जिन० अर्घम्॥ १२॥

गन्धा देश माहीं जिन गेहा,
कोस एक आयाम करेहा।
पौंण ऊंच अध व्याम बिराजे,
तामधि बिंब जिजे अघ भाजे॥

ॐ ह्रीं गन्धादेश विजयारधस्थ जिन० अर्घम् ॥ १३ ॥

देश सु गंधा माहीं लखिये, विजयारध तापरि जिन कीजे।
गेह समेत विराजत सारं, पूजत सुर निति अष्ट प्रकारं॥

ॐ ह्रीं सुगन्धादेश विजयारधस्थ जिन० अर्घम् ॥ १४ ॥

सीतोदहीतैं दक्षिणमाहीं, देश गंधिला माहीं समाहीं।
रूप्य गिरि जिनगेह बनाई, पूजो भवि निति जिनके पाई॥

ॐ ह्रीं गंधिलादेश विजयारधस्थ जिन० अर्घम् ॥ १५ ॥

भूतारण्य समीप मनोग्यं, गंधमालिनि देश सु जोग्यं।
तामधि रूप्यगिरि जिनगेहं, जिनवर पूजि करो शिवनेहं॥

ॐ ह्रीं गन्धमालिनीदेश विजयारधस्थ जिन० अर्घम् ॥१६॥

विद्युन्मालिय पश्चिमभागे, षोडश रूप्यगिरि तह पागे।
षोडश गेह मनोज्ञ विराजै, पूजत ही भवके दुख लाजै॥

ॐ ह्रीं विद्युन्मालीमेरु पश्चिमविदेहे षोडश विजयारधस्थ जिनगृह समूहाय पूर्णार्घं ॥ १७ ॥

बिंब लसै इनमें जिनराई, सतरासै अठवीस सुहाई।
पूरण अर्घ बनाय मनोग्यं, पूजहु जिन पद मनवच जोग्यं॥

ॐ ह्रीं विद्युन्मालीमेरु पश्चिमे सतरासै अठाईस सर्वजिनबिम्बेभ्यः पूर्णार्घम् ॥ १८ ॥

अथ जयमाला।

घत्ता छन्द।

पश्चिमे हि गिरि पंचम केरो, इन्द्राकेतु जिनगेह सु हेरो। पूजियो सु जयमाल बनाई, पूजतैं हो सबकौं सुखदाई ॥ १ ॥

तामरस छन्द।

जयजिनेंद्र सुर पूजित जै जै, तुम पद नित प्रति पूजित जै जै। तुम नित भाव बतायक जैजै, मूल पंच सु लगायक जै जै ॥ २ ॥ उपशम क्षायक द्वायक जै जै, और क्षयोपशमायक जैजै। उदय पारिणामिक ह जैजै, येही मूल बतायक जैजै ॥ ३ ॥ दोय नव छ दशादिक जैजै, एक विंश त्रय पादिक जैजै। सम्यक चारित दोयहि जैज, ज्ञान दर्श फुनि जोयक जैज ॥४॥ दान लाभ भोग कथक जैजै, अर उप भोग वीर्य लख जयजय। सम्यक चारित मेलक जैजै, नो विध क्षायक तैं लख जैजै ॥ ५ ॥

ज्ञान च्यारि अज्ञानति जयजय, तीन दर्श शुभ जानति जैजै। लब्धि पंच सम्यक्तक जैज, और चरित्र सु व्यक्त जयजय ॥६॥ संजम संजम गायक जयजय, येहि क्षयोपशमायक जयजय। ए अष्टादश जानक जयजय, भेद क्षयोपशमानक जयजय ॥ ७ ॥ च्यारि गति रु कषायक जयजय, लिंग तीन सु बतायक जय-

जय। लेश्या षट इन माहिक जयजय, मिथ्या दर्श लगायक जयजय ॥८॥ एक अज्ञान असंजित जयजय, एक असिद्ध सुमंजित जयजय। एही भेद इकीशक जयजय, उदयके सु लगी सक जयजय ॥ ९ ॥ जीव भव्यत्व अभव्यत्व जयजय, तीन परिणामिक गत जयजय। एही भेद तरेपन जयजय, उत्तर मूल सुदा यण जयजय ॥ १० ॥

भाव भेद निति जानक जयजय, और जीव समझायक जयजय। भवभय कून शत खण्डन जयजय, रत्नत्रय करि मंडन जयजय। ११॥ मोक्ष मार्ग दरशायक जयजय, कर्मरिपु निति घायक जयजय। मोहमहातम दीपक जयजय, शिव रमणि सु समीपक जयजय ॥ १२ ॥ भव्य भवोदधि तारक जयजय, सर्वजीव सुखकारक जयजय। तारण तरण निरंतर जयजय, मुक्तिरमापति अन्तर जयजय ॥१३॥ काल जाल निःकालक जयजय, सारतार जग पालक जयजय। भवभव भव्य सहायक जयजय, मोक्षरमा सुखदायक जयजय ॥ १४ ॥ नाथ पाथ भव-तारक जयजय, सर्व जीव उद्धारक जयजय। जन्म जन्म दुख घायक जयजय, बुद्ध महाचन्द्र सहायक जयजय ॥१५॥

घत्ता छन्द।

यह पश्चिम मेरु दीप त्रा तेरो, रूप्य गिरेरो सुख सेरो।
जिनवर गृह केरो, शिव सुख देरो, पूजो भवि भव हेरो॥

ॐ ह्रीं विद्युन्मालीमेरु पश्चिम विदेहे षोडश विजयारधस्थ जिनगृह समूहाय महार्घम् ॥ १६ ॥

अडिल छन्द।

जो नर नित्य जपैं जै जिन, पश्चिम मेरुके शोभ शारुप्य गिरिपरि। जिनगृह हेरके सो नर सुर सुख भोगि भोगि अति संपदा, अनुक्रमतैं निरवाण लहै करिकैं मुदा॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री पश्चिमे विद्युन्माली मेरु विदेह विजयारधस्थ जिनगृह पूजा समाप्ता।

अथ विद्युन्माली मेरो षट्कुलाचलस्थ जिनगृह पूजा।

दोहा।

अनुष्टुप्छन्द।

पंचम गिरिवर जानिये, षट्कुल पर्वत सार।
जिनगृह थापे भावसौं, सो आकुलता हार॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु षट्कुलाचलस्थ जिनगृह जिनसमूहाय अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

मोतिदाम छन्द।

सु निर्मल नीर सगाय मनोग्य, सुधा रहि तीनरी दीजिय जोग्य। जिजौं षट्पर्वत गेह सुमेर, सु पंचमके निति भावन हेर॥

ॐ ह्रीं विद्युन्मालीमेरु षटकुलाचलस्थ जिनगृह जिन-समूहाय जलम्॥ १॥

शुभ कुँकुम चन्दन मेलि घसाय, भवांतप मेटन पूज रचाय। जिजौं षट प०॥

ॐ ह्रीं वि० मेरु षटकुलाचलस्थ जिन० जिनसमूहाय चन्दनम्॥ २॥

सु शालि अखण्डित धोय धराय, जिनाग्र सु पुंजहि पंच सु ध्याय। जिजौं षट प०॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु षटकुलाचलस्थ जिन० अक्षतम्॥३॥

सु केतकी चम्पक पुष्प मगाय, सु मन्मथ मेटन थाल भराय। जिजौं षट प०॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु षटकुलाचलस्थ जिन० पुष्पं॥ ४॥

सु नेवज मोदक मोदन लाय, क्षुधादिक मेटन अग्र चढाय। जिजौं षट प०॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु षटकुलाचलस्थ जिन० नैवेद्यम्॥५॥

सु दीपक जोति उद्योत कराय, तमो मह नाशन जोति जगाय। जिजौं षट प०॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु षटकुलाचलस्थ जिन० दीपम्॥६॥

सु धूप सुगन्धित द्रव्य मिलाय, सु खेय जिनाग्र सुगन्ध कराय। जिजौं षट प० ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु षटकुलाचलस्थ जिन० धूपम् ।७॥

सु आम्र री नींबू नरिंग मगाय, फलोत्तम ले शुभ थाल भराय। जिजौं षट प० ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु षटकुलाचलस्थ जिन० फलम् ॥८॥

सु नीर सुगन्ध फलांत मंगाय, करौं इनको शुभ अर्घ अघाय। जिजौं षट प० ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु षटकुलाचलस्थ जिन० जिनसमूहाय अर्घम् ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येकार्घाणि ।

प्रमिताक्षरा छन्द ।

शत उन्नतं हिमवनं गिरि है, तीसपै जिनालय शुभंकर है। जिज हौं सु अर्घ करिकैंहि मुदा, जिजतैंहि पाप सब होय विदा ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु हिमवन कुलाचलस्थ जिनगृहाय अर्घम् ॥ १ ॥

फुनि नित्य महा हिमवन गिरि है, नितिहि सु रूपमय सुन्दर है। तिसपैं सु गेह जिनराज तनौं, भवि पूजहु निति प्रति पाप हनौं ॥

ॐ ह्रीं महाहिमवनकुलाचलस्थ जिनगृहाय अर्घं ॥ २ ॥

निषधाचल नाम कुलाचल है, तपनीय वर्णनहि जो चल है। तिसपैं जिन सद्म मनोज्ञ लसै, जजतैं सबै ही अघ दूरि बसैं॥

ॐ ह्रीं निषधाचल कुलाचलस्थ जिन० अर्घम्॥ ३॥

शुभ नील अद्रि निति नील लसै, चउसैं ही जोजन सु ऊँच बसैं। तिसपैं जिनगृह विराजित है, जजतैं ही पाप सब लाजत है॥

ॐ ह्रीं नीलकुलाचलस्थ जिन० अर्घम्॥ ४॥

कुल पर्वतंहि शुभ रुक्मि महो, जिनराज गेह जिनराज कही। निति पूजतैंहि सब पाप नस, सुख होत नित्य पद्माहि बसै॥

ॐ ह्रीं रुक्मिकुलाचलस्थ जिन० अर्घम्॥ ५॥

शिखरी कुलाचल सु षष्टम है, शुभ सोन वर्ण शुभ संगम है। गृह होत जैन सुखकार तहां, जिनराज जिजो निति भव्य यहां॥

ॐ ह्रीं षष्टम कुलाचलस्थ जिन० अर्घम्॥ ६॥

शुभ पंचमंहि गत मेरु तने, कुल पर्वतं षट सु नित्य बन। तिनपैं सु गेह षट राजत हैं, जजि पूर्ण अर्घ अर्घ भाजत हैं॥

ॐ ह्रीं विद्युन्मालीमेरु षटकुलाचलस्थ जिनगृह समूहाय पूर्णार्घं॥ ७॥

जिनबिंब षट शालहि राजत हैं, अधिकं अडताल विराजत हैं। तिनकौं सु पूर्ण करि अर्घ सदा, जजि हौं निरन्तर सु अर्घ मुदा।

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु षटकुलाचलस्थ छसै अडतालीस सर्वजिनबिंबेभ्य पूर्णार्घम् ॥ ८ ॥

अथ जयमाला।

दोहा।

विद्युन्माली मेरुके, षटकुल पर्वत माहीं।
षट जिन गेह सुहावनें, अथ जयमाल जपाहिं ॥ १ ॥

रूप चौपाई।

जय सु मेरु पञ्चमके माही, जय सु षट कुलपर्वतमें तुम थाही। हीमवन और महा हिम वाना, निषध नील पुनि रुक्मी प्रमाना ॥२॥ शिखरी नाम सदा यह होय, हिमवन हेम वरण निति जोय। रूप मई सु महा हिम वाना, निषध तप्त सोनामय जाना ॥ ३ ॥ नील वर्ण वैडुर्य समाना, रुक्मि रुपामय होत बखाना। शिखरी सोवन वर्ण बखाना, सौ जोजन ऊंचो हिम वाना ॥ ४ ॥ दोय स्यारिसै दोय गिनीजै, महा हिम व निषधाचल लीजै। उत्तरमें दक्षिण सम जानौं, ब्यास इनौंकौं सुनिय बखानौं ॥ ५ ॥

हिमवन एक हजार बनिजै, बावन जोजन उपरि लीजैं। इक जोजन उगनीस कलामें, बारह कला

अधिक है तामें ॥ ६॥ यातैं चतुर्गुण मह हिमवाना, तात चउगुण निषध बखाना। दक्षिण सम उत्तरमें जानौं, ऐसैं व्यास निरन्तर मानौं। ७॥ हीन लम्बाई उदधि तटांत, ऊंचाल भूमैं चउ पांत। इन उपरि जय जिन तुम गेह, राजत है निति ही अधिकेह ॥ ८ ॥ गेह लम्ब जोजन पचास, पण विंशति जोजन है व्यास। साढासैंतीस जोजन ऊंच, यौं जिनगेह विराजत सूच ॥९॥ नित्य विराजत हो जिनदेव, तिन जिनगेह नमैं स्वयमेव। इक ग्रहमें इकसो अरु आठ, निति पणसै धनु तुंग सु ठाठ ॥ १० ॥

ऐसैं ही वर्णन तुम कीनौं, तिस कुलाचल माहि प्रवीनौं व्यास उचता गाथ सु मुख्य, ऐसैं ही वर्णन सब लक्ष्यं ॥ ११ ॥ हे जिनराज सुनौं अब मेरी, हम शरणागत हैं जिन तेरी ॥ बारबार यह अरज हमारी, हे जिनराज सुनौं तुम सारी। १२॥ भवसागरतैं पार करीजै, भव दुख मेटि सबैं सुख दीजे। डूबत मोही उदधितैं काढो, बुध महाचन्द्र विनवैं ठाढो ॥ १३ ॥

सोरठा।

जय जिन त्रिभुवन सार, तुमको यह जयमाल है।
कीजे भवदधि पार, यह वांछा उर मो बसै ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्मालीमेरो षट्कुलाचलस्थ जिनगृह समूहाय महार्घं ॥ १४ ॥

दोहा।

जो निति मन वच तन तन लगे, बांचत है यह पाठ।
सो नर सुर सुख भोगिकैं, अनुक्रम पावै ठाठ॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री विद्युन्मालि मेरु षट्कुलाचलस्थ जिनगृह पूजा समाप्त।

अथ विद्युन्मालीमेरु दक्षिणे भरतक्षेत्रे विजयार्द्धस्थ जिनगृह पूजा

गीता छन्द।

शुभ मेरु विद्युन्माली, दक्षिण भरतक्षेत्र विषै लसैं।
विजयार्द्ध रूपमई मनोहर, देखि शोक सबैं नसैं॥
तापरि जिनेन्द्र सु गेह सुन्दर, तासमैं जिनराजजी।
जिनदेव आय विराज पूजौं, अष्ट द्रव्य समाजजी॥

ॐ ह्रीं विद्युन्मालीमेरु दक्षिण भरतक्षेत्र विजयारधस्थ जिन-गृह जिनसमूह अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिस्थापनं।

द्रुतविलम्बित छन्द।

अति मनोरथ सु कञ्चन पात्रके,
विमल नीर सुधार धारात्रिके।
शुभ सु पञ्चम मेरुहि दक्षिणे,
भरत गेह जिजों निति ही क्षणे॥

ॐ ह्रीं विद्युन्मालीमेरु दक्षिणदिशि भरतक्षेत्रे विजयारधस्थ जिनगृहाय जलं ॥ १ ॥

मलय चन्दन गन्धन लेपकैं, जिनपदांबुज पूजि सु वेपकैं। शुभ सु पं० ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्मालीमेरु दक्षिणदिशि भरतक्षेत्रे विजयारधस्थ जिनगृहाय चन्दनं ॥ २ ॥

अमल तन्दुल उज्जल पावनें, जिनपदाग्र सु पुंज करावनें। शुभ हि० ॥

ॐ ह्रीं वि० दक्षिणदिशि भरतक्षेत्रे विजयारधस्थ जिन० अक्षतम् ॥ ३ ॥

कमल केतकी पुष्प सुगन्धितं, अलिगणं भ्रमि है अति अन्धितं। शुभ सु प० ॥

ॐ ह्रीं वि० दक्षिणदिशि भरतक्षेत्रे विजयारधस्थ जिन० पुष्पम् ॥ ४ ॥

अमल नेवज मोदक लीजिये, हरण रोग क्षुधा सु करीजिये। शुभ सु पं० ॥

ॐ ह्रीं वि० दक्षिणदिशि भरतक्षेत्रे विजयारधस्थस्थ जिन० नैवेद्यम ॥ ५ ॥

अमल दीपक दीपित लीजिये, हरण मोह सु जोति करीजिये। शुभ सु पं० ॥

ॐ ह्रीं वि० दक्षिणदिशि भरतक्षेत्रे विजयारधस्थ जिन० दीपम् ॥ ६ ॥

अगर आदि सु धूप सुगन्धितं, जिनपदांबुज खेय अमंदितं। शुभ सु पं० ॥

ॐ ह्रीं वि० दक्षिणदिशि भरतक्षेत्र विजयारधस्थ जिन० धूपं ॥ ७ ॥

फल मनोहर दांडिम आम ही, जिनपदांबुज थापि सु काम ही। शुभ सु पं० ॥

ॐ ह्रीं वि० दक्षिणदिशि भरतक्षेत्रे विजयारधस्थ जिन० फलं ॥८॥

जल फलं करि अघ सवारिये, जिनपदांबुज अग्र सु धारिये। शुभ सु पं० ॥

लक्ष्मीधरा छन्द।

मेरु पंचमके दक्षिणे जानिये,
　　भरतक्षेत्र सु रूपाचल मानिये।
गेह हैं तास बीचैं महा सोहनौं,
　　पूजतैं ही सबैं पाप कदि हनौं ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु दक्षिणे भरतक्षेत्रस्थित विजयारध जिनगृहाय अर्घम् ॥ १ ॥

तासमैं बिम्ब है एकसो आठ ही,
　　निस्य राजैं जिजैं होत हैं ठाठ ही।
लेय पूर्ण सु अर्घ अनोपं सदा,
　　पूजिये भव्य ज्यों मोह होवै विदा॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु दक्षिणे भरतक्षेत्र विजयार्द्ध एकसो आठ सर्वजिनबिंबेभ्यः पूर्णार्घं ॥ २ ॥

अथ जयमाला।

सोरठा।

विद्युन्माली मेरु, भरतक्षेत्र विजयार्द्धपैं।

जिनगृह सुन्दर हेर, अब जयमाला जपत हौं॥ १॥

कामिनि मोहन छन्द।

जय सु पञ्चम सुमेरो सु दक्षिण विषैं, भरत विजयार्द्ध परि गेह तु मेरो लखैं। जय सु तीस माहि तुम नाथ नितिप्रति रहत, अमल गुणधार तुम देव निति अघ दहत॥ २॥ पञ्चशत और षट बीस षट कल सहत, भरत दक्षिण सु उत्तर ही व्यासं वहत। तास मधि रूप्यगिरि व्यास पचास हैं, उच्चतं नित्य पचीस सुखरास हैं॥ ३॥ लंब पूर्वापर सु समुद्र पर्यंत हैं, गाध ऊञ्चासतैं चतुर असन्त हैं। होत हुय कन्दरं नित्य जाके विषैं, गङ्गसिन्धु नदी निकसि समुदं धसैं॥ ४॥ तास परिनाथ तुम गेह नि त राज ही, लंब इक कोशमैं नित्य सुख छाज ही। व्यास अधकोस नितिहि सकल साज ही, उच्चता गेहकी पौंण कोशी सही॥ ५॥

तासमधि नाथ तुम बिंब शत आठ हैं, धनुश शत पञ्च तनु तुङ्गता ठाठ है। रत्नमय बिंब तुमरे सदा होत हैं, कांतितैं सकल जग करत उद्योत है॥ ६॥ नाथ सुरपति शतक पूजि तुमरे चरन, तुम ही पद

पद्मयुग शिव रमनि सुखकरन। करहु हमपैं कृपा विमलत रमत धरन, तुम ही पद पद्म सेवा वदन। नाथ अघपाथ तारणतरण धारिमन, विबुध महाचन्द्रकौं भव उदधि तारधन ॥ ८ ॥

घत्ता।

यह पंचम मेरु दक्षिण केरू, भरतक्षेत्र विजयार्द्ध लसै।
तापरि जिन गेहे सुरपति नेहैं, पूजो भविभव पाप नसै ॥

अडिल छन्द

विद्युन्माली मेरु सुदक्षिणके विषैं, भरतक्षेत्र रूपाचल जिनगृह अति लसैं। ताकी पूजा वांचै जो नर भावसौं, ताकौं शिव तिय वांछै परम उछाहसौं ॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री विद्युन्माली मेरो दक्षिणदिशि भरतक्षेत्रमध्ये विजयार्द्धस्थ जिनगृह पूजा समाप्त।

अथ विद्युन्मालि मेरु उत्तरे ऐरावत विजयार्द्ध जिनगृह पूजा।

छोलतरंग छन्द।

विद्युनमालीय उत्तर जानौं, क्षेत्र ऐरावत ताबिचि मानौं।
रूपगिरि तिसिपैं जिनसद्मं, ते जिन आवजिजौं पदसद्मं

ॐ ह्रीं विद्युन्मालि मेरु उत्तरदिशि ऐरावतक्षेत्रे विजयार्द्धस्थ जिनगृह जिनसमूहाय अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भवभव वषट् सन्निधि स्थापनम्।

चामर छन्द।

मनोज्ञ जोग्य कुंभमें सु जोग्य नीर ल्याइये, जिनेन्द्र चन्द्र पाद अग्र धार तीन द्याइये। सु पंचमं सु मेरु हेर उत्तर ऐरावतैं, सु रूपगिरि पाप हरगेह जजो भाव तैं॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु उत्तरे ऐरावतक्षेत्र विजयार्द्ध जिनगृहाय जलम्॥ १॥

सु कुंकुमादि चन्दनादि गन्ध सार ल्याइये, चढ़ाईकैं जिनेन्द्रकै सु तापकौं नशाइये॥ सु पञ्चमं०॥

ॐ ह्रीं विद्युन्मालीमेरु उत्तरे ऐरावतक्षेत्र विजयार्द्ध जिन० चन्दनं॥ २॥

सुकुन्द इन्दु तुल्यसार तन्दुलं अखण्डितं, जिजो जिनेन्द्र धोय सार गन्ध रूप मण्डितं॥ सु पञ्चमं०॥

ॐ ह्रीं वि० उत्तरे ऐरावतक्षेत्र विजयार्द्ध जिन० अक्षतं॥ ३॥

सु केतकी कमोद मोद युक्त पुष्प लीजिये, जजिजिये जिनेन्द्र पाद पद्म नित्य भीजिये॥ सु पञ्चमं०॥

ॐ ह्रीं वि० उत्तरे ऐरावतक्षेत्र विजयार्द्ध जिन० पुष्पं॥ ४॥

सु मोदकादि घेवरादि सार सद्य ल्याइये, निवेद्यतैं क्षुधादि रोग दूरिहो नशाइये॥ सु पञ्चमं०॥

ॐ ह्रीं वि० उत्तरे ऐरावतक्षेत्र विजयारध जिन० नैवेद्यं ॥ ५ ॥

सु दीप दीपकार सार जोति रूप ले धरो, सु ले धरो जिनेंद्र अग्र, मोहकौं विदा करो ॥सु पंचमं०॥

ॐ ह्रीं वि० उत्तरे ऐरावतक्षेत्र विजयारध जिन० दीपं ॥ ६ ॥

सु धूप सार द्रव्य गंध युक्त लेय आइये, सु खेइये जिनाग्र अष्ट कर्मकौं नशाइये ॥ सु पंचमं० ॥

ॐ ह्रीं वि० उत्तरे ऐरावतक्षेत्र विजयारध जिन० धूपम् ॥ ७ ॥

सु आम नीबु आदि लेय थालकौं भराइये, चढाइये जिनेंद्र पाद मोक्ष फल पाइये ॥ सु पंचमं० ॥

ॐ ह्रीं वि० उत्तरे ऐरावतक्षेत्र विजयारध जिन० फलं ॥ ८ ॥

सु नीर आदि अष्ट द्रव्य लेयकें मनोहरं, करो सु अर्घ सार धारि हेम पात्रमें वरं ॥ सु पंचमं० ॥

ॐ ह्रीं वि० उत्तरे ऐरावतक्षेत्र विजयारध जिन० अर्घं ॥ ९ ॥

पाईता छन्द।

गिरि पंचम उत्तर माही, ऐरावत क्षेत्र सु ठाहीं।
तिस रूप्य गिरि जिन गेहं, भवि पूजो निति धरि नेहं ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु उत्तर दिशि ऐरावतक्षेत्र विजयारधस्थ जिनगृहाय अर्घं ॥ १ ॥

तिसमें जिनबिंब विराजै, इकसो अठ अति छवि छाजै।
निति पूरण अर्घ समाजे, भवि पूजो सब अघ भाजै ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु उत्तर दिशि ऐरावतक्षेत्र विजयारधस्थ जिनगृहे एकसो आठ सर्वजिनबिंबेभ्यः पूर्णार्घम् ॥ २ ॥

अथ जयमाल।

दोहा।

पंचम मेरु सुहावनौं, उत्तरक्षेत्र विशाल।
ऐरावत विजयारध जिन, ताकी अब जयमाल ॥ १ ॥

त्रोटक छन्द।

जय मेरु सु पंचम उत्तरमें, विजयारध ऐरावत माहि गमें। तिसमें तुम गेह महा तुम हो, नितिहि सु विराजत पाप वहो ॥ २ ॥ भरतं सम क्षेत्र ऐरावत है, शत पंच छवीस कला षट है। यह दक्षिण उत्तर माही कह्यो, फुनि पूरब पश्चिम भेद कह्यो ॥ ३ ॥ उदधि परयन्त विराजत हैं, निति नाही कभी यह छ जत हैं। तिस माहि सु रूप्य गिरि निति है, नही नाशक भी गिरिको सुहवे ॥ ४ ॥ गिरि दक्षिण उत्तर व्यास मही, तह जोजन रूप पचास कही। फुनि उन्नत तासु पचीस रही, उदधि परयन्त अयाम वही ॥ ५ ॥

षट पाव ही जोजन गाधल ही, गिरि वर्ण सु रूप्यमई निति ही। तिस दक्षिण उत्तर श्रेणि दुही, खग नित्य विराजत है तित ही ॥ ६ ॥ नगरी फुनि दक्षिण उत्तर है, निति दक्षिण भागहि साठि कहे। तह उत्तर माही पचास रहो, उदधि तट कारण घाटि कही ॥ ७ ॥ जय खेचर नित्य जजैं

तुमकौं, कहते मुखतें शिव द्यो हमकौं। निति रूप अनेक बनावत हैं, तुमरे जस उज्जल गावत हैं ॥ ८ ॥ खचरी फुनि खेचर नाच रचै, तुमरे गुनमैं निति राची मचै। ननननं ननननं ननननं ननननं, सननं सनन सननं सननं। घनन घननं घननं घननं, छननं छननं छननं छननं ॥ ९ ॥ दमदं दमदं दमद दमदं, द्रुमदं द्रुमदं द्रुमदं द्रुमदं। टमटं टमट टमटं टमटं, ठमठं ठमठं ठमठं ठमठं ॥ १० ॥

अटट अटटं अटट अटटं, उटलं उटल उटलं उटलं। इन आदि अनेक जु तान भरैं, खग नित्य तुमैं पद नाच करैं ॥ ११ ॥ हम नाथ तुमैं पद अग्र सदा, हम नित्य नमैं अति धारि मुदा। जिनदेव अबैं हम बीन-नरी, सुनिये भव भंजन रूप करी ॥ १२ ॥ हम कर्मन संग हो दुःख सहै, तुमतैं नहि और सहाय कहै। विनवैं तुमकौं निति नाथ अबै, महचन्द्र दुखो दुःख मेटि सबै ॥ १३ ॥

घत्ता छन्द।

यह जिन जयमाला विद्युन्माली,
उत्तरक्षेत्र ऐरावत है।
तिन रूप गिरिशं जिनगृह शीशं,
पूजो निति भवि भावत है ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं विद्युन्माली मेरु उत्तर दिशि ऐरावतक्षेत्र विजयारध जिनगृहाय महार्घम् ॥ १४ ॥

आर्या छन्द।

जो बांचै यह पाठ, मन वच तन शुद्ध होयकैं प्राणी।
सो पावैं सुख ठाठ, अनुक्रम पावैं सु शिव थानी॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री ऐरावतक्षेत्र विजयार्द्ध जिनगृह पूजा समाप्त।

अथ धातकीखण्डस्य द्वि मेरुविभागे दक्षिण दिशि वा उत्तर दिशि वा पुष्करार्ध द्वीपस्य द्विविभागे दक्षिण उत्तर दिशि इक्ष्वाकार चतुर्णां चतुर्जिनगृह पूजा।

छप्पय।

धातकी द्वीप दुमेरु बिचि दक्षिण, उत्तरमें फुनि पुष्करके माही। दोय मेरु अन्तरमें इक्ष्वाकार पहार, च्यारि निति राज सनोके॥ तिन परिगेह मनोग्य च्यारि निति हैं, जिन जिकै तिन गेह माही जिन राजजी। इकमें इक ठान आठ हैं, ते आय विराजो नाथ अब पूजनको अति चाट है॥

ॐ ह्रीं धातकीखण्डद्वीपस्य वा पुष्करार्ध द्वीपस्य द्विमेरु विभागे चतुरिक्ष्वाकारस्थ जिनगृह जिन समुदाय अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

चाल—लावणीमें।

जिजो भवि धातकी पुष्करमें, इक्ष्वाकार गेह
जिनके लखि मेरु सु अन्तरमें ॥ जिजो० ॥ टेक ॥

सुर सरिताको नीर लेयकैं, कञ्चन पातरमें।
जन्म जरा मृत नाशन कारण, धार तीन करमें ॥
जिजो भवि० ॥

ॐ ह्रीं धातकीखण्ड पुष्करमध्ये इक्ष्वाकार चतुःस्थित जिनगृह चतुर्भ्यो जलं ॥ १ ॥

चन्दन केशरि अर कपुर ले, गन्ध सुगन्ध रमें।
भव तप नाशन कारण लेकरि, जिनपद अग्र गमें ॥
जिजो भवि० ॥

ॐ ह्रीं धातकीखण्ड पुष्करमध्ये इक्ष्वाकार चतुःस्थित जिन० चतुर्भ्यो चन्दनम् ॥ २ ॥

शाली अखण्डित परिमल मंडित, कञ्चन थाल रमें।
अक्षय पदके कारण जिनपद, पुञ्ज करो धरमें ॥
जिजो भवि० ॥

ॐ ह्रीं धातकीखण्ड पुष्करमध्ये इक्ष्वाकार चतुःस्थित जिन० चतुर्भ्यो अक्षतम् ॥ ३ ॥

गन्ध सुगन्धित पुष्प लेयकैं, सद्य कुन्द करमें।
काम बाण नाशनके कारण, जिनपद भूत लसैं ॥
जिजो भवि० ॥

ॐ ह्रीं धातकी खण्ड पुष्करमध्ये इक्ष्वाकार चतुःस्थित जिन० चतुर्भ्यो पुष्पम् । ४ ॥

नाना रस नैवेद्य बनाओ, मोदक आदिकमें।
रोग क्षुधा मेटनकों जिनपद, आगैं थालनमें ॥
जिजो भवि० ॥

ॐ ह्रीं धातकीखण्ड पुष्करमध्ये इक्ष्वाकार चतुःस्थित जिन० चतुर्भ्यो नैवेद्यम ॥ ५ ॥

दीपक जोति जगाय, मनोहर जिनवरके घरमें।
मोह महातम नाशन होय जिम, पवन घनेघरमें ॥
जिजो भवि० ॥

ॐ ह्रीं धातकीखण्ड पुष्करमध्ये इक्ष्वाकार चतुःस्थित जिन० चतुर्भ्यो दीपम् ॥ ६ ॥

धूप सुगन्ध द्रव्य कर लीजे, अगर तगर तरमें।
अष्ट कर्मके नाशन कारण, खेवो जिन घरमें ॥
जिजो भवि० ॥

ॐ ह्रीं धातकीखण्ड पुष्करमध्ये इक्ष्वाकार चतुःस्थित जिन० चतुर्भ्यो धूपम् ॥ ७ ॥

श्रीफल आम नारिंग सुपारि, ले फल पातरमें।
मोक्ष महाफल चाखन कारण, धरो जिनंतरमें ॥
जिजो भवि० ॥

ॐ ह्रीं धातकीखण्ड पुष्करमध्ये इक्ष्वाकार चतुःस्थित जिन० चतुर्भ्यो फलम् ॥ ८ ॥

जल चन्दन तन्दुल प्रसून चरु, दीप धूप फलमैं।
अघ बनाय गाय गुन सुन्दर, नाचो पल पलमैं॥
जिजो भवि० ॥

ॐ ह्रीं धातकीखण्ड पुष्करामध्ये इक्ष्वाकार चतुःस्थित जिन० चतुर्भ्यों अर्घम् ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येकार्घाणि।

छन्द चौपाई।

धातकी खण्डे दीप लखी लीजे,
द्वै मेरु न बीचि निति कीजे।
दक्षिण दिशिमें इक्ष्वाकारे,
जिनगृह पूजो अष्ट प्रकारे॥

ॐ ह्रीं धातकीखण्ड द्वीपस्य दक्षिणदिशिद्विमेरुमध्ये इक्ष्वाकार पर्वतस्थित जिनगृहाय अर्घम् ॥ १ ॥

धातकी खण्ड सु उत्तर मांही, द्वै मेरुनके बिची रहा ही।
इक्ष्वाकार गिरी जिनधामा, तामें जिन पूजो शिवकामा॥

ॐ ह्रीं धातकीखण्ड द्वीपस्य उत्तरदिशि मेरुमध्ये इक्ष्वाकार पर्वतस्थित जिनगृहाय अर्घम् ॥ २ ॥

पुष्करार्द्धमें दक्षिण भागे, मेरु दोय बिचि अन्तर पागे।
इक्ष्वाकार सु पर्वत होई, तापरि गेह जिन सब कोई॥

ॐ ह्रीं पुष्करार्द्ध द्वीपस्य दक्षिणदिशि द्वीमेरु मध्येविभागे तृतीय इक्ष्वाकारस्थित जिनगृहाय अर्घम् ॥ ३ ॥

ताहिके उत्तरमें सोहै, चौथा इक्ष्वाकार जु हो है।
तापरि गेह मनोहर सारं, जिनवर पूजौं अष्ट प्रकारं॥

ॐ ह्रीं पुष्करार्द्ध द्वीपस्य उत्तरदिग्विद्वीमेरु द्विविभागेस्थित चतुर्थवक्षारस्थ जिन० अर्घं ॥ ४ ॥

धातकी खण्ड रु पुष्कर माही, च्यारि मेरु विचि च्यारि हो थाही। इक्ष्वाकारनपैं जिन गेहा, च्यारि जाजौं निति हो धरि नेहा॥

ॐ ह्रीं धातकीखण्डे वा पुष्करार्द्धे द्वि द्वि मेरु द्विविभागे चतुर्वक्षारस्थित जिनगृह समूदाय पूर्णार्घं॥ ५ ॥

च्यारिनमैं जिन बिम्ब जु जानौं, च्यारि शतक बत्तीस प्रमानौं। तिन सबकौं पूर्णार्घं सु लेकैं, मैं पूजौं अब निज हित वेकैं॥

ॐ ह्रीं चतुरिक्ष्वाकारेषु च्यारिसै बत्तीस सर्वजिन बिम्बेभ्यः पूर्णार्घम्॥ ६ ॥

अथ जयमाला।

सोरठा।

इक्ष्वाकार जिनेन्द्र गेह, च्यारि निति ही रहैं।
पूजत सूर सुरेन्द्र, पूजो भवि जयमाल जपि ॥ १ ॥

कामिनिमोहन छन्द।

जय परम देव जिनदेव सुर पति, नमन जय जगत जीव सबके हि तारन तरन। च्यारिगिरि इषु

अकारन उपरि थिति करन, जय महा बोध तुम सकल आनन्द भरन ॥ १ ॥ धातकी खण्ड मधि दोय गेह धरन बीची, दक्षिण उत्तर महि गिरि इषु करन। पुष्करार्द्ध मही दोय गिरि राज मन, तिन हो दक्षिण उत्तर दोय है इषु करन ॥ ३ ॥ तिनहि परि नाथ तुम गेह निति हैं परम, च्यारि गिरि गृहराजो हैं अचल जिम। व्यास आयाम अर उच्च ऐसैं अनम, परम उद्योत कारक तुम गेह इम ॥४॥ व्यास तुम गेह पचास जोजन धरन, होन आयाम पचास जोजन करन। साढसैं तीस ऊँचा महा सुख करन, यौं ही तुम गेह च्यारौ लसैं इषु करन ॥ ५ ॥

गेह मधि एक इक माही थान आठ तुम, नित्य प्रति अमल गुणगण तुमैं शरण हम। पंच शत धनुष तुम देह उत्तंग निति, रत्नमय बिंब तुम होन हैं नित्य प्रति ॥ ६ ॥ जगतपति नाथ भव पाथ तारन तरन, सकल संसार दुख टार भव उद्धरन। मोहि निति देहु तुम पाद सेवा करन, नाथ इस भव हमैं और नहि किम अरन ॥ ७ ॥ कीजिये एक दश रूप आगारको, प्रथम दर्शन करो तुम ही आधारको। दूसरि नाथ प्रतिमा तुमैं वृत्त कही, पंच अणु तीन गुण च्यारि शिक्षा लही ॥ ८ ॥ होन तीजी सु प्रतिमा ही सामायिकं, दोय घटिका प्रमित काल सुखदायकं।

प्रोषधं होत प्रतिमा चतुर्थी परम, च्यारि प्रोषध सु उनचास इक मास रम ॥ ९ ॥ च्यारि यामन्त पायाम अठ होत है, प्रोषधं धारणं श्रावकोयोत है। होत प्रतिमा महासार पंचम सदा, करहि सचित्तको त्याग श्रावक मुदा ॥ १० ॥

रात्रिभोजन चतुर्भेद त्यागन करत, अन्न अर पान फुनि खाद्य स्वाद्यं धरत। अन्न अष्टादशाहि भेद शाल्यादिवर, और उपधान लखाकैं सबैं त्याग कर ॥ ११ ॥ पान जल दुध आदिक नहीं खाय पर, खाद्य अन्न बिना और सब पचित्र घर। स्वाद्य पुगी फला दिन सब ही त्यजन, च्यारि विधि भोजनं रात्रि नहीं भोजनन ॥ १२ ॥ ब्रह्मचय सदा सातवीं हैं प्रतिम, होत आरम्भका त्याग प्रतिमा अठम। नवम प्रतिमा परिग्रह सु त्यागन करन, पाप अनुमोदना त्याग दशमो धरन ॥ १३ ॥ ग्यारमो होत उद्दिष्ट भोजन त्यजन, एही एकादशं प्रतिमकों निति भजन। नाथ हमरैं यही ये ही होऊ धरन, करि कृपानाथ हमरै सु एही करन ॥ १४ ॥ तुम ही हम भव भवहि सेव मिलियो सदा। मोक्ष जब लौं न पावैं हमें करि मुदा। करत यह अरज निति विबुध महचन्द्र हैं, जिन तुमैं सेव महि मोहि मन सांद्र है ॥ १५ ॥

घत्ता

जय जय जिन चन्दा जगत अनंदा, भव भय इंदा सुख कंदा। इस्तु कारन माही नित्य रहा ही, सब सुख दाही शिवराई ॥

ॐ ह्रीं धातकीखंडे वा पुष्करार्द्धे चतुरिक्ष्वाकारस्थित चतुर्जिनगृहेभ्यो महार्घ्यम् ॥ १६ ॥

अडिल्ल छन्द।

इक्ष्वाकारनमें जिनगेह सु च्यारि हैं,
तिनकी पूजा एह सकल सुखकार हैं।
जो नर नितिप्रति पूजा बाँचै भावतैं,
ताको शिवतिय बाँछै परम उछाहतैं ॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री इक्ष्वाकारस्थित जिनगृह पूजा समाप्त।

अथ मानुषोत्तर पर्वत चतुर्दिशिस्थित चतुर्जिनगृह पूजा।

कवित्त।

द्वीप अढाइनकी मर्याद धरै, गिरिमानुष उत्तरराई। ताकी चतुर्दिश च्यारी जिनालय, नित्य विराजत है सुखदाई ॥ मांही सु गेहनके जिनदेव, अनोपम रूप लसैं अधिकाई। ते जिन आय विराजहु अत्र सु, पूजनकौं हम पुष्प चढ़ाई ॥

ॐ ह्रीं मानुषोत्तर पर्वतस्थित चतुर्दिशि चतुर्जिन जिनगृह समूह अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिस्थापनं।

त्रिभंगी छन्द।

गंगादिक नीरं गन्ध गहीरं, निर्मल सीरं भरि झारी। जनमादि निवारं सब दुख टारं, धार तीन जिन पदकारी॥ गिरि मानुष उत्तर च्यारि गेह धर, तिनके जिनवर अरज सुनौं। मैं कर्म सतायो बहु दुख पायो, तुमपैं आयो मेटि गुनौं॥

ॐ ह्रीं मानुषोत्तर पर्वते चतुर्दिशिस्थित चतुर्जिनगृह समूहाय जलम्॥ १॥

भवताप निकन्दन सीतल चन्दन, केसरी गन्धन सार घसौं। भवताप मिटाओ तुम सुख थाओ, भव दुख तजि शिवमाहि बसौं॥ गिरि०॥

ॐ ह्रीं मानुषोत्तर पर्वते चतुर्दिशिस्थित चतुर्जिनगृह समूहाय चन्दनम्॥ २॥

शुभ शालि अखण्डित परिमल मण्डित उज्ज्वल दण्डित लेय धरौं। अक्षय पद कारन भव पद टारन, तुम पद पैंयण पूंज करौं॥ गिरि०॥

ॐ ह्रीं मानुषोत्तर पर्वते चतुर्दिशिस्थित चतु० समूहाय अक्षतम्॥ ३॥

अलि गुंजन आवै परिमल पावै, चउदिशि उमावै गन्ध महा। शुभ पुष्प मनोहर ऐसे लेकर मन्मथ सरहर देखि यहां। गिरि० ॥

ॐ ह्रीं मानुषोत्तर पर्वते चतुर्दिशिस्थित चतु० समूहाय पुष्पं ॥ ४ ॥

नानारस शोधक ले शुभ मोदक, खाजा ताजा फेणि धरौं। नैवेद्य चढ़ाऊँ तुम जस गाऊँ, रोग मिटावौं क्षुधा तरौं ॥ गिरिमानुष उत्तर० ॥

ॐ ह्रीं मानुषोत्तर पर्वते चतुर्दिशिस्थित चतुर्जिनगृह समूहाय नैवेद्यम् ॥ ५ ॥

शुभ दीपक जोवौं भ्रम तम खोवौं, निज पद होवौं दीप धरौ। घृतमय करपूरं ले अति भूरं, तुम पद दूरं जोति करौं ॥ गिरिमानुष उत्तर० ॥

ॐ ह्रीं मानुषोत्तर पर्वते चतुर्दिशिस्थित चतुर्जिनगृह समूहाय दीपम् ॥ ६ ॥

कृष्ना गुरु धूप गंधित रूपं, द्रव्य अनूपं लेय करौं। तुम पदप खेवौं कर्म नशेवौं, निज हित वेवौं पात्र धरौं ॥ गिरिमानुष उत्तर० ॥

ॐ ह्रीं मानुषोत्तर पर्वते चतुर्दिशिस्थित चतुर्जिनगृह समूहाय धूपम् ॥ ७ ॥

फल आम नारिंगी, खारिक चंगी, दाडिम रंगी

लेय धरौं। कंचनमय पात्र धरि फल अत्रे, मोक्ष महा फल चाहि करौं ॥ गिरिमानुष० ॥

ॐ ह्रीं मानुषोत्तर पर्वते चतुर्दिशिस्थित चतु० समुदाय फलं ॥ ८ ॥

जल चन्दन साली पुष्प रसाली, चरु सुख थालि दीपकसैं। ले धूप फलांतं अर्घमहंतं, तुम पद थापौं निकसैं ॥ गिरिमानुष० ॥

ॐ ह्रीं मानुषोत्तर पर्वते चतुर्दिशिस्थित चतु० समुदाय अर्घं ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येक अर्घ।

नाराच छन्द।

पूरब दिशि राजा तहीं मानुष गिरि काज ही।
जिनेन्द्र गेह साज ही अनोप रूप भाज हो ॥
सु गेह एक माही आठसो जिनेन्द्र पूजिये।
बनाय अर्घ उत्तमन फेरी जन्म हूजिये ॥

ॐ ह्रीं मानुषोत्तर पर्वते पूर्वदिशिस्थित जिनगृहाय अर्घम् ॥१॥

जिनेन्द्र सद्म तासके सु दक्षिण विराज ही।
गिरि अढाई द्वीप अन्त मानुषोत्तराज ही ॥
सु गेहमें जिनेन्द्रदेव दक्षिणे सदा रहै।
जिजौं बनाय अर्घ नित्य नाथते दुखं दहै ॥

ॐ ह्रीं मानुषोत्तर पर्वते दक्षिणदिशिस्थित जिनगृहाय अर्घं ॥२॥

गिरिजु मानुषोत्तरे हि पश्चिमे मनाइये।
जिनेन्द्र गेह नित्य नेह कार सार ध्याइये॥
जिनेन्द्र देव दुःख हेव सर्व वेव नासमैं।
जिजो बनाय अर्घ राय पाय ध्याय जासमैं॥
ॐ ह्रीं मानुषोत्तर पर्वते पश्चिमदिशिस्थित जिन० अर्घं॥ ३॥
मनुष्यकौं हि उत्तर सु देहि मानुषोत्तरं।
सु गेह तासके जिनेन्द्रको लसैं हि उत्तरं॥
मनोज्ञ मोक्ष नारी जोग्य नाथ तास माहि जु।
बनाय अर्घ पूजिये सु जन्म होय नाहि जु॥
ॐ ह्रीं मानुषोत्तर पर्वते उत्तरदिशिस्थित जिन० अर्घं॥ ४॥
चतुर्दिशोह च्यारि गेह मानुषोत्तरेहमैं।
लसैं सदा दिजौं सुरा बनाय अघते हमैं॥
सु पूर्व और दक्षिणे सु पश्चिमे सु उत्तरे।
सदा विराजमान खानि अद्रिपैं मनोहरे॥
ॐ ह्रीं मानुषोत्तर पर्वत चतुर्दिशिस्थित चतुर्जिनगृह समुदाय पूर्णार्घम्॥ ५॥
जिनेन्द्र बिम्ब च्यारिसैं बत्तीस सर्व राज ही।
सु एक एक माहि एकसो हि आठ राज ही॥
बनाय पूर्ण अर्घ सार सर्व सौख्यकार ही।
जिजौं जिनेन्द्रदेव मोहि वेगि तार तार ही॥
ॐ ह्रीं मानुषोत्तर पर्वते च्यारिसैं बतीस सर्वजिनबिंबेभ्यः पूर्णार्घम्॥ ६॥

अथ जयमाला।

पद्धड़ी छन्द।

गिरि मानुष उत्तरपै सु जानि,
जिनगेह च्यारि निति मानि मानि।
तिनकी जपि हौं जयमाल अबैं,
भवि जीव सुनौं धरि कान सबैं॥

त्रोटक छन्द

जय मोक्ष रमापति सार जिनं, गिरि मानुष उपरि रैं न दिनं। गिरि मानुष उत्तर सुचि गिनं, लख हैं पण चालिश निश्च सुनं॥ २॥ गिरि उन्नत जोजन सप्त दसं, सतराह तथा इकवीस लसं। उपरैं तह च्यास चतुःशत हैं, चउवीस और अधिकं निति हैं॥ ३॥ पृथिवि तलमैं इक संत सही, फुनि जोजन बावीस और कही। धरति मधि च्यारि शतं सुनि है, अधिक सु सवालखि तोमन है॥ ४॥ यह पर्वत सोवन वर्ण सदा, नरकी गमनादिक हद रहा। नहि जात अढ़ाइय द्वीपनको, उपज्यो इनकै उपरै हनको॥ ५॥

उपजे नहि मानुष याहि परैं, मनुषोत्तर नाम यथार्थ धरैं। यह पवन भूमि अढाई नमें, नर लोक हिमाद्रि गिन्या तिनमें॥ ६॥ इस माही सु कर्म धरा जु कही, इसतैं पर राजत भोग मही। यह पर्वत माही न लोक लगे, इक सार ऊंचाइय व्यास पगे॥ ७॥

यह बाहिर भागहि अन्तर हैं, पुथि विवरा फैलन रूप रहैं उपरै मकतो इम नित्य लसैं, नदिके निकसावन द्वार बसैं ॥ ८ ॥ चउदै सु द्वार करि संजुत है, जिन मन्दिर च्यारि दिशा नित है। गिरि उपरि कूटाहि राजत है, तिनथैं जिनगेह बिराजत हैं ॥ ९ ॥ गृह व्यास अयाम सु उर्द्धपनौं, हम हांत सदा हिरदै सु गुनौं। नित व्यास पचासहि जोजन है, सु अयाम पचासहि सोधन है ॥ १० ॥

तिन उर्द्धपनौं इतनौं लखियो, अबसैं तिम जो जिसको अखियो। इन गेहनमैं जिनराज तुमैं, नित हो सु विराजत दुःख गमैं ॥ ११ ॥ तुम देह उत्तंग धनुः पण है, सनरूपहि देखत दुःखन है। इक गेह माही इकसो अठ हो, तुम पूजत पाप सबैं नठ हो ॥ १२ ॥ हमरी अरजो अब नाथ यही, दुख दपह मेटि सुख द्यो सब ही। हमकौं भव काननमें दुख हैं, तुमरे पद्माही सदा सुख हैं ॥ १३ ॥ तुम हि भव-बाध मिटायक हो, तुम ही जगमें सुखदायक हो। तुमरे बिन कौन सुनैं हमरी, सुनिये सरणागत है तुमरी ॥ १४ ॥ यह विघ्न अरिगन खंड करो, चित चिंतित काज सबैं ही सरो ॥ नित ही अरजी इतनो जु करै, मह चन्द्र बुधो तुम पाद तरै ॥ १५ ॥

दोहा।

मानुषोत्तरे च्यारि दिश, चउ गृहमैं जिनदेव।
निति राजत हैं तिन जिजौं, करि मन लन सुघ एव ॥

ॐ ह्रीं मानुषोत्तर पर्वते च्यारिसैंबत्तीस सर्वजिनबिंबेभ्यः महार्घ।

रूप चोपाई।

जो नर मानुष उत्तर गेहा,
च्यारि जिजैं निति मन धरिनेहा।
सो स्वर्गादिकके सुख भोगी,
अनुक्रमतैं शिव कामनि योगी ॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री मानुषोत्तर पर्वतस्थित चतुर्जिनगृह पूजा समाप्ता।

अथ अष्टमद्वीप नन्दीश्वरस्थित जिनगृह पूजा तथा आदौ पूर्वदिशि स्थित त्रयोदश जिनगृह पूजा।

शंकर छन्द।

शुभ द्वीप अष्टम नाम नन्दिश्वर महान विचारि,
तिस पूर्व दिशिमें गेह जिनवर संख्य तेरह मानि।
एक अञ्जनगिरि सु दधिमुख च्यारि रतिकर आठ,
तिन गेहके जिन आप तिष्ठो पूजि हौं करि ठाठ ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पूर्वदिशि एकांजनगिरि च्यारि दधि-

मुख आठ रतिकर त्रयोदश पर्वतस्थ जिनगृह जिन समूहाय अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

चाल नन्दीश्वर पूजाकी।

गंगादिक निर्मल नीर कञ्चन भृंग भरो, जन्मादि निवारण तीर, जिनपद धार करो। नन्दीश्वर पूरब-माही अञ्जनगिरि एकं, दधिमुख चउ रतिकर थाही अठ गृह जजि नेकं॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पूर्वदिशि एकांजनगिरि च्यारि दधिमुख आठ रतिकर पर्वतस्थित त्रयोदश जिनगृह समूहाय जलम्॥ १॥

केशरि कर्पूर मिलाय, चन्दन अति सीरो।
घसि गन्ध सुगन्ध कराय, जिनपदके नीरो।
नन्दीश्वर पूरबमाही० ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पूर्वदिशि एकांजनगिरि च्यारि दधिमुख आठ रतिकर पर्वतस्थित त्रयोदश जिनगृह समूहाय चन्दनम्॥ २॥

शुभ तन्दुल उज्ज्वल लेय, खण्ड नहीं लहिये।
करि पुञ्ज त्रयोदश भेय, जिनपदपैं चहिये॥
नन्दीश्वर पूरबमाही०॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पूरबदिशि एकांजनगिरि च्यारि दधिमुख आठ रतिकर पर्वत स्थित त्रयोदश जिन० समूहाय अक्षतम्॥ ३॥

शुभ केतकी और गुलाब, पुष्प सुगन्ध भरे।
सर मन्थन नाशन लाभ, जिनपद अग्र धरे॥
नन्दीश्वर पूरबमाही० ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पूरबदिशि एकांजन गिरि च्यारि दधिमुख आठ रतिकर पर्वत स्थित त्रयोदश जिन० समुदाय पुष्पं ॥ ४ ॥

नाना रसके सु बनाय, मोदक मोद भरे।
कनक थाल सु माहि धराय, नेवज सार करे॥
नन्दीश्वर पूरबमाही० ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पूरबदिशि एकांजन गिरि च्यारि दधिमुख आठ रतिकर पर्वत स्थित त्रयोदश जिनगृह समुदाय नैवेद्यम् ॥ ५ ॥

दीपक जगमग कर जोति, घृतमय जोय धरो।
तम मोहन नाश जु होत, जिन आगे दीप करो॥
नन्दीश्वर पूरबमाही० ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पूरबदिशि एकांजन गिरि च्यारि दधिमुख आठ रतिकर पर्वत स्थित त्रयोदश जिनगृह समुदाय दीपम् ॥ ६ ॥

श्रीखण्ड कपूर सुगन्ध, धूप बनाय सदा।
जिनपद तर खेय अमन्द, कर्मसु होत विदा॥
नन्दीश्वर पूरबमाही० ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पूरबदिशि एकांजन गिरि च्यारि

दधिमुख आठ रतिकर पर्वत स्थित त्रयोदश जिनगृह समूहाय धूपम् ॥ ७ ॥

फल दाड़िम आम नारिंग, नींबू थाल भरो।
जिनपाद चढ़ाय अभंग, शिव फल चाख करो॥
नन्दीश्वर पूरबमाहिं० ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पूरबदिशि एकांजन गिरि च्यारि दधिमुख आठ रतिकर पर्वत स्थित त्रयोदश जिन० समूहाय फलम् ॥ ८ ॥

जल चन्दन तन्दुल सार, पुष्प निवेद करो।
फुनि दीप सु धूप फलार, अर्घ सु थाल भरो॥
नन्दीश्वर पूरबमाहिं० ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पूरबदिशि एकांजन गिरि च्यारि दधिमुख आठ रतिकर पर्वत स्थित त्रयोदश जिनगृह समूहाय अर्घं ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येक अर्घं।

लोलतरंग छन्द।

अञ्जन पर्वत एक विराजे, तापरि एक जिनालय छाजै। तामधि सो अठ बिम्ब विराजै, पूजिय नित्य सर्वं अघ भाजैं॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे एक अञ्जनगिरिस्थित पूर्वदिश एक जिनगृहाय अर्घम् ॥ १ ॥

बावडी बीची दधिमुख सोहै, पूरब माही सबै मन मोहै। तापरि गेह लसैं जिन केरो, पूजहु नित्य तहां जिन हेरो ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पूर्वदिशिचपारि बावड़ी तिनमैं एक पूरब बावड़ी मध्ये एकदधिमुख पर्वतस्थित जिनगृहाय अर्घम् ॥२॥

दक्षिण माहि सु बापिय माही, नित्य दधिमुख दूजो थाही। तापरि पद्म जिनेन्द्र बिराजैं, पूजत ही शिवराज समाजै ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पूर्वदिशिचपारि बापिनमध्ये दूजी बावड़ी दक्षिणे तामैं द्वितीय दधिमुखस्थित जिन० अर्घम् ॥३॥

पश्चिममैं दधि आस्य लसै है, बावडि तीजिय मध्य बसै है। गेह जिनेन्द्र मनोहर तापैं, पूजत पापहि भाजत आपैं ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पूर्वदिशिचपारि बापीनमध्ये तृतीय बापी पश्चिमे तामैं तृतीय दधिमुखस्थित जिन० अर्घं ॥ ४ ॥

उत्तरमाही सु बावडिमध्ये, पर्वत चौथ दधिमुख लद्धे। तापरि गेह जिनेन्द्र सदाहि, राजत पूजत हो शिव जाही ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पूर्वदिशिचपारि बावडी तिनमैं उत्तरभागे चोथी बावडी तामैं चतुर्थमदधिमुखस्थित जिनगृहाय अर्घं ॥ ५ ॥

बावडीकौंण रतीकर राजै, बाहिर हैं नही माही

समाजै। तामधि पूरब बावडीकौंणे, आदि रतीकर गेह जिजोणे॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पूरबदिशिच्यारि बावडी तिनमैं प्रथम बावडीके ईशानकौंणस्थित प्रथम रतिकर पर्वतस्थित जिन० अर्घम्॥ ६॥

पूरब बावडी अग्नि सु कौंणे, पर्वत होत रतीकर दूणे। तापरि गेह जिनेन्द्र विराजैं, पूजत भव्य सबैं अघ भाजै॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पूर्वदिशिच्यार बावडी तिनमैं प्रथम बावडी अग्निकौंणस्थित द्वितीय रतिकर पर्वतस्थित जिनगृहाय अर्घम्॥ ७॥

कौंण द्वितीय सु बावडी केरी, पर्वत नित्य रतीकर हेरी। गेह जिनेन्द्र विराजत नित्यं, पूजत ही निति है कृतकृत्यं॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पूरबदिशिच्यारि बावडीनमैं द्वितीय बावडीके अग्निकौंणस्थित तृतीय रतिकर जिन० अर्घं॥ ८॥

नैऋतकौंण रतीकर जानौं, चोथही बावडी दूजिय मानौं। तापरि गेह विराजत नीको, नित्य जिजो भवि जिनजीको॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पूरबदिशि द्वितीय बावडी नैऋत-कौंणस्थित चतुर्थ रतिकर जिन० अर्घम्॥ ९॥

दूजिय बावडी नैऋतमाही, पंचम होत रतिकर

ताही। गेह जिनेन्द्र मनोहर हो है, पूजत ही शिवको मन मोहै ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पूरवदिशि पश्चिम तृतीय बावडी नैऋतकौंणस्थित पञ्चम रतिकर जिन० अर्घम् ॥ १० ॥

बावडी तीजिय वायव माही, षष्टम होत रती-कर ताही। तापरि गेह जिनेन्द्र मनोग्यं, पूजहू भव्य सदा शिव जोग्यं ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पूरवदिशि पश्चिम बावडीके वायव-कौंणस्थित षष्टम रतिकर जिन० अर्घं ॥ ११ ॥

वायवकौंण चतुर्थम वापी, पर्वत होत रतिकर थापी। गेह जिनेन्द्र जिनेन्द्र बिराजै, पूजत ही भविके अघ भाजैं ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पूरवदिशि उत्तरावापी वायव्कौंणे सप्तम रतिकरस्थित जिन० अर्घम् ॥ १२ ॥

बावडी चौथियकौंण इसाने, अष्टम होत रतिकर माने। तापरि सद्म जिनेन्द्र मनावो, पूजत ही शिव-मारग जावो ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पूरवदिशिच्यारि वापीनमध्ये चतुर्थम वापी उत्तरदिशि ताकी ईशानकौंणे अष्टम रतिकरस्थित जिन० अर्घम् ॥ १३ ॥

अष्टम द्वीप नन्दीश्वर जानौं, ताहि सु पूरब माही प्रमानौं। तेरह पर्वतपैं जिनगेहा, पूरण अर्घ बनाय जिजेहा ॥

ॐ ह्रीं अष्टम नन्दीश्वरद्वीपे पूरवदिशि एक अञ्जनगिरि-च्यारि दधिमुख आठ रतिकर ऐसैं तेरह पर्वतस्थित त्रयोदश जिनगृह समूहाय पूर्णार्घं ॥ १४ ॥

तेरह गेहनमें जिनदेवा, च्यारि वृद्धि चौदह सत एवा। पूरण अर्घ बनाय मनोग्यं, पूजिहूं भव्य सदाशिव जोग्यं ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पूरवदिशि तेरह जिनगृहनमध्ये चौदहसै च्यारि सर्वजिनबिंबेभ्यः पूर्णार्घम् ॥ १५ ॥

अथ जयमाला।

अडिल्ल छन्द।

नन्दीश्वर है द्वीप सु अष्टम जानिये,
ताकि पूरबमें जिनगेह बखानिये।
अंजन दधि मुख पर्वत रतिकरपैं तथा,
अब तिनकी जयमाल सुगावत हौं जिथा ॥१॥

लक्ष्मीधरा छन्द।

देव देवाधि देवं जिनेन्द्रं जये, अष्टम द्वीप नन्दीश्वरो संठये। पूरबमें गेह राजैं सदा तेर है, नाथ बिंबं सदा साष्टसो नित्य है ॥ २ ॥ अंजनं पर्वतं एक है बीचिमें, तासके च्यारि हैं बावड़ी दिगमें। तास बापीनके बीच हैं दधिमुखं, च्यारिमें च्यारि देखैं महा है सुखं ॥ ३ ॥ बावड़ी बाह्यके कौण दो दो मही, दोय दो होत है रतिकरं नाग ही। सर्व ही च्यारि

बापीनके आठ हैं, यौं ही अद्रिनकौं देखिये ठाट है ॥ ४ ॥ गेह एकेक एकेकपैं राजही, तेर अद्रिनके तेर ही छाज ही। अंजनं विचिमैं कज्जलं वर्ण हैं, दधिमुखं वर्ण दधितुल्य स्वेतं वहै ॥ ५ ॥

पर्वतं रतिकरं सोन वर्णं सदा, यौं ही अद्रिनके देखि पापं चिदा। अंजन पर्वतं उच्चता जानिये, सैंस चोरासी जोजनकी मानिये ॥ ६ ॥

पद्धडी छन्द।

जय जिन तुम दधिमुख उच्च होय, दस सहस सु जोजन मानि जोय। रतिकर इक इककी तुंग ताहि, इक सहस सुजोजन नित्य थाहि ॥ ७ ॥ यह पर्वत तेरह सर्व होय, सब ढोल अकार हि नित्य जोय। जितनी जितनी ऊँचाई होय, तितनी तितनी चौड़ाई जोय ॥ ८ ॥ चउ बापी नन्दा नाम आदि, नन्दावती नन्दोत्तर समादि। फुनि नन्दिषेण चौथी लसन्त, यह बापी च्यारि सदा महन्त ॥ ९ ॥ लम्बी चौडी इक सार होत, चउ कौंणन करि राजत उद्योत। चौडी लख जोजन एक होत, लख जोजन लम्बी सार स्रोत ॥ १० ॥

ऊँचाई जोजन सहस एक, रत्नमय तट जडिये सवेक। तुम गेह गिरिन परि है जिनेश, आयाम शतं जोजन कहेश ॥ ११ ॥ ऊँचाई पचहत्तरि जोजनहि, चौडाई पचास सदा गिनहि। इन गेहनमें तुम

जिन लसन्त, इकमें इक सो अब निस्थ सन्त ॥ १२ ॥ तनु तुंग धनुष पण सत लसन्त, रत्नमय बिंब सदा बसन्त। जय जय जय जिन करुणा निधान, सर्व जीवदयामें हो प्रधान ॥ १३ ॥ अब करो दया हमपैं जिनेश, हमरो अब काटो पाप लेश। हमकौं यह भवको भय सु नाथ, तुम मेटि गहो हमरोहि हाथ ॥ १४ ॥ नहि चाहि हमैं इन्द्रादि थान, तुम भक्ति लीन हमकौं सु ठान। यौं करै विनति बार बार, बुद्ध महाचन्द्र भव तार तार ॥ १५ ॥

घत्ता

जय अष्टम द्वीपै पूर्व दिशिपैं, तेरह गिरिपैं जिनगेहा।
इंद्रादिक सेवित निजपर वेदित, तारि भवार्णव धरिनेहा॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वर द्वीपे पूरब दिशि एकांजन गिरि च्यारि दधिमुख आठ रतिकर पर्वत स्थित त्रयोदश जिनगृह समुदाय महार्घम् ॥ १६ ॥

पाईता छन्द।

नन्दीश्वर पूरब गेहा, जो पूजै निति धरि नेहा।
सो पावै स्वर्ग गृहेहा, अनुक्रम शिव तिय वर पेहा॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री नन्दीश्वर द्वीपे पूर्व दिशि त्रयोदश पर्वत स्थित जिनगृह पूजा समाप्ता।

अथ नन्दीश्वर द्वीपे दक्षिण दिशि स्थित त्रयोदश जिनगृह पूजा।

मत्तगयंद छन्द।

अष्टम द्वीप सु दक्षिण माही, सु पर्वत तेरह नित्य विराजै। अंजन एक दधिमुख च्यारि, रतिकर आठ मनोहर राजै॥ गेह जिनेन्द्र ही तेरह ऊपरि, राजत है कीने नही काजै। माही जिनेन्द्र विराजत ते अठ, आय विराजहु पूजन काजै॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वर द्वीपे दक्षिण दिशि एकांजनगिरि च्यारि दधिमुख आठ रतिकर पर्वतस्थित त्रयोदश जिनगृह जिनसमूहाय अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिस्थापनं।

जोगीरासो आचली बन्ध।

॥ जिनवर पूजो रे भाई॥

सुर सरिताको सीतल जल ले, कंचन कुम्भ भराई।
जन्म जरा मृत नाशन कारण, धारा तीन दराई॥
जिनवर पूजो रे भाई॥
अष्टम द्वीप नन्दीश्वर दक्षिण, तेरह पर्वत थाई।
तिनपैं तेरह जिनगृह जिनपद, पूजत है सुर राई॥
जिनवर पूजो रे भाई॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे दक्षिणदिशि एकांजनगिरि च्यारि

दधिमुख आठ रतिकर त्रयोदश पर्वत स्थित जिनगृह समूदाय जलं ॥ १ ॥

चन्दन गन्धन घसि करी लीनौं, कुँकुम मेल कराई।
भव तप नाशन कारण पूजौं, श्री जिनवरके पाई॥
जिनवर पूजोरे भाई॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे दक्षिणदिशि एकांजनगिरि च्यारि दधिमुख आठ रतिकर त्रयोदश पर्वत स्थित जिन० समूदाय चन्दनम् ॥ २ ॥

शालि अखंडित परिमल मंडित, उज्वल धोय धराई।
अक्षय पदके कारण जिन पद, अंग पूज करवाई॥
जिनवर पूजोरे भाई॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे दक्षिणदिशि एकांजनगिरि च्यारि दधिमुख आठ रतिकर त्रयोदश पर्वत स्थित जिन० समूदाय अक्षतम् ॥ ३ ॥

केतकी कुन्द गुलाब सुगन्धित, पुष्प अनोपम लाई।
कामबाणके नाशन कारण, जिन पद पद्म चढ़ाई॥
जिनवर पूजोरे भाई॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे दक्षिणदिशि एकांजनगिरि च्यारि दधिमुख आठ रतिकर त्रयोदश पर्वत स्थित जिन० समूदाय पुष्पम् ॥ ४ ॥

नाना रस पकवान अनोपम, मोदक मोदन लाई।
रोग क्षुधा नाशनकौं जिन पद, पूजौं प्रीति लगाई॥
जिनवर पूजोरे भाई॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे दक्षिणदिशि एकांजनगिरि च्यारि दधिमुख आठ रतिकर त्रयोदश पर्वत स्थित जिन० समुदाय नैवेद्यम् ॥ ५ ॥

दीपक घृतमय वा कपूरमय, निर्मल जोति जगाई।
मोह महातम नाशन कारण, जिनपद जोति कराई॥
जिनवर पूजोरे भाई॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे दक्षिणदिशि एकांजनगिरि च्यारि दधिमुख आठ रतिकर त्रयोदश पर्वत स्थित जिन० समुदाय दीपम् ॥ ६ ॥

अगर आदि सुगन्धित बहु द्रव्य, सुन्दर धूप बनाई।
अष्टकर्म निर्नाशन कारण, खेवो जिनपद आई॥
जिनवर पूजोरे भाई॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे दक्षिणदिशि एकांजनगिरि च्यारि दधिमुख आठ रतिकर त्रयोदश पर्वत स्थित जिनगृह समुदाय धूपम् ॥ ७ ॥

श्रीफल आम नरिंग सु दाडिम, निंबू सुद्ध मगाई।
मोक्ष महाफल कारण फलतैं, जिनपद पूज रचाई॥
जिनवर पूजोरे भाई॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे दक्षिणदिशि एकांजनगिरि च्यारि दधिमुख आठ रतिकर त्रयोदश पर्वत स्थित जिन० समुदाय फलं ॥ ८ ॥

जल फल आठौं द्रव्य लेय करि, कंचन थाल भराई।

अर्घ चढ़ाओ जिनपद आगैं, जो अनघ पद चाई॥
जिनवर पद पूजोरे भाई॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे दक्षिणदिशि एकांजनगिरि च्यारि दधिमुख आठ रतिकर त्रयोदश पर्वत स्थित जिन० समूहाय अर्घम् ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येकार्घाणि ।

मोतीदाम छन्द ।

सु अष्टम द्वीप हो दक्षिण माही, सु अञ्जन पर्वत बीचि सुहाई। जिनेन्द्र सु गेह विराजित तास, जिजौं निति पूरिय ज्यौं मम आस ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे दक्षिणदिशि अञ्जनगिरिस्थित जिनगृहाय अर्घम् ॥ १ ॥

सु पूरब अञ्जनतैं निति होय, सु बावडी बीचि दधिमुख जोय। तहां जिन गेह निरंतर जानि, जिजो जिम होय महा अघ हानि ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे दक्षिणदिशि पूर्वदिशि वापीमध्ये दधिमुखपर्वतस्थित जिनगृहाय अर्घं ॥ २ ॥

दधिमुख दक्षिण बावड़ी माहि, द्वितीय जजंत सबै अघ जाहि। सुगेह दधिमुख ऊपरि होय, जिजो छवि नित्य सबैं सुख जोय ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे दक्षिणदिशि द्वितीय वापीमध्येस्थित द्वितीय दधिमुख जिनगृहाय अर्घम् ॥ ३ ॥

सु पश्चिम माही सु बावड़ी जानी, तृतीय दधि-मुख ता बिचि मानि। तिसैं परिगेह जिनेन्द्र विचारि, जिजौं भवि ज्यौं भव लीजिये पारि ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पश्चिमदिशि तृतीयबावडी मध्ये दधिमुख जिन० अर्घं ॥ ४ ॥

दधिमुख उत्तर बावड़ी मध्य, महासुख खानि तहा निति लब्ध। जिनगृह तापरि जानि महन्त, जिजौं भवि ज्यौं भव कीजिये अंत ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे दक्षिणदिशि उत्तरबावडी मध्ये दधिमुखस्थित जिनगृहाय अर्घम् ॥ ५ ॥

रतिकर पर्वत बापिय कौंण, ईसान मही प्रथमो गुण दूण। तहां जिनगेह विराजत नित्य, जिजौं भवि पूजत हो कृतकृत्य ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे दक्षिणदिशि वापीकौंणस्थित रतिकर जिनगृहाय अर्घं ॥ ६ ॥

द्वितीय रतिकर अग्नि सु कौंग, सु पूरब बापीयकैं निति सौंण। लसै जिनगेह तहा परिसार, जिजौं भवि ज्यौं भवसागर पार ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे दक्षिणदिशि पूर्ववापी अग्निकौंगस्थित द्वितीय रतिकर जिनगृहाय अर्घम् ॥ ७ ॥

तृतीय रतिकर बापो द्वितीय, सु अग्निय कौंण

विराजत होय। तथा जिनगेह सु ऊपरि राज, सु माहि जिनेन्द्र जिजौं महाराज ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे दक्षिणदिशि तीय वापीकी अग्नि-कौंणस्थित तृतीय रतिकर जिन० अर्घं ॥ ८ ॥

चतुर्थम नैऋतकौंण बखान, द्वितीय सु वापि रतिकर जान। महा सुखकारक हैं जिन गेह, जिजौं भवि नित्य धरो अति नेह ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे दक्षिणदिशि द्वितीय वापी नैऋत कौंणस्थित चतुर्थम रतिकर जिन० अर्घं ॥ ९ ॥

तृतीय सु वापीय कौंण अग्नेय, सु नैऋत माही रतिकर लेय। मनोहर सद्म विचारि विचारि, जोजो भवि नित्य हुवो भवपारि ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे दक्षिणदिशि तृतीय वापी नैऋत कौंणस्थित पञ्चमदधिमुख जिनगृहाय अर्घं ॥ १० ॥

सु वायव कौंण सही नीति पेखि, तृतीय सु वापियके निति देखि। मनोहर गेह तहां निति जानि, रतिकर संस्थित मानि ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे दक्षिणदिशि तृतीय वापी नैऋत कौंणस्थित षष्टमरतिकर जिन० अर्घम् ॥ ११ ॥

चतुर्थम वापीय वायव कौंण, रतिकर सप्तम है गुण दौण। तहां जिनगेह विराजित होय, जिजौं भवि नित्य जिनेशं हि जोय ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे दक्षिणदिशि चतुर्थमवापि वायव कौंण स्थित सप्तम रतिकर जिन० अर्घम् ॥ १२ ॥

चतुर्थम वापिय कौंण ईसान, रतिकर अष्टम हैं सु महान। तथा जिनगेह जिजो उपरान, अनोपम अर्घ सु लेय महान ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे दक्षिणदिशि चतुर्थमवापी ईशान कौंणस्थित अष्टम रतिकर जिन० अर्घम् ॥ १३ ॥

सु अष्टम द्वीपहि दक्षिण सार, त्रयोदश गेह महा सुखकार। सुपूरण अर्घ बनाय मनोज्ञ, जिजो जिनगेह शिवालय जोग्य ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे दक्षिणदिशि त्रयोदश जिन० पूर्णार्घं ॥१४॥

शतं चउदै चउ संजुत जानि, सबैं जिन बिम्ब अनोपम मानि। सुपूरण अर्घ बनाय, बनाय जिजो जिनराज मनाय मनाय ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे दक्षिणदिशि त्रयोदश जिनगृह मध्ये चौदासे च्यारि सर्वजिनबिम्बेभ्य पूर्णार्घं ॥ १५ ॥

अथ जयमाल।

दोहा

नन्दीश्वर दक्षिण दिशा, तेरह गेह विशाल।
तिन परि जिनवर निति लसैं, तिनकी अथ जयमाल ॥ १॥

चौपाई।

जय अञ्जनगिरिपैं जिनराज, दधिमुख जय रतिकर महाराज। रतिकर आवनके जिनदेव, जय जय

त्रिभुवनके पति एव ॥ २ ॥ तुमरे दधिमुख बावडि माहि, बावडि नाम इसी विधि थाहि। पूरब बावडी अरजा नाम, दूजी विरजा दक्षिण नाम ॥ ३ ॥ तीजी नाम असोका होय, अञ्जनगिरितैं पश्चिम जोय। चोथी वीतशोक लखी लीजे, उत्तर अञ्जनगिरितैं कीजे ॥ ४ ॥

बावडि नाम मात्र है फेर, और वर्ण सब पूरब हेर। गिरि तेरह जिन गेह समान, इनकौं लंब व्यास सब जानि ॥ ५ ॥ और उच्च आदिक सब भेद, जो पूरबदिशि वर्णन लेद। सो ही दक्षिणमैं लख्यो, हेरफेर नहीं जिनवर कह्यो ॥ ६ ॥ दक्षिण दिशिके जिनवर देव, जानि दीन हमरी सुधि लेव। बार बार यह विनती करौ, बुध महाचन्द्र चरण चित्त धरौ ॥ ७ ॥

आर्या छन्द।

अष्टमद्वीप हीं केरा, दक्षिण दिशिमाही गेहजिन हेरा। पूजो नित्य सवेरा, करो हमैं मोक्ष पथ नेरा ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे दक्षिणदिशि तेरहगिरिन सम्बन्धी तेरह जिनगृहेभ्यो महार्घम् ॥ ८ ॥

सोरठा।

नन्दीश्वर दक्षिणान, तेरह गेहनको जिजन।
जो बाचै मन आन, सो अनुक्रमतैं शिव वरै ॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री नन्दीश्वरद्वीप दक्षिणदिशिस्थित जिनगृह पूजा समाप्ता।

अथ नंदीश्वरद्वीपे पश्चिमदिशिस्थित त्रयोदश जिनगृह पूजा।

अडिल छन्द

नन्दीश्वरकी पश्चिम दिशिमैं राजही, अञ्जनगिरि दधिमुख रतिकरपैं जिनगृही। तिनमैं हैं जिनस्वामी निर्मल नित्य ही, ते अब आयो पूजन हौं निजशक्ति ही॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वर द्वीपे पश्चिम दिशि एकांजनगिरि च्यारि दधिमुख आठ रतिकर त्रयोदश पर्वतस्थित त्रयोदश जिनगृह जिनसमूह अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिस्थापनं।

सुन्दरी छन्द।

कनक झारिय निर्मल नीर ते, जिनपदांबुज धारनपीरते।
दिशि सु पश्चिम द्वीपके, जजिहु तेरह गेह समीपके॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पश्चिमदिशि एकांजनगिरि च्यारि दधिमुख आठ रतिकर त्रयोदश पर्वतस्थित त्रयोदश जिनगृहाय समूहाय जलम् ॥ १ ॥

सरस चन्दन गन्धन सुन्दरं, घसि मिलाय सुकुंकुम गंधरं ॥ दिशिसु पश्चि० ॥ जजि० ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पश्चिमदिशि एकांजन गिरि च्यारि दधिमुख आठ रतिकर त्रयोदश पर्वतस्थित त्रयोदश जिनगृह समूहाय चन्दनं ॥ २ ॥

अमल अक्षत तन्दुल उज्ज्वलं, जल सुगन्धित धोय समुज्ज्वलं ॥ दिशिसु पश्चि० ॥ जजि० ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पश्चिमदिशि एकांजन गिरि च्यारि दधिमुख आठ रतिकर त्रयोदश पर्वतस्थित त्रयोदश जिनगृह समुदाय अक्षतम् ॥ ३ ॥

कमल कुन्द गुलाब मनोहरं, अमल पुष्प सु काम-विथा हरं ॥ दिशिसु० ॥ जजि० ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पश्चिमदिशि एकांजनगिरि च्यारि दधिमुख आठ रतिकर त्रयोदश पर्वतस्थित त्रयोदश जिन० समुदाय पुष्पं ॥ ४ ॥

सरस मोदक मोदन कारकं, कनक थाल भरो अघ टारकं ॥ दिशिसु० ॥ जजि० ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पश्चिमदिशि एकांजन गिरि च्यारि दधिमुख आठ रतिकर त्रयोदश पर्वतस्थित त्रयोदश जिनगृह समुदाय नैवेद्यम् ॥ ५ ॥

जगमगात सु दीपक जोतिही, जिनपदांबुज नित्य उद्योत ही ॥ दिशिसु० ॥ जजि० ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पश्चिमदिशि एकांजन गिरि च्यारि दधिमुख आठ रतिकर त्रयोदश पर्वतस्थित त्रयोदश जिनगृह समुदाय दीपम् ॥ ६ ॥

अगर आदि सुगन्धित द्रव्यतैं, करि सु धूपही खेप सु नव्यतैं ॥ दिशिसु० ॥ जजि० ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पश्चिमदिशि एकांजन गिरि च्यारि दधिमुख आठ रतिकर त्रयोदश पर्वतस्थित त्रयोदश जिनगृह समूहाय धूपम् ॥ ७ ॥

फल सु दाडिम आम मगायकैं, कनक थाल भरो सुखदायकैं ॥ दिशिसु० ॥ जजि० ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पश्चिमदिशि एकांजन गिरि च्यारि दधिमुख आठ रतिकर त्रयोदश पर्वतस्थित त्रयोदश जिन० समूहाय फलं ॥ ८ ॥

जल फलं करि द्रव्य सु अर्घ ही, जिनपदांबुज पूजि अनर्घ ही ॥ दिशिसु० ॥ जजि० ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पश्चिमदिशि एकांजन गिरि च्यारि दधिमुख आठ रतिकर त्रयोदश पर्वतस्थित त्रयोदश जिन० समूहाय अर्घम् ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येकार्घाणि।

प्रमिताक्षरा छन्द।

दिशि पश्चिमे सु गिरि अञ्जनकं, चिचि राजितं सुसुख मंजनकं। जिन गेह माही जिनराज वसै, जजतै ही पाप सब दूरि नशैं ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पश्चिमदिशि अञ्जनपर्वत स्थित जिनगृहाय अर्घम् ॥ १ ॥

शुभ बावडी प्रथम माही लसै, प्रथमोहितं दधि-

मुखो विलसै। दधि वर्ण तास परिगेह जिनं, भवि पुजि नित्य करि अर्घ तिनं ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पश्चिमदिशि प्रथम दधिमुखस्थित जिनगृहाय अर्घम् ॥ २ ॥

शुभ है द्वितीय दिशि दक्षिणमें, शुभ बावडी बीचि सु लक्षणमें। जिन सद्म तास परि नित्य रहै, तिस पूजतै हा सब पाप बहै ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पश्चिमदिशि द्वितीय दधिमुखस्थित जिन० अर्घम् ॥ ३ ॥

दधिरूप है दधिमुखो नितहि, गिरि अञ्जनंहि दिशि पश्चिम ही। जिन आयतं सु तिन जानि सदा, करि अर्घ पूजि अति होय मुदा ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पश्चिमदिशि तृतीय दधिमुखस्थित जिन० अर्घं ॥ ४ ॥

दिशि उत्तरेहि विचि बापीयके, दधिरूप ही दधिमुखो लियके। जिन गेह तास परि नित्य रहै, भवि पूजी नित्य निज पाप दहै ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पश्चिमदिशि चतुर्थ दधिमुखस्थित जिनगृहाय अर्घं ॥ ५ ॥

शुभ बावडी प्रथम कौंण मही, प्रथमो हितं रतिकरं तिमहि। अति सुन्दरं जिनगृहं तिसमैं, जिनराज पूजि निति हैं जिसपैं ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पश्चिमदिशि प्रथम वापी कौंण प्रथम रतिकर जिनगृहाय अर्घं ॥ ६ ॥

द्वितीयो सु है रतिकरो तिसकी, शुभ अग्निकौंण महि हैं जिसकी। जिन गेह जानि नितिहि तिस पैं, जजि भव्य तास निति हैं जिरुपैं ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पश्चिमदिशि द्वितीय रतिकर जिन० अर्घ ॥ ७ ॥

शुभ वावडी द्वितीयकौंण मही, तृतियोहि है रतिकरोति महा। जिन पद्म तास परि नित्य रहैं, भवि पूजि पूजत ही पाप दहैं ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पश्चिमदिशि तृतीय रतिकर जिन० अर्घ्य ॥ ८ ॥

गिरि होय है रतिकरो तिन ही, शुभ हेम वर्ण-युत नैऋत ही। जिन सद्म सारातिन राजत है, जजतै सब पापहि भाजत है ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पश्चिमदिशि नैऋतकौंणे चतुर्थ रतिकर जिन० अर्घं ॥ ९ ॥

शुभ वावडी तृतीय पश्चिमकी, तिसकौंण नैऋतहि लक्ष्मकी। गिरि हैं सु पंचमहि तास परि, जिन गेह जिजो अघ जाय अरी ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पश्चिमदिशि तृतीय वापी नैऋतकौंणे पंचम रतिकर जिन० अर्घं ॥ १० ॥

लखिकौंण वावडीय सौजियकी, शुभ वायाव नाम समो जियकी। गिरि षष्ठमो रतिकरो लखिये, जिन गेह जिजो अनुभो चखिकैं ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पश्चिमदिशि वायवकौंणे रतिकर जिनगृहाय अर्घम् ॥ ११ ॥

शुभ वावडीय चउथी लखिये, दिशि उत्तरेहि तिस कौंण लिये। गिरि सातवे रतिकरो शुभ हैं, जिन सद्म पूजत सुखं लभ हैं ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पश्चिमदिशि वायवकौंणे रतिकर जिनगृहाय अर्घम् ॥ १२ ॥

लखिकौंण ईसान महा थिर हैं, शुभ वावडी चउथीको गिर है। तह नामतैं रतिकरो गनिये, जजतैंहि पाप सब ही हनये ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पश्चिमदिशि चतुर्थ वापी ईशान कौंणे अष्टम रतिकर जिनगृहाय अर्घम् ॥ १३ ॥

शुभ द्वीप ही अष्टम पश्चिममैं, जिन गेह त्रयोदश संगममैं। करि पूर्ण अर्घ अति हर्ष करो, जजतैं पदंहि शिव नारि वरो ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पश्चिम दिशि त्रयोदश पर्वत स्थित त्रयोदश जिनगृहेभ्यः पूर्णार्घं ॥ १४ ॥

जिनबिंब च्यारि परि चउद धातं, इक गेह माहि शत अष्ट कृतं। जिनबिंब सबैं करि अर्घ मुदा, जजि हौं सु मोह मद होय विदा ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पश्चिमदिशि त्रयोदश जिनगृह मध्ये चौदसै च्यारि सर्वजिनबिंबेभ्यः पूर्णार्घम् ॥ १५ ॥

अथ जयमाला।

सोरठा।

अष्टम द्वीप विशाल, पश्चिम तेरह गेह जिन।
तिनकी अब जयमाल, जपिये भवि शुभ भावतैं ॥१॥

त्रोटक छन्द।

जय पश्चिम अष्टम द्वीप महो, जिन गेह त्रयोदश राज तहो। गिरि अंजन आदि त्रयोदशपैं, तिनि राजतहो अघ दूरि धपैं ॥ २ ॥ विजयादि वापि प्रथमातिन है, तह वैजयवन्ती द्वितीय तहं। फुनि हैं सु जयन्तिय नाम तहा, अपराजित चौथिय नाम कहा ॥ ३ ॥ यह अन्तर नाम ही वापिनको, अब वर्णन पूरब तुल्यनको। इनपै जय देव तुमैं तिनहो, सुर पूज बहु विधि द्रव्य गहो ॥ ४ ॥ गिनि फल्गुन कार्तिक अषाढ़ महि, बसु वासर अष्टमी पूर्णिमही। करि मोद तहां सुर जावत हैं, बसु द्रव्यहि पूज रचावत हैं ॥ ५ ॥

दिशि दक्षिण इन्द्रहि सौधरमा, फुनि उत्तर माही ईशान गमा। दिशि पूरबमें चमरेन्द्र रहैं, दिशि पश्चिममें वइरोचन है ॥ ६ ॥ यह इन्द्र ही च्यारि प्रमोद धरैं, बसु द्रव्यनतैं तुम पूज करैं। जल चन्दन

अक्षत पुष्प लिये, चरु दीपक धूप फलार्घ किये ॥ ७॥ निति ही तुम पुज रचावत हैं, मन वांछित ते फल पावत हैं। अति प्रीति करैं करि अर्घ महा, तुमरे गुण गान उचारि तहा ॥ ८ ॥ प्रभुजी हमरी कछु शक्ति नही, तुमरे ढिग आवन हर्ष यही। हम पूजत हैं तुमकौं इतही, हमकौं तुम थान करो नितही ॥ ९ ॥ यह विनती रे हमरी सुनिये, भव संकट मोहि सबैं हनिये। नहि जाचत हौं कछु भी तुमतैं, तुम सेव मिलो तुमरे नमतैं ॥ १० ॥

घत्ता

यह जिन गुण गानं सब सुख दानं,
सौख्य निधानं निति गावैं।
करि प्रीति अनूपं आनन्द रूपं,
बुध महाचन्द्र शिवं पावैं ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे पश्चिम दिशि त्रयोदश जिनगृह समूहाय महार्घम् ॥ १ ॥

दोहा।

अष्टम द्वीप सु पश्चिमे, जिनगृहकी जयमाल।
जो नर बाचै भावतैं, सो सुख पावै हाल ॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री नन्दीश्वर द्वीपे पश्चिम दिशि त्रयोदश जिनगृह पूजा समाप्त।

अथ नन्दीश्वरद्वीपे उत्तर दिशि त्रयोदश जिनगृह पूजा।

लोलतरंग छन्द।

उत्तर अष्टम द्वीपहि केरी,
गेह त्रयोदश हैं जिन केरी।
माहि जिनेन्द्र विराजत ताके,
आय विराज जजो पद जाके॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे उत्तरदिशि अंजनगिरि दधिमुख रतिकर स्थित त्रयोदश जिनगृह जिनसमूहाय अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भवभव वषट् सन्निधि स्थापनम्।

सोरठा।

गंगादिक लहि नीर, कंचन झारीमें भरौं।
जजि जिन हरि भव पीर, उत्तर अष्टम द्वीपके॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे उत्तरदिशि एकांजनगिरि च्यारि दधिमुख आठ रतिकर त्रयोदश पर्वत उपरि त्रयोदश जिनगृह समूहाय जलम्॥ १॥

कुँकुम चन्दन सार घसिकैं, कंचन पात्र ले। जजि०।

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे उत्तरदिशि एकांजनगिरि च्यारि दधिमुख आठ रतिकर त्रयोदश पर्वत उपरि त्रयोदश जिन० समूहाय चन्दनम्॥ २॥

अक्षत निर्मल नीर धोय, सु पुंज कराइये। जजि० ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे दक्षिणदिशि एकांजनगिरि च्यारि दधिमुख आठ रतिकर त्रयोदश पर्वत ऊपरि त्रयोदश जिनगृह समूहाय अक्षतं ॥ ३ ॥

कुन्द गुलाब सुमीर, गन्धित पुष्प मगायकैं जजि० ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे उत्तरदिशि एकांजनगिरि च्यारि दधिमुख आठ रतिकर त्रयोदश पर्वत ऊपरि त्रयोदश जिन० समूहाय पुष्पम् ॥ ४ ॥

नेवज ले रस सीर, मोदक फेणी आदि करि। जजि० ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे उत्तरदिशि एकाञ्जनगिरि च्यारि दधिमुख आठ रतिकर त्रयोदश पर्वत ऊपरि त्रयोदश जिनगृह समूहाय नैवेद्यम् ॥ ५ ॥

दीपक तम हर धीर, जगमग जोति जगाई। जजि० ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे उत्तरदिशि एकांजनगिरि च्यारि दधिमुख आठ रतिकर त्रयोदश पर्वत ऊपरि त्रयोदश जिनगृह जिनसमूहाय दीपम् ॥ ६ ॥

धूप सुगन्ध समीर, अगर तगर कर्पूर ले। जजि० ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे उत्तरदिशि एकांजनगिरि च्यारि दधिमुख आठ रतिकर त्रयोदश पर्वत ऊपरि त्रयोदश जिन० समूहाय धूपम् ॥ ७ ॥

श्रीफल आम जम्भिरकं, चढ भाजन धारि फलं।
॥ जजि जिन० ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे उत्तरदिशि एकांजनगिरि च्यार दधिमुख आठ रतिकर त्रयोदश पर्वत ऊपरि त्रयोदश जिनगृह जिनसमूहाय फलम् ॥ ८ ॥

जल फल अर्घ करिए, जिनपदपैं सु उतारिये । जजि०॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे उत्तरदिशि एकांजनगिरि च्यारि दधिमुख आठ रतिकर त्रयोदश पर्वत ऊपरि त्रयोदश जिन० समूहाय अर्घम् ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येक अर्घं ।

पाईता छन्द ।

नन्दीश्वर उत्तर माही, अञ्जनगिरि सुन्दर थाही ।
तिसपै जिनगेह सुहाहि, जिन पूजो अर्घ बनाई ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे उत्तरदिशि एकांजनगिरि स्थित जिनगृहाय अर्घम् ॥ १ ॥

दिशि पूरब बावडी माही, दधिमुख दधिसम मुखपाई ।
तिसपैं जिनगेह बताई, भवि पूजो मन वच काई ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे उत्तरदिशि प्रथम दधिमुख जिन० अर्घम् ॥ २ ॥

दूजो गिरि दधिमुख सोहै, अंजनतैं दक्षिण हो है ।
तिस परि जिनगेह अछो हैं, जिन पूजत ही मन मोहै ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे उत्तरदिशि द्वितीय दधिमुख जिन० अर्घ ॥ ३ ॥

तीजो दधिमुखगिरि जानौं, अंजनतैं पश्चिम मानौं।
जिन गेह तहां सुख खानो, जिनपूजो सब दुख हानौं॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे उत्तरदिशि तृतीय दधिमुख जिन० अर्घं ॥ ४ ॥

उत्तर दिशि अञ्जन केरी, जल निर्मल वापी हेरी।
तिस दधिमुखपैं गृह जेरी, जिन पूजो अर्घ सु लेरी॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे उत्तरदिशि चतुर्थ दधिमुख जिन० अर्घं ॥ ५ ॥

पहलो रतिकर ईशाने, पूरब वापीतैं जानैं।
तिसपैं जिन गेह महाने, जिन पूजत ही दुःख हाने॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे उत्तरदिशि प्रथम रतिकर जिन० अर्घं ॥ ६ ॥

ताहीकी अग्नि मही हैं, रतिकर दूजो सु तही है।
तापरि जिन गेह काही हैं, जिन पूजो अर्घ सही हैं॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे उत्तरदिशि द्वितीय रतिकर जिन० अर्घम् ॥ ७ ॥

दूजी वापीके कौणे, दिशि अग्नि माहि गिरि हूणे।
जिन गेह तहां लखि सूणे, जिन पूजतैं सुख दूणे॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे उत्तरदिशि तृतीय रतिकर जिन० अर्घं ॥ ८ ॥

चौथो रतिकर निति देखो, नैऋतहि कौण मधि पेखो।
जिनगृह लखि पूजन लेखो, निति पूजत होवै लेखो॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे उत्तरदिशि चतुर्थम रतिकरस्थ जिन० अर्घम् ॥ ९ ॥

पंचम रतिकर सुखकारी, वापी तीजी चिचि तारी।
नैऋति कौंणे जिन सारी, भवि पूजो अर्घ उतारी॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे उत्तरदिशि पंचम रतिकरस्थ जिन० अर्घं ॥ १० ॥

अञ्जनतैं पश्चिम रहती, तीजी वापी सुख देती।
तिस वायव कौंण सु वहती, रतिकर जिन पूजि अगेती॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे उत्तरदिशि षष्टम रतिकर जिन० अर्घं ॥ ११ ॥

सप्तम चौथी वापीके, वायव कौंणे लापीके।
रतिकर जिनगृह निति ध्यावो, भवि ध्यावतही सुख पावो

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे उत्तरदिशि सप्तम रतिकर जिन० अर्घम् ॥ १२ ॥

चौथी वापी ईशाने, अष्टम रतिकर दुःख हाने।
तिस परी जिनगृह निति जाने, पूजत हो है सुख खाने॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे उत्तरदिशि अष्टम रतिकरस्थ जिन० अर्घम् ॥ १३ ॥

नन्दीश्वर उत्तर सोहै, तेरह जिनगृह मन मोहै।
भवि पूजो आनन्दो है, पूजत ही शिव–सुख होहै॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे उत्तरदिशि त्रयोदश जिनगृह समुदाय पूर्णार्घम् ॥ १४ ॥

जिनबिंब सु गेह नमा ही, चौदासे च्यारिहि था ही।
ले पूरण अर्घ बनाई, पूजैं सुरपति पाई॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे उत्तरदिशि त्रयोदश जिनगृहमध्ये चौदासैच्यारी सर्वजिनबिंबेभ्यः पूर्णार्घ ॥ ५ ॥

अथ जयमाला।

दोहा।

नन्दीश्वर उत्तर दिशि, तेरह जिनवर धाम।
अब तिनकी जयमाल है, सुनौं भव्य अठ याम॥१॥

पद्धड़ी छन्द।

जय नन्दीश्वर उत्तर दिशान, जिन तेरह गेह विराजमान। अञ्जन दधिमुख रतिकर महान, चउ वापोमधि दधिमुख प्रधान॥२॥ रम्या वापी पूरबहि सार, रमणीया दक्षिण दिश मझार। पश्चिमसें सुप्रभ नाम जानि, उत्तरहि सर्वतोभद्र मानि॥ ३ ॥ यह वापी नामहि फेर होय, सब वर्णन पूर्व वचन सु जोय। जय जय जिन तुमकौं सुर सुरेश, अष्टाह्निक-मैं पूजत अद्वेष॥ ४ ॥ ननननननननन स्वरहि होत, तननननननननन तान पोत। द्रुम द्रुम द्रुम द्रुम द्रुम मुरज शब्द, घननननननननन घण्ट लब्द॥ ५ ॥

अट अट अट अट अट नट नटत नाट, चट चट चट चट चट चटत चाट। उद उद उद उद उद उद उदात। हट हट हट हट हट हट हटात॥ ६ ॥ गम गम गम

गम गम्भीर नाद, ससससससससससस सर्वजलाल। चल चल चल चल चल चाल, ममममममममममममम रसाल ॥ ७ ॥ पपपपपपपपप पंचम रसाल, नि नि नि नि नि नि नि नि निषाद चाल। धधधधधधधधधैव तरटंन, रिरिरिरिरिरिरिरिरिरिषम सदा पठंत ॥ ८ ॥ जय जय जय जय जय जय जिनेश, हन हन हन हन हन भव कलेश। रट रट रट रट रट हम हितं ही, पठ पठ पठ पठ पठ पठ मिलंही ॥ ९ ॥ सुनि सुनि सुनि सुनि हम अरज नाथ, गहि गहि गहि गहि हमरो सहाथ। हर हर हर हर हर भव भयान, कुरु कुरु कुरु कुरु कुरु मोक्षदान ॥१०॥ भव भव भव भव भव भव मसन्न, क्षम क्षम क्षम क्षम हम दो समन्न। दर दर दर दर दर दर भवंत, सर सर सर सर सर सर अवन्त ॥ ११ ॥ तुम तुम तुम तुम तुम मोहहीन, हम हम हम हम भवमाही दीन। हम सुर सुरेश करि नृत्यगान, फुनि तुम थुति ठानैं सुख निधान ॥ १२ ॥ हे करुणाधार अनाथ नाथ, हमकौं करिये तुमरेहि साथ। तुम हो जग नायक जगपतिस, हमकौं इन कर्मनतैं रखीस ॥ १३ ॥ नहीं और हमैं जगमें अधार, तुम ही भवसागरतैं उतार। यह विघ्न सघन तरु खण्ड खण्ड, बुध महाचन्द्र सुख मण्ड मण्ड ॥ १४ ॥

त्रिभंगी छन्द।

यह जिन गुण सारं भव दुख टारं, सब सुखकारं दुख टारं। भवि निति प्रति गावो, प्रीति लगावो निजपद पावो॥ शिव जावो०॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे उत्तरदिशि त्रयोदश जिनगृह समूहाय महार्घम्॥ १५॥

घत्ता छन्द।

जो नर नित्यं कैकृत कृत्य,
यह जिन पूजा निति वाचै।
सो सुर पद पावै सुरपति पावै,
अनुक्रम पावै शिव साचै॥ १॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री नन्दीश्वरद्वीपे उत्तरदिशि त्रयोदश जिनगृह पूजा समाप्त।

अथ एकादशम द्वीपमध्ये कुंडलगिरि-स्थित चतुर्जिनगृह पूजा।

मत्तगयंद छन्द।

कुण्डलद्वीपहि मध्य विराजत, कुण्डल पर्वत सुन्दर जानौं। सोवन वर्ण महा अभिराम सु, गोल लसैं सु प्रकार समानौं॥ तापरि पूरब दक्षिण पश्चिम, उत्तर है जिनगेह महानौ। च्यारि सु गेहनके जिनराज सु, आय विराजहु पूजन ठानौं॥

ॐ ह्रीं कुण्डलवर द्वीपमध्ये कुण्डलगिरि चतुर्दिशि स्थित चतुर्जिनगृह जिनसमूह अत्रावतरावतर। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

चाल पञ्चमेरु पूजाकी।

जिजो भवि जानि, ग्यारम द्वीपतनें भगवान। ग्यारम द्वीप सु कुण्डल नाम, तामधि कुण्डल चउदिशि धाम॥ जिजो भवि०॥ टेक॥

सो घन झारी जल भरि ल्याय, धारा तीन करो जिन पाय। जिजो भवि जानि ग्यारम द्वीपतनें भगवान, ग्यारम द्वीपसु कुण्डल नाम०॥

ॐ ह्रीं कुण्डलवरद्वीपे कुण्डल पर्वत चतुर्दिशिस्थित चतुर्जिनगृह जिनसमूहाय जलं॥ १॥

चन्दन केशरि मेलि घसाय, भव तप नाशन कारण लाय। जिजो भवि०॥ ग्यारम०॥

ॐ ह्रीं कुण्डलवरद्वीपे कुण्डलपर्वत चतुर्दिशिस्थित चतुर्जिनगृह जिनसमूहाय चन्दनम्॥ २॥

उज्जल अक्षत दीरघ लाय, जिनपद आगैं पुञ्ज कराय। जिजो भवि०॥ ग्यारम०॥

ॐ ह्रीं कुण्डलवरद्वीपे कुण्डलपर्वत चतुर्दिशिस्थित चतुर्जिनगृह जिन० अक्षतम्॥ ३॥

कुन्द गुलाब पुष्प शुभ लाय, काम बाण हर जिनहि चढाय। जिजो भवि०॥ ग्यारम०॥

ॐ ह्रीं कुण्डलवरद्वीपे कुण्डलपर्वत चतुर्दिशिस्थित चतुर्जिनगृह जिन० पुष्पम् ॥ ४ ॥

नाना रस करि मोदक सार, खाजा फैणी नेवज धार। जिजो भवि० ॥ ग्यारम० ॥

ॐ ह्रीं कुण्डलवरद्वीपे कुण्डलपर्वत चतुर्दिशिस्थित चतुर्जिनगृह जिन० नैवेद्यम् ॥ ५ ॥

दीपक घृत अथवा कर्पूर, जोति जगावो जिनपद भूर। जिजो भवि० ॥ ग्यारम० ॥

ॐ ह्रीं कुण्डलवरद्वीपे कुण्डलपर्वत चतुर्दिशिस्थित चतुर्जिनगृह जिन० दीपम् ॥ ६ ॥

धूप सुगन्धित द्रव्य मिलाय, खेवो जिनपद आगैं लाय। जिजौं भवि० ॥ ग्यारमद्वीप० ॥

ॐ ह्रीं कुण्डलवरद्वीपे कुण्डल पर्वत चतुरदिशि स्थित चतुर्जिनगृह जिनसमूहाय धूपम् ॥ ७ ॥

आम नींबू दाडिम फल सार, ल्यावो कञ्चन थाल मझार। जिजौं भवि० ॥

ॐ ह्रीं कुण्डलवरद्वीपे कुण्डल पर्वत चतुर्दिशि स्थित चतुर्जिनगृह समूहाय फलं ॥ ८ ॥

जल चन्दन सुख वसुविधि सार, द्रव्य लेय करि अर्घ सवार ॥ जिजौं भवि० ॥ परम० ॥

ॐ ह्रीं कुण्डलवरद्वीपे कुण्डल पर्वत चतुरदिशि स्थित चतुर्जिनगृह जिन० अर्घम् ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येक अर्घ।

रुचिरा छन्द।

सु कुण्डले दिशि शुभ पूरबमें लसैं, जिनेन्द्र गेह शुभ सु पापजं नसैं। सु मध्यमें निति जिनराज देवही, जिजो सदा कर शुभ अर्घ ले वही॥

ॐ ह्रीं कुण्डलवरद्वीपे कुण्डल पर्वतोपरि पूर्वदिशि स्थित जिनगृहाय अर्घं॥ १॥

सु दक्षिणे कुण्डगिरि कुण्डले सदा, सुकूटपैं गृह जिनराजको मुदा। जलादिकं फल गहि, अन्त अर्घहि जिजो जिनं पद जिम है अनर्घही॥

ॐ ह्रीं कुण्डलवरद्वीपे कुण्डलपर्वतोपरि दक्षिणदिशि स्थित जिनगृहाय अर्घम्॥ २॥

सुवणको गिरि सब जानि तासपैं, सुपश्चिमें जिनवर धाम जासपैं। विशाजित जिनवर आठसो सदा, जिजो करो अघ भव दूरि है विदा॥

ॐ ह्रीं कुण्डलवरद्वीपे कुण्डलपर्वतोपरि पश्चिमदिशि स्थित जिन० अर्घम्॥ ३॥

सु उत्तरे जिनगृह कुण्डले वसैं, मनोग्य है तिस-मधि हैं जिन लसैं। शरीरको उच्चपन पंचसैं धनु, जिजो जिनं भवि सब मोहकों हनौं॥

ॐ ह्रीं कुण्डलवरद्वीपे कुण्डलपर्वतोपरि उत्तरदिशि स्थित जिन० अर्घम्॥ ४॥

सु कुण्डले गृह जिनके सु च्यारि हैं, चतुर्दिशा मधि क्रमतैं विचार हैं। सु पूर्ण अर्घही करि पूजनं, करो सु पूजतैं भव तप नाश है खरो ॥

ॐ ह्रीं कुण्डलवरद्वीपे कुण्डलपर्वतोपरि चतुर्दिशि स्थित जि॰ गृह समूहाय पूर्णार्घम् ॥ ५ ॥

जिनेन्द्रके गृह शुभ च्यारि माहि हैं, जिनेन्द्र बिम्ब हि शत च्यारि थाय है। बत्तीस है सब मिलि पूर्ण अर्घ ले, जिजो सदा निति पदसो अनर्घ ले ॥

ॐ ह्रीं कुण्डलवरद्वीपमध्ये कुण्डलपर्वतोपरि च्यारिसै बत्तीस सर्व जिनबिंबेभ्यः पूर्णार्घं ॥ ६ ॥

अथ जयमाला ।

सोरठा ।

स्यारम द्वीप विशाल, तामधि गिरि गृह च्यारि हैं।
जपि तिनकी जयमाल, पूजो भवि आनन्दतैं ॥ १ ॥

कामिनिमोहन छन्द ।

जयति जिनदेव गिरि कुण्डले थिति करन, मोह तम अन्ध जग जीव सब दुख हरन। द्वीप एकादशम नाम कुण्डल बरन, तासमधि कुण्डलं पर्वतं सुखकरन ॥२॥ कुण्डलं पर्वतं हेममय तन धरन, व्यास करि सहस दोय शतवी सरन। भूमि परि है इतो उपरै अघ कहत, संस चउदोय सत और चालीस कृत ॥३॥

उच्चता भूमितैं पंच सैंत्तरी सहस, जोजनं यौं सदा कुण्डलेगिरि रहस। तासपरि गेह जिनराजके चउ बसत, कूट हैं पंचशत उच्च तातैं लसत ॥ ४ ॥ गेहको व्यास पणबीस जोजन रहत, होत आयाम पच्चास जोजन बहत। उच्चता साठसै तिस जोजन कहत, च्यारि गेहन तनौं यौंहि वर्णन चहत ॥ ५ ॥

गेह मधि नाथ तुम एकमें अष्ट शत, रत्नमय तुङ्ग तनु पंच सत धनु वहत। सर्व संसार दुःख हार भव तार हो, मोक्ष रामापति मोक्ष भरतार हो ॥६॥ सर्व जग जीव जगजालदुःख जार हो, इन्द्र सत सहुर खग नरपति तार हो। नाथ भव पाथ गहो हाथ भवि तार हो, मोहि गहो हाथ अर करहु भवपार हो ॥७॥ तुम ही करुणानिधि सर्व करुणा करो, तुमही भवदुख हरण मोहि सब दुख हरो। विबुध महचन्द्र दुख मेटि सब सुख करो, पार संसार उत्तारी सुख संभरो ॥७॥

घत्ता

यह कुण्डल नामा पर्वत ताम/, जिनगृह धामा चारी तहां। जिन पूजौं ध्यावौं गुणगण गावौं, सीस नवावौं पाप वहां ॥

ॐ ह्रीं कुण्डलवर द्वीपमध्ये कुण्डलपर्वतोपरि चतुर्दिशि चतुर्जिनगृह समूहाय महार्घम् ॥

छन्द चौपाई।

द्वीप ग्यारम पूजन सारं,
जे नर बाचै मन वच धारं।
सो नर सुरके सब सुख पावै,
अनुक्रमतैं शिव मारग जावै॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री कुण्डलवर द्वीप मध्ये कुण्डलपर्वत स्थित
चतुर्जिनगृह पूजा समाप्ता।

अथ रुचिकवर द्वीपमध्ये रुचक गिरि स्थित चतुर्जिनगृह पूजा।

अडिल्ल छन्द

द्वीप त्रयोदशमौं सु रुचिकवर नाम है,
तामधि पर्वत होत रुचिक सुख धाम हैं।
ताको चउ दिशमें चउ जिनगृह जिन लसैं,
ते जिन आय विराजो पूजौं अघ नसैं॥

ॐ ह्रीं रुचिकवर द्वीपमध्ये रुचक गिरि चतुर्दिश स्थित चतुर्जिनगृह जिनसमूह अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिस्थापनं।

गीता छन्द।

शुचि नीर निर्मल कनक झारी, भरि जिनाग्र सु ल्याइये।
जन्मादि नाशन पाद जिनके, धार तीन कराइये॥
शुभ द्वीप नाम रुचिक वरं मधि, रुचिक पर्वतपैं बसैं।
दिशि च्यारि जिनगृह च्यारि जिनपद, पूजतैं सब अघनसैं॥

ॐ ह्रीं रुचिकवर द्वीपे रुचिकपर्वतोपरि चतुर्दिशि स्थित चतुर्जिनगृह समूहाय जलम्॥ १॥

चन्दन सु कुँकुम मेलि घसिकरि, कनक पात्रहि धारिकैं। भव ताप नाशन पाद जिनके, अग्र करि मद टारिकैं॥ शुभ द्वीप०॥

ॐ ह्रीं रुचिकवर द्वीपे रुचिकपर्वतोपरि चतुर्दिशि स्थित चतुर्जिनगृह समूहाय चन्दनम्॥ २॥

तन्दुल अखण्डित गन्ध मण्डित, धोय जलतैं ले धरो।
पद अखय कारण पुंज जिन पदपैं, सदा निर्मल करो॥
॥ शुभ द्वीप०॥

ॐ ह्रीं रुचिकवर द्वीपे रुचिकपर्वतोपरि चतुर्दिशि स्थित चतुर्जिन० समूहाय अक्षतम्॥ ३॥

शुभ वेलि चम्पक केवडो, महकन्त गन्ध सु ल्याइये।
खर काम नाशन कारणैं, जिन पाद अग्र धराइये॥
॥ शुभ द्वीप०॥

ॐ ह्रीं रुचिकवर द्वीपे रुचिकापर्वतोपरि चतुर्दिशि स्थित चतुर्जिन० समूहाय पुष्पं॥ ४॥

नेवेज मनोज्ञ सुमोद कारण, मोदकं खाजा करो।
फुनि फोणि रस झ्रांणी चढ़ाओ, क्षुधा रोग सबैं हरो॥
॥ शुभ द्वीप० ॥

ॐ ह्रीं रुचिकवर द्वीपे रुचिकारपर्वतोपरि चतुर्दिशि स्थित चतुर्जिनगृह समुदाय नैवेद्यम् ॥ ५ ॥

शुभ दीप दीपित जोय घृतमय, वा कपूर जगाइये।
तम मोह नाशन आरति, जिन पाद अग्र कराइये॥
॥ शुभ द्वीप० ॥

ॐ ह्रीं रुचिकवर द्वीपे रुचिकरपर्वतोपरि चतुर्दिशि स्थित चतुर्जिनगृह समुदाय दीपम् ॥ ६ ॥

श्रीखण्ड अगर सु लेय चन्दन, धूप करि जिनपद अगैं।
खेवो सुगन्ध करे दसौं दिस, अष्ट कर्म सबैं भगैं॥
॥ शुभ द्वीप० ॥

ॐ ह्रीं रुचिकवर द्वीपे रुचिकरपर्वतोपरि चतुर्दिशि स्थित चतुर्जिनगृह समुदाय धूपम् ॥ ७ ॥

फल आम दाडिम आदि ले करि, कनक थाल भराइये।
फल मोक्ष कारण नेत्र मनहर, फला इसासु चढ़ाइये॥
॥ शुभ द्वीप० ॥

ॐ ह्रीं रुचिकवर द्वीपे रुचिकारपर्वतोपरि चतुर्दिशि स्थित चतुर्जिन० समुदाय फलं॥ ८ ॥

जल गन्ध अक्षत पुष्प चरुवर, दीप धूप मनोहरं।
फल मेलि अर्घ बनाय जिनपद, पूजतैं अघ नठकरं॥
॥ शुभ द्वीप० ॥

ॐ ह्रीं रुचिकवर द्वीपे रुचिकरपर्वतोपरि चतुर्दिशि स्थित चतुर्जिन० समूहाय अर्घं ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येक अर्घं।

पाईता छन्द।

गिरि रुचिक कनकमय सोहै, ताकी पूरव दिशि सोहै। जिन गेह सबैं मन मोहै, पूजो जिनपद सुख जोहै॥

ॐ ह्रीं रुचिकवरद्वीपमध्ये रुचिकगिरि पूर्वदिशि स्थित जिनगृहाय अर्घम् ॥ १ ॥

दिशि दक्षिण रुचिक गिरिको, जिन गेह महा लखो नीको। तिसमें प्रतिमा जिनजीको, जिन पूजो भवि मन तीखो॥

ॐ ह्रीं रुचिकवरद्वीपे रुचिकगिरि दक्षिणदिशि स्थित जिनगृहाय अर्घम् ॥ २ ॥

जिन गेह सु पश्चिम मानौं, गिरि रुचिक तनौं सुख खानौं। जिनबिंब तास मधि जानौं, जिन पूजौं सब दुःख हानौं॥

ॐ ह्रीं रुचिकगिरि पश्चिमदिशि जिन० अर्घम् ॥ ३ ॥

तेरम वर द्वीप बतायो, तामध्य रुचिक गिरि गायो। ताकी उत्तर दिशि पायो, जिन गेह जिजो मन भायो॥

ॐ ह्रीं रुचिकगिरि उत्तरदिशि जिन० अर्घं ॥ ४ ॥

वर द्वीप रुचिक लखी लीजे, तामधि गिरि रुचिक कहीजे। ताके चउ जिनगृह लीजे, नित पूजो सब दुःख छीजै॥

ॐ ह्रीं रुचिकवरद्वीपे रुचिकगिरि चतुर्जिनगृहाय पूर्णार्घं ॥५॥

जिनबिंब लसैं तिन माहीं, शत च्यारि बत्तीस बताई। निति पूरण अर्घ बनाई, भवि पूजो सब सुखदाई॥

ॐ ह्रीं रुचिकवर द्वीपमध्ये रुचिकगिरि चतुर्जिनगृहमध्ये च्यारिसै बत्तीस सर्वजिनबिंबेभ्यः पूर्णार्घम् ॥ ६ ॥

अथ जयमाला।

दोहा।

तेरम द्वीप विषैं लसैं, रुचिकगिरि सुख धाम।
ताके जिनगृह च्यारिकी, अब जयमाल जपाम ॥ १ ॥

प्रमिताक्षरा छन्द।

जय द्वीप तेर मधि नाथ जिनं, गिरि नाम है रुचिक नाम गिनं। जय च्यारि ही दिस सु च्यारि गृहं, तिनमें तुमैं लखत पाप दहं ॥ २ ॥ गिरि भूमि व्यास मुख व्यास सदा, दस संस जोजनधिकं द्विदाला। फुनि बीस हनों सुब व्यास गिनं, मुख व्यास संस चउ ओर सुनं ॥ ३ ॥ द्विशतं सु चालिसव ऊपरि हैं, मुख व्यास हतो निति संथिर है। फुनि उच संस चउ रासी रहै, शुभ जोजनं पहिय नित्य वहै ॥ ४ ॥ तिसपैं जिनेन्द्र तुम गेह बसैं, पण बीस

व्यास सु पचास हू लखैं, सु अयाम ऊंच अध यों गनिये, शुभ साठस तीस सदा मुनिये ॥ ५ ॥

इन माहीं देव तुम नित्य रहो, इक माहीं आठ कुनि सो सुख हो। धनु पंच से सु तनु तुंग वहो, शुभ रत्न रूप प्रति बिम्ब हो ॥ ६ ॥ जगनाथ अद्रि रुचिके थिर हो, दुख द्वंद्व हानि करि सौख्य वहो। हमरे हि नाथ नहि और कहौं, तुमरे बिना सुख करंक वहौं ॥ ७ ॥ हम वन्दन तुम पदं विमलं, सुख द्यो हमें शिव भवं अमलं। निति विनवैं शुभ महेन्दु तुमैं, अवतार तारि जिनराज हमैं ॥ ८ ॥

पुष्पिताग्रा छन्द।

रुचिकगिरि जिनेन्द्र, जे सुमाला जजहु। नरा-धरि प्रीति शुद्ध हाला, चतुविधि गृहि अर्घ शुद्ध चाला, जय जय जयमाल यौं जपाला ॥

ॐ ह्रीं रुचिकवर्द्वीपे रुचिक पर्वत चतुर्दिशिस्थित चतुर्जिनगृह समुदाय महार्घम् ॥ ९ ॥

वंशस्थ छन्द।

जिजै सदा जो नर प्रीति लायकै, सुणैं सुणावैं यह पाठ भायकैं। सदा ही स्वर्गादि सुखं सु पायकैं, शिवं लहै कर्म नसाय जायकैं ॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री रुचिकवरद्वीपमध्ये रुचिकगिरिस्थित जिनगृह पूजा समाप्ता।

इतिश्री तीनलोकमध्ये अकृत्रिम आठ कोडि छप्पन लाख सत्याणवै सहंस च्यारिसै इक्यासि जिनगृह पूजा समाप्ता।

अथ तीन लोक मध्ये अकृत्रिम चैत्य पूजा।

॥ संस्कृतं ॥

स्रग्धरा छन्द।

यानि त्रैलोक्य जातानि, सकल जिन चैत्यानि। शांतीश्वराणाम् त्रैलोक्यानां च संस्थानि, भव भवगतं पापतापं हराणि॥ तानि प्रोद्धूत पापानि, सकल सुखराणानि प्रसंस्थापयामि तिष्ठं। त्यागत्य चात्र प्रयजन समये सर्वसन्धी भवानी॥

ॐ ह्रीं त्रिलोकस्थिताकृत्रिम सर्वजिन चैत्य समूह अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

शालिनि छन्द।

सुगंधनीरैः शुभ पात्रगैस्च, सुकुम्भसुगंगागत निर्मलैश्च। यजे सु चैत्यानि जिनेन्द्राणाम्, त्रिलोक संस्थानि सुखाकराणि॥

ॐ ह्रीं त्रिलोकस्थिताकृत्रिम सर्वजिन चैत्य समूहाय जलं॥१॥

कर्पूर काश्मीर सु चन्दनानां, द्रवै सुगन्धैः भ्रमरान्वितैश्च। यजे सु चैत्यानि० ॥

ॐ ह्रीं त्रिलोकस्थिताकृत्रिम सर्वजिन चैत्य समूहाय चन्दनं॥२॥

सुतंदुलै रक्षतकैर्मनोहरै, दीपैः समुद्योतित दिग्मुखैश्च। यजे सुचैत्यानि जिनेन्द्र० ॥

ॐ ह्रीं त्रिलोकस्थिताकृत्रिम सर्वजिन चैत्य समूहाय अक्षतं ॥३॥

सुजात जाति सुख पुष्प संघैः, सुगंधकाकृष्ट मधुव्रतैश्च। यजे सु चैत्यानि० ॥

ॐ ह्रीं त्रिलोकस्थिताकृत्रिम सर्वजिन चैत्य समूहाय पुष्पम् ॥४॥

नानारसोत्पन्न सु मोदकाद्यैर्नैवेद्यकैः क्षुद्धरणे-समर्थः। यजेसु० ॥

ॐ ह्रीं त्रिलोकस्थिताकृत्रिम सर्वजिन चैत्य समूहाय नैवेद्यम् ॥५॥

कर्पूर जातैश्च घृतोद्भवैर्वा, दीपैः समुद्योतितदिक्-कपैश्च। यजे सु चैत्यानि० ॥

ॐ ह्रीं त्रिलोकस्थिताकृत्रिम सर्वजिन चैत्य समूहाय दीपम् ।६॥

श्रीखण्डमुख्योद्भवधूपसंघैः, सुगन्धगन्धीकृतदिक्-समूहैः। यजे सु चैत्यानि० ॥

ॐ ह्रीं त्रिलोकस्थिताकृत्रिम सर्वजिन चैत्य समूहाय धूपम् ॥७॥

नारिंगपूंगाम्र फलैर्मनोज्ञैः, सुगंधयुक्तैरमलैः-शुभस्थैः। यजे सु चैत्यानि० ॥

ॐ ह्रीं त्रिलोकस्थिताकृत्रिम सर्वजिन चैत्य समूहाय फलम् ॥८॥

सुनीर गन्धादि फलांतकैश्च, मनोज्ञसारै रमलै-निरंतं। यजे सु चैत्यानि० ॥

ॐ ह्रीं त्रिलोकस्थिताकृत्रिम सर्वजिन चैत्य समूहाय अर्घम् ।९॥

अथ प्रत्येकार्घाणि।

मत्तमयूर छन्दः।

वन्दे भावानां सुजिनानां प्रतिमानि, चैत्यैषूत्पन्ना-जिनगे सु प्रथितानि। तेषामग्रे नित्य भवेषु प्रथिते सुमानस्थंभेषु प्रमितेषु प्रभवानि॥

ॐ ह्रीं भवनवासीनां चैत्यवृक्षे सुवावेषामग्रे मानस्थं भेषु यानि जिनचैत्यानितेभ्य सर्वेभ्योऽर्घं॥ १॥

शालिनी छन्द।

चैत्यानि प्रासानि च व्यंतरेषु, चैत्यवृक्षेषु प्रमाणो भवेषु। तान्यत्राहं पूजयामि प्रभक्त्या, स्वर्ग प्राप्तो-त्पन्न नीराधिकैश्च॥

ॐ ह्रीं व्यन्तरदेवानां यानि जिनचैत्यानि तेभ्यः सर्वेभ्योऽर्घं॥२॥

विद्युन्माली छन्द।

ज्योतिर्देवेषूत्पन्नानि, जैनानी प्रोद्धं चैत्यानि। सर्वाण्यत्राहं वन्दामि, सारार्घं संप्राप्याप्यानि॥

ॐ ह्रीं ज्योतिर्देवेषु यानि जिनचैत्यानि तेभ्यः सर्वेभ्योर्घम्॥८॥

चक्रकमाला छन्द

कल्प भवेषूत्पन्न जिनानां, चैत्यमहांनि प्रोक्त भावानां। चैत्यतरूणां मध भवानां, संयजनं कुर्वे चलकानां॥

ॐ ह्रीं कल्पवासी देवेषु यानि जिनचैत्यानि तेभ्यः सर्वे-भ्योऽर्घम्॥ ४॥

मणिबन्ध छन्दः

मध्यम लोके चैत्या घनं, कश्चन पद्मादि प्रभवं।
संयजनं कुर्वे प्रथितं, सार भवं तेषां विमलं॥

ॐ ह्रीं मध्यलोके यानि जिनचैत्यानि तेभ्यः सर्वेभ्योऽर्घम् ॥५॥

श्रीपद्मै छन्दः।

सकलेषु च लोक केषु, चाघ इह स्वर्ग भवेषु।
यानीहि जिनचैत्य महांति संतिहि, यजनं नित्य-महं करोमिहि॥

ॐ ह्रीं अधोलोकमध्ये लोकोर्ध्वलोकेषु यानि जिनचैत्यानि तेभ्यः सर्वेभ्यः पूर्णार्घम् ॥

अथ जयमाला।

प्राकृतरूपा घत्ता छन्दः।

जिणचेत समूहं णिच्च थिरीहं, कश्च णपण सय-घणु दचं। तियलोय मझे तिय जगपुज्ज, पुज्जे शिव सुहसं सुचं॥ १॥

कामिनी मोहनं छन्दः।

यज जिणं चेत तुह भवण दह जादिसु, असुर तह णाग सुहपण दीवादिसु। उदहितह विज्जु थणिदगिदि सवाउसु, एह दह भेय सुर भवण राजादिसु॥ २॥

जिय जिणं चेत तुह वंतराणं सया, चेत तरु

माण थम्भादि एसं लिया। किणरा किंपुरीस उरग गन्धव्वए, जक्ख राक्स पिसाइय भूए यए ॥ ३ ॥

जय जिणं चेत उह ज्योइसिय जाद्दिए, चन्द सूरं गृहं तारण रकत्तए। पञ्च थिह जोइ सियणिच्च थिर रूवए, पञ्चस धणुहत्तणु तुङ्ग संठापिए ॥ ४ ॥

जिण जिणं चेत तुह कप्प सुर संठिया, तहय जय चेत उह कप्प वासी डिए। चेत तरु माण थम्भादिए सन्ठिए, सभा सोलम्हि सव्वतसंथाइए ॥५॥

जय जिणं चेत तुह मक लोए सया, सीय सीतोद दह पास कञ्चण चिया। एय मेरुम्हि सय दोयपण मेरुए, सहं सइग चेत इम कञ्चणे कन्ठए ॥ ६ ॥

तहय जय पञ्म दह यहुदिए चेत्तगं, रयण मय पञ्च सय धणुहतणु उचगं। अण्जे लोय तिय मक जिण चेतगं, णोमिमण वयण काएण अकक्किमं ॥७॥

जय जिणं चेत तुहतार भव सायरं, घोर जन्मादि दुर कायरं पायरं। णिच उह पाय तुय वन्दए भावउं, विवह महचन्द महचन्द सम कारए ॥ ८ ॥

घत्ता छन्दः।

इह जिणवर चेतं माल पणीतं, जयमाल एणी च भणं। हस्तेण महग्घं कि च अणग्घं, जजि जिण सरिसं पय लद्धं ॥

ॐ ह्रीं त्रिलोकमध्ये यानि जिनचैत्यानि तेभ्यः सर्वेभ्यः महार्घम् ॥ ९ ॥

गाथा छन्दः।

जे णिचं सुह भावो, संलय जदी अकट्टीमं चैत्यं।
तिय लोय सक नादं सो, शिवए भुंजदे सोरकं॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री त्रिलोकस्थित अकृत्रिम जिनबिम्ब पूजा समाप्त।

अथ मध्यलोकस्थिता कृत्रिम जिनगृह पूजा।

॥ संस्कृतं ॥

शार्दूलविक्रिडित छन्दः।

चैत्यागार समूह मद्धे सहिते, सारे यग द्वीपके।
भव्योत्कारित कृत्रिमं जिन युतं, कैलाश मुख्ये सदा॥
तस्मिन् जैन गतानि सार सुखदे, बिंबानि सर्वाणि च।
तान्याहूय महा प्रमोद भरतः, संस्थापयामोघना॥

ॐ ह्रीं कृत्रिम जिनगृह जिनसमूहाय अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

मोटनकं छन्दः।

गंगादिक नीर समोद भरैः, कांचन्य सुपात्रगतैः सुखदैः।
सद्मानि सुकृत्रिम गानि सदा, संपूजयचात्र महाप्रमुदा॥

ॐ ह्रीं कृत्रिम जिनगृह जिनसमूहाय जलं ॥ १ ॥

कर्पूर सु चन्दन कुँकुमकै, गंधोत्कट हूयित सदूभ्रमरैः।
सद्मानि० ॥

ॐ ह्रीं कृत्रिम जिनगृह जिनसमूहाय चन्दनं ॥ २ ॥

इन्दु द्युति तन्दुल संग भरैः, सामोदि दिकचयकै रसलैः।
सद्मानि० ॥

ॐ ह्रीं कृत्रिम जिनगृह जिनसमूहाय अक्षतं ॥ ३ ॥

पद्मे शुभ केतकी सत्कुसुमै, गांधागत सदूभ्रमरैः सुखदैः।
सद्मानि० ॥

ॐ ह्रीं कृत्रिम जिन० जिन० पुष्पं ॥ ४ ॥

नाना रस मोदक मोद भरै, नैवेद्य घनैः शुभ भाजनगैः।
सद्मानि० ॥

ॐ ह्रीं कृत्रिम जिन० जिन० नैवेद्यं ॥ ५ ॥

उद्योतित दिकचय दीप घनैः, सर्पिर्गतिकै रमलैः।
सद्मानि० ॥

ॐ ह्रीं कृत्रिम जिन० जिन० दीपं ॥ ६ ॥

श्रीखंड भवैः शुभ धूप घनैः, कांचन्य सुपात्र गयहि धूतैः।
सद्मानि० ॥

ॐ ह्रीं कृत्रिम जिन० जिन० धूपं ॥ ७ ॥

नारिंग मुखैश्च सुगंधि फलैः, शुभ भाज...गैः फल मोक्षकरैः॥
सद्मानि० ॥

ॐ ह्रीं कृत्रिम जिन० जिन० फलं ॥ ८ ॥

अप चन्दनमुखमनोज्ञवरैरर्घ्यैः कृत सेलनसारतरैः।
सद्मानि० ॥

ॐ ह्रीं कृत्रिम जिन० जिन० अर्घं ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येकार्घाणि ।

जलधरमाला छन्दः।

संस्थागारा भरतधरायां सारा बिंबैर्जैनैः, शुभ सहिताये नित्यं तेषामर्घेण। शुभतरेण आह प्रोद्धै-र्भावैः, सु यजनमत्र च कुर्वे ॥

ॐ ह्रीं सार्द्धद्वि द्वीपमध्ये पंच भरतक्षेत्रस्थित कृत्रिम जिनगृहसमूह समूहाय अर्घम् ॥ १ ॥

दोधक छन्दः।

क्षेत्र विदेहगतं गृहसंघं, जैन सु बिंबयुतं त्वमलांगं।
सकुभवदुःखविनाशनसारं, तत्र जनं च करोम्यहमारं॥

ॐ ह्रीं पंचमेरु सम्बन्धी विदेहक्षेत्रस्थित कृत्रिम जिन-गृह जिनसमूहाय अर्घं ॥ २ ॥

वंशस्थ छन्दः।

मनोज्ञकैरावतकेर्जिना प्रभो, गृहाणि सन्ति प्रधिनानि नित्यं। यजामि सार्घेण मनोहरेण, स्व भाव संयुक्त कृतेन शास्वत् ॥

ॐ ह्रीं ऐरावत पंचके स्थित कृत्रिम जिन० अर्घम् ॥३॥

रथोद्धता छन्दः ।

द्वीप सार्द्धयुग संस्थितानि वै, जैनबिंबगगृहा-णियहं यजे । अष्टभिर्वसुभिरर्घसारकं, कृत्य मानित युतानि तानि वै ॥

ॐ ह्रीं सार्द्धद्वि द्वीपस्थित कृत्रिम जिन० अर्घम् ॥ ४ ॥

अथ जयमाला ।

प्राकृत रूपा गाथा ।

जिण गेह घणं किट्टिमरूवं, सद्धद्दि दिवम कृम्मितागं ।
जिणंद संघं णमामि, जयमालया णिचं ॥ १ ॥

पद्धडी छन्दः ।

जय किट्टिम जिणगिह जिण समूह, जय भर-हेरावद कम्म भूह । तह णिच विदेह ससद्विसये, तुह पाद् पदम णिज सीस ठिये ॥ २ ॥ जय भव्व जीव भरहादि एण, तुह किया गहाण ठिया ठिएण । कैलाश सिहरम कृम्मिणाह, तुह सुरण खेयरवन्दि पाय ॥ ३ ॥ असछ गेह तुम जच्छ होई, किट्टिमम क्रिम लोएय मोय । ताणं जिण गेह जिणा णाणिच, वन्दामि णमामि थुवे समुच ॥ ४ ॥ जय किट्टिम गेह चियं ततिय, लोयणाह पर पुज्ज सन्त । मम हरय जम्म पंचत तुरक, संसार उदहिए णोय सुरक ॥ ५ ॥

जय जिण जगजीवकी पाणि धाण, जय पंच

किलाणहि देव माण। मम तार सया संसार एप,
इम वन्दति वुह महचन्द तेह ॥ ६ ॥

घत्ता

इह किट्टिम गेहा किय मण णेहा,
णाह सुण राण णमन्ति सया।
गए वसु विहदव्वं हससमहप्पं,
पूजय भव्व पमोद हिया ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं सार्द्ध द्वय द्वीपमध्ये कृत्रिम जिनगृह जिनसमूहाय महार्घम् ॥

गाथा।

जो णियमण किय सुद्धं,
किट्टिम जिण गिह जिणन्द।
पूजे दिसो सुरणर सुह भुत्ता,
पच्छा शिव लच्छि पावेदि ॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री सार्द्ध द्वि द्वीपस्थित कृत्रिम जिनगृह जिनसमूह पूजा समाप्ता।

अथ जम्बूद्वीपस्य भरतक्षेत्रे वर्तमान ऋषभादि वर्द्धमानांत चतुर्विंशति तीर्थंकर जिनसमूह पूजा।

॥ संस्कृतबन्धः ॥

शिखरीणी छन्दः।

जिना जम्बूद्वीपस्य च सुरगिरे, दक्षिण दिशि वसन्ति प्रोद्भूते। भरत विजयेस्मिन्सुसमये, चतुर्विंशस्तेषां वृषभ मुख सन्मत्यममगं॥ तमाह्व पूजार्थं सकल जिन संघ सुरनुतं॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपस्य भरतक्षेत्रे वर्तमान वृषभादि वर्द्धमानांत चतुर्विंशति तीर्थंकर जिनसमूह अत्रावतरा० संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भवभव वषट् सन्निधि स्थापनम्।

हरिणी छन्दः।

विमलतर महोद्यद्भृंगारे, सुरापगकं शुभं। परिमल सहासारं, जन्मादिनाशन कारकं॥ जिनपदयुगं प्रद्योतत्संप्रभापरिचुंबितं। सकलसुखदन्दे चैर्चयं, यजे शुभ भावतः॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपस्य भरतक्षेत्रे वर्तमान चतुर्विंशति जिनसमूहाय जलं॥ १॥

इन्द्रवज्रा छन्दः।

काश्मीर कर्पूर सु चन्दनैश्च, घृष्टैः सुगन्धी कृत दिग्मुखैश्च। जंबोश्चये भारत वर्तमाना, स्तांसंयजेहं शुभभावतोत्र ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपस्य भरतक्षेत्रे वर्तमान चतुर्विंशति जिन-समूहाय चन्दनम् ॥ २ ॥

शाल्यक्षतै दीर्घ महा सुगन्धैः, पूजिकृतैस्तैरिव पुण्यपुंजैः ॥ जम्बोश्चये० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपस्य भरतक्षेत्रे वर्तमान चतुर्विंशति जिन० अक्षतम् ॥ ३ ॥

कुन्दैरमंदारमल्लपगंधै, रामोद संनीत मधुव्रतैश्च ॥ जम्बोश्चये० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपस्य भरतक्षेत्रे वर्तमान चतुर्विंशति जिन० पुष्पम् । ४ ॥

नाना प्रकारैश्चरुभीरसाद्यैः, सन्मोदकाद्यैरमलैः सुगन्धैः ॥ जम्बोश्चये० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपस्य भरतक्षेत्रे वर्तमान चतुर्विंशति जिन० नैवेद्यम् ॥ ५ ॥

प्रद्योति दीपैः कृत दिग्विभागै, र्मोहांधकार प्रविनाशकैश्च ॥ जम्बोश्चये० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपस्य भरतक्षेत्रे वर्तमान चतुर्विंशति जिन० दीपम् ॥ ६ ॥

श्रीखण्ड मुख्यैःकृत चूर्णकैश्च, सन्धूपितैः कांचन भाजनेश्चः ॥ सम्बोध्वये० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपस्य भरतक्षेत्रे वर्तमान चतुर्विंशति जिन० समूहाय धूपम् ॥ ७ ॥

नारिंग पूंग फल मातुलिंगै, श्रेष्ठभोज्याजन कांचनस्थैः ॥ जम्बोध्वये० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपस्य भरतक्षेत्रे वर्तमान चतुर्विंशति जिन० फलं ॥ ८ ॥

नीर प्रमुख्यैः कृत मेलनैश्च, हेमस्य पात्रे प्रति संस्थितैश्च ॥ जम्बोध्वते० ॥

ॐ ह्रीं जम्बूद्वीपस्य भरतक्षेत्रे वर्तमान चतुर्विंशति जिन० अर्घम् ॥ ९ ॥

अथ पंचकल्याणक जातानि प्रत्येकार्घाणि ।

पृथ्वी छन्दः ।

यदीय गत गर्भके धनदयक्ष संकारिता, सुरत्न गत वृष्टिका। गगन मार्गतो आपतत्, अदीय वृषभादि-कस्य पद युग्ममा, नन्द तोय जाम्यमल मैहिका प्रथित पारिकार्धांनकृत ॥

ॐ ह्रीं वृषभादि वर्द्धमानांत जिनसमूहाय गर्भकल्याणक प्राप्तायार्घं ॥ १ ॥

मन्दाक्रांता छन्दः।

जन्मन्यत्र प्रथित विभवे वासवाद्यैः सुरौघै, मेरौ यस्य प्रजननभवं कारितं स्नानसारं। तस्यांद्रि द्वंद्व ममल महार्घेण संपूजयामि, जम्बुद्वीपस्य भरत भवस्याद्य नाभेयगस्य॥

ॐ ह्रीं वृषभादिवर्द्धमानांत चतुर्विंशति जिनसमुदाय जन्म-कल्याणकप्राप्तायार्घ्यं॥ २॥

वसन्ततिलका छन्दः।

दृष्ट्वा भवं विगत सौख्यमसंस्थिरं च, वैराग्य मानमगमत्प्रथित प्रभावः। लौकांतिक स्तुति कृतो वृषभादि संघ, स्तत्पाद पङ्कजयुगं च यजे प्रभक्त्या॥

ॐ ह्रीं वृषभादिवर्द्धमानांत चतुर्विंशति जिनसमुदाय तपः कल्याणकप्राप्ताय अर्घ्यम्॥ ३॥

उपेन्द्रवज्रा छन्दः।

यदीय कैवल्य महोत्सवेत्र, शभाभवच्छक्रकृता मनोज्ञा। तदीय पादद्वयमर्घकेण, यजामि संघस्य वृषभादिकस्य॥

ॐ ह्रीं वृषभादिवर्द्धमानांत चतुर्विंश जिनसमुदाय ज्ञान-कल्याणकप्राप्ताय अर्घ्यम्॥ ४॥

मत्तमयूरं छन्दः।

येषां प्रासे मोक्ष महोत्सवकेऽत्रसुराः, कुर्वंतिस्म-प्रांत भवं। दग्धत्वमथ कृत्वाशिष भस्मगतः स्वस्यद्दी गेहं, तां वन्दामिह प्रथिभूतनाभि मुख्यान्॥

ॐ ह्रीं वृषभादिवर्द्धमानांत जिनसमूहाय निर्वाणकल्याणक प्राप्ताय अर्घं ॥ ५ ॥

तोटक छन्दः।

वृषभादिक सन्मतिकांत जिनान्, शुभ पञ्चमहोत्सव संगतकान् परिपूजय, ऐहिक काल भवान्, परिपूर्णकुलेन वरेण हितान् ॥

ॐ ह्रीं वृषभादिवर्द्धमानांत चतुर्विंशति जिनसमूहाय पंचकल्याणकप्राप्ताय पूर्णार्घम् ॥ ६ ॥

अथ जयमाला।

प्राकृतबन्धा गाथा।

उसहादि जिणा एहं, पण सुह कल्लाण। पत्तए वंदे जयमाल एहि, भव्वा सुण हमहामोपदो चित्ते ॥१॥

त्रोटक छन्द।

जय आदियणाह अणाहपए, जय कम्म विजोय अजीयपए। जय भव दुहभंजण सम्भवए, जय किमणंदण अहिणंदणए ॥ २ ॥ जय जीवतु हीयर पञ्चमए, जय पद्मप्प हुपम्मा गयए। जयणाह सु पासहि पासिहणं, जयचन्दपह दुनि चन्द गणं ॥ ३ ॥

पद्धड़ी छन्द।

जय पुप्फयंत गतप्पुप्फबाण, जय सीयल वय सीयल पहाण। जयसेय सुणिम्मल सेय सार, जय वासुपुज्ज णर सुर अधार ॥ ४ ॥ जय विमल विमल

गुण गण अणन्त, जय णय सुणन्त ही अणन्त सन्त। जय धम्मणाह कियकम्म अद्ध, जय संतिणाह विद्धि-सन्ति लद्ध ॥ ५ ॥

जय कुन्थुणाह कुन्थादिसदय, जय अरजिणणय अरिकम्म उदय। जय मल्लि महामल्लाण मल्ल, जय मुणि सु व्वय कियभय विसल्ल ॥ ६ ॥ जयणमिजिण णमिय सुराण संघ, जय णमिणाह वस णेमि भङ्ग। जय पासमुणा सण पासणाह, जय वड्ढमाण पोसिय अणाह ॥ ७ ॥

घत्ता।

चउवीस जिणेसर हरिणमि शेखर, सयल जीव हीयदानवरा तुह चरण यपउमं रवि भवि पउमं, वन्दामिह भवणासयरा ॥

ॐ ह्रीं वृषभादिवर्द्धमानांतचतुर्विंशति जिनसमुदाय महार्घं ॥८॥

जो जिण गुण जयमाला, भणइया भाव णिम्मलं, किवा सो सुर पूजिय पायो। अणुकम शिव संठियो होइ ॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री वृषभादिवर्द्धमानांत चतुर्विंशति जिनसमूह पूजा समाप्ता।

अथ समुच्चय पूर्णार्घं-भाषा

पद्धडी छन्द।

सुनिये जिनराज त्रिलोकनाथ, अघ लोक माहि जितनैं सनाथ। मन्दिर तह चैत्य विराजमान, कृत्रिम नहीं नित्य अकृत्रिमान ॥ १ ॥ पुनि कृत्रिम गृह जिनराज देव, शुभ द्वीप अढाई मध्य एव। तिनकौं निति वंदन पूज काज, यह पूज रचि जिनराज साज ॥ २ ॥ इक सीकर नगर लसैं मनोग्य, राजा तह सेखावत सुजोग्य। जैनी जन रहत खण्डेलवाल, जिन धर्म मनोहर सदा चाल ॥ ३ ॥ तिस नगर मधि आचार्य सार, श्री भानुकीर्ति इह नाम धार। तिस शिष्य सुपण्डित भाग्यचन्द्र, तिस शिष्य विबुध वर दीपचन्द्र ॥ ४ ॥ तिस शिष्य सुपण्डित चिमनराम, अब विद्युमान गुण सकल धाम। तिस शिष्य सु उत्तमचन्द्र नाम, देहांत भये अल्पायु काम ॥ तिस शिष्य हि पण्डित 'महाचन्द्र', यह पूज रचि जिन गुण अमंद्र ॥ ५ ॥

हम सीकरतैं चाले विचारि, जात्रा श्री शिखर समेद धारि। करि जात्रा पुनि गिरिनारि नाम, जात्रा करणें मन रहत ताम ॥ ६ ॥ तात प्रतापगढ़ शहर माहि, आये यह शहर मनोहराहि। यह शहर माहि

श्रावक विशाल, हूमड ज्ञानी करि रहत सार ॥ ७ ॥ जिन मन्दिर हैं जु नवौं प्रधान, हूमड बीसा करि पुज्यमान। तिसमें हम ठहरे चतुर मास, यह पाठ यहां कीनौं समास ॥८॥ संवत गुनीश शत विक्रमान, (१९१५) पन्द्रह ऊपरि जानौं महान। कातिक वदी अष्टमी शुक्रवार, यह पूर्ण भयो जिन पुज सार ॥ ९ ॥ इस माहि अशुद्ध कहौंक होय, तो शुद्धि करो बुधि-वान जोय। हम अल्प बुद्धि कछु शक्ति नाहि, जिन कथन समुद्रसम नाहि थाह ॥ १० ॥

जिनराज हमैं विनती सुनेय, हम पूजत पूरण अर्घ लेय। हम तीनलोक जिन गेह माही, जिनराज नमैं मन वच काय ॥ ११ ॥ यह पूरण अर्घ बनाय सार, फुनि गाय गाय तुम गुण अपार। तुम गुणगण-धर नहि लहत पार, हम हीन शक्ति नहि बुद्धि धार ॥ १२ ॥ तुम भक्ति लीन मन ठानि ठानि, यह अरज करी गुन जानि जानि। हम कर्म अरि दुख मानि मानि, हमरो दुख मेटहू मानि मानि ॥ १३ ॥ जब लौं शिव सम्पति नाहि पाय, तब लौं तुम पद सेवा कराय। यह जाचत है कर जोरि जोरि, बुध महाचन्द्र मद छोरि छोरि ॥ १४ ॥

ॐ ह्रीं त्रिलोकमध्ये अकृत्रिम कृत्रिम सर्वजिनगृह जिन-समुदाय पूर्णार्घम् ॥

कवित २३।

जो यह पाठ विचारि अकृत्रिम, कृत्रिम गेहनको सुखदाई। तीनहु लोक जिनेन्द्र जिजैं अति, प्रीति करै यहु भक्ति बढ़ाई॥ सो नरलोकहि देव सु लोक महीं, सुख भोगि अनुक्रम थाई। मुक्ति तियापति जानि इमैं नीति, पूज करो जिनराज सु भाई॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री पंडित बुधमहाचन्द्र विरचिता त्रिलोकसार कृत्रिम अकृत्रिम जिनगृह पूजा समाप्ता।

पंचेंदु नवसु चन्द्रे वर्षे ऊर्जेसितेतरे पक्षे, अष्टम्यां भृगुवारेऽथ लिखद् बुध महाचन्द्रः॥ १॥

॥ शुभं भूयात, कल्याणमस्तु॥

श्रीः लि० मोहनलाल पंडित–महुआ (जि०–सूरत)

॥ संपूर्ण॥

SHRI AILAK PANNALAL ... BHAVAN JHALRAPATAN CITY
झालरापाटन सिटी